13/2/67

काव्य-समीक्षा

(तुलनात्मक विश्लेषण)

डॉ० विक्रमादित्य राय
रीडर, अंग्रेजी विभाग,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी

भारतीय विद्या प्रकाशन
वाराणसी

प्रकाशक :

भारतीय विद्या प्रकाशन
पो० बॉ० १०८, कचौड़ीगली,
वाराणसी

फरवरी, १९६७

मूल्य : सजिल्द १२.००
अजिल्द १०.००

मुद्रक :

मनोहर प्रेस
जतनबर,
वाराणसी

प्राक्कथन

प्रस्तुत पुस्तक में भारतीय तथा पाश्चात्य मनीषियों के काव्य-सिद्धान्तों और विचारों की व्याख्या तथा आलोचना प्रस्तुत है, जिसका उद्देश्य दो विभिन्न समीक्षा-प्रणालियों के मौलिक साम्य का प्रतिपादन करना है। इस दृष्टि से ग्रंथ एक तुलनात्मक अध्ययन मात्र है। अतः तुलनात्मक अध्ययन की निश्चित सीमाओं को ध्यान में रखकर ही इस ग्रंथ का मूल्यांकन करना चाहिए; क्योंकि इस प्रकार के विवेचन में केवल उन्हीं विषयों पर ध्यान केन्द्रित करना पड़ता है जिनमें दोनों पक्षों का मतैक्य संभव हो। इसके अतिरिक्त अन्य पक्ष या तो पूर्णरूपेण बहिष्कृत हो जाते हैं अथवा उन पर क्षणिक दृष्टिपात करके ही संतोष करना होता है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इस प्रकार का तुलनात्मक दृष्टिकोण व्यापक होते हुए भी अधूरा ही रहता है; क्योंकि इसमें किसी एक भी समीक्षा-संप्रदाय का सर्वांगीण विश्लेषण संभव नहीं होता और न उसकी अपेक्षा ही होती है। किन्तु इस निश्चित सीमारेखा के भीतर भी तत्तत्संप्रदायों का विशेष परिचय देने के लिए पर्याप्त अवसर हो सकता है, जिसका सफल उदाहरण है प्रस्तुत पुस्तक।

हिन्दी में लिखने का प्रथम प्रयास होने के कारण भाषा की यत्किंचित् अशुद्धियाँ पाठकों को अवश्य खटकेंगी, जिसके लिए मुझे खेद है। किन्तु सुधी पाठक 'नीर-क्षीर-विवेक' से भावों के ग्रहण करने का प्रयास करेंगे तो उन्हें संतोष होगा—यह मेरा विश्वास है।

प्रस्तुत ग्रंथ की पूर्णता में पूर्व तथा पश्चिम के अनेक समीक्षकों तथा विद्वान् व्याख्याकारों से प्रेरणा प्राप्त हुई है, जिसके लिए यथावसर आभार प्रकट कर दिया गया है; किन्तु फिर भी इस विषय में त्रुटि हो जाने की संभावना रहती है। इसलिए ग्रंथ के आरंभ में ही मुझे उन सबके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करने में प्रसन्नता हो रही है।

आशा है कि प्रस्तुत पुस्तक के अध्ययन से हिन्दी तथा अंग्रेजी के साहित्य-सेवियों का दृष्टिकोण व्यापक होगा और नये विचार-विनिमय का पथ प्रशस्त हो सकेगा।

२६ जनवरी, १९६७ विक्रमादित्य राय

विषय-सूची

अध्याय १

काव्य-कर्ता

अपारे काव्य-संसारे कविरेकः प्रजापतिः।
यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते॥
शृङ्गारी चेत् कविः काव्ये जातं रसमयं जगत्।
स एव वीतरागश्चेन्नीरसं सर्वमेव तत्॥

—आनन्दवर्धन

रसानुगुणशब्दार्थचिन्तास्तिमितचेतसः।
क्षणं स्वरूपस्पर्शोत्था प्रज्ञैव प्रतिभा कवेः॥
सा हि चक्षुर्भगवतस्तृतीयमिति गीयते।
येन साक्षात्करोत्येष भावांस्त्रैलोक्यवर्तिनः॥

—महिमभट्ट

अंग्रेजी के लब्ध-प्रतिष्ठ समालोचक, **'कोलरिज'** की **उक्ति** है कि 'कविता क्या है ?' इस प्रश्न का उत्तर देने के लिये यह जानना आवश्यक है कि 'कवि क्या है ?' उक्ति सारगर्भित तथा तथ्यपूर्ण है, क्योंकि किसी भी कला का विवेचन कलाकार के गुण तथा शक्ति पर ही आश्रित होकर संतुलित तथा समीचीन हो सकता है। कला कलाकार की प्रतिभा से ही अनुप्राणित होती है। इसी प्रतिभा तथा कौशल के चमत्कार से पत्थर का एक निर्जीव खण्ड ऐसी मूर्ति का रूप धारण करता है जिसके सौंदर्य तथा मन-मोहकता पर करालकाल के **निर्दय** दन्त भी कुण्ठित सिद्ध होते हैं। संसार के साधारण उपकरणों को लेकर और उनमें अपनी कल्पना तथा स्वप्न का पुट देकर कवि ऐसे पात्रों का निर्माण करता है जो महाकवि 'शेली' के शब्दों में वास्तविक मनुष्यों से अधिक सत्य होते हैं और **'जरा-मरण** के भय' से मुक्त होकर अमरत्व की कोटि में पहुँच जाते हैं। काव्य का माध्यम भाषा है— ऐसे शब्द-समूह जिनका सभी शिक्षित प्राणी प्रयोग करते हैं। परन्तु इन्हीं शब्दों में कवि ऐसी शक्ति तथा स्फूर्ति का संचार कर देता है कि वे चिरकाल तक

असंख्य सहृदयों को आनन्दविभोर करते रहते हैं और ब्रह्म-सत्ता के समान सदैव पूर्ण रहते हैं। संस्कृत के एक कवि ने ठीक ही कहा है—

यानेव शब्दान् वयमालपामः
यानेव चार्थान् वयमुल्लिखामः।
तैरेव विन्यासविशेषभव्यैः
संमोहयन्ते कवयो जगन्ति ॥

इसी तथ्य को दृष्टि में रखते हुए डा० एस. के. दे ने कहा है कि संस्कृत काव्य-शास्त्र आरम्भ से लेकर अपने वैभव-काल के अवसान तक कवि-पक्ष की ओर प्रायः उदासीन रहा। इसके फलस्वरूप शब्द, अर्थ, अलंकार, रीति इत्यादि का विशद तथा अनुपम विवेचन वैज्ञानिक होते हुए भी प्रायः भाषा के शव पर शल्य-क्रिया, अथवा 'वड्सवर्थ' के शब्दों में, प्राण-हीन करके चीर-फाड़ करने (murder to dissect) के समान प्रतीत होता है। कालान्तर में कुछ विचारकों का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ और उन्होंने कवि को केन्द्र-स्थान में विवेच्य बनाकर उसकी गुण-शक्ति का विवेचन आरम्भ किया, परन्तु यह विवेचन अपेक्षाकृत संक्षिप्त तथा अपूर्ण ही रहा।[१]

डा० दे का कथन कटु होते हुए भी नितान्त असत्य नहीं है। परन्तु इसका खंडन-मंडन करना यहाँ अभीष्ट नहीं। हम केवल इतना ही निवेदन करना चाहते हैं कि प्राचीन यूरोपीय साहित्य-शास्त्र में भी कवि का कलापक्ष ही मुख्य है और उसका व्यक्तित्व गौण, यद्यपि उसका गौरव समीक्षकों के लिये सदैव स्मरणीय रहा है। भारतीय विचारकों ने इस विषय में कुछ विलम्ब अवश्य किया, परन्तु उनका विचार सारगर्भित है और पाश्चात्य मनीषियों की उक्तियों से इतना साम्य रखता है कि ऐसा ज्ञात होता है जो कुछ पश्चिम में विस्तार से कहा गया है उसे हमारे समीक्षकों ने सूत्र-रूप में प्रतिपादित कर दिया है। उदाहरण के लिये हम उन दो श्लोकों को ले सकते हैं कि जो इस अध्याय के शीर्ष पर उधृत किये गये हैं। इनमें इस आशय का समर्थन है कि कवि स्रष्टा तथा द्रष्टा है। यह एक ऐसा तथ्य है जिसको यूरोपीय कवियों तथा समीक्षकों ने बार-बार दुहराया है। महाकवि शेक्सपियर की प्रसिद्ध पंक्तियाँ इसी तथ्य की ओर संकेत करती हैं—"कवि के दैवी-उन्माद से चंचल नेत्र पृथ्वी से आकाश तथा आकाश से पृथ्वी तक विद्युत गति से दृष्टिपात करते हैं और कवि की कल्पना-शक्ति अज्ञात तथा अदृष्ट वस्तुओं

---

१ **Sanskrit Poetics—as a study of Aesthetic**—पृष्ठ ७२-७३.

का साक्षात्कार करती है जिसे उसकी लेखनी मूर्तिमान करके स्थान तथा अभिधान-विशेष से अलंकृत करती है[२]।" विक्टोरिया युग के प्रतिनिधि कवि, 'टेनिसन' ने भी एक कविता में कहा है कि कवि का जन्म एक स्वर्ण-काल तथा स्वर्ण-नक्षत्र में होता है और उसमें समस्त मानव-जाति के भाव—घृणा तथा प्रेम—समाहित रहते हैं। उसकी पारदर्शी दृष्टि जीवन तथा मरण, शिव तथा अशिव के मूल तक पहुँचती है और उसकी आत्मा के रहस्यमय स्वरूपों का साक्षात्कार करते हुए परमात्मा की आश्चर्यमयी इच्छा का खुली हुई पुस्तक के समान अध्ययन कर सकती है[3]।

कवि-शक्ति तथा प्रेरणा

कवि की अपूर्व शक्ति के दो मूल-स्रोत माने गये हैं—एक बाह्य तथा अलौकिक, दूसरा स्वभावजन्य तथा आभ्यन्तरिक। साहित्य-शास्त्र की प्राचीनतम मान्यता इस विश्वास पर आधारित है कि कवि की प्रतिभा किसी देवता के प्रसाद से ही अपनी शक्ति की पराकाष्ठा पर पहुँचती है। भारतीय काव्यशास्त्र में इस पक्ष की व्याख्या कम हुई है, परन्तु काव्य में मंगलाचरण तथा इष्टदेव अथवा देवता की स्तुति या आवाहन की अटूट परम्परा इस विश्वास की सर्वमान्यता की साक्षी है। यूरोपीय कवि नौ काव्य-देवियों का आवाहन करता था, तो भारतीय

---

२ The Poet's eye, in a fine frenzy rolling,
Doth glance from heaven to earth, from earth to heaven.
And as imagination bodies forth
The forms of things unknown, the poet's pen
Turns them to shape, and gives to airy nothing
A local habitation and a name.

A Mid-Summer Night's Dream.

3 The poet in a golden clime was born
With golden stars above ;
Dowered with the hate of hate, the scorn of scorn,
The love of love.
He saw thro' life and death, thro' good and ill ;
He saw thro' his own soul
The marvel of the Everlasting Will,
An open scroll,
Before him lay.

कवि सरस्वती, शिव, राम, कृष्ण के प्रसाद की याचना। जैसे 'शंभु प्रसाद सुमति हिय हुलसी' अथवा 'उस सरस्वती को नमस्कार है 'कर-वदरसदृशमखिलं भुवन-तलं यत् प्रसादतः कवयः पश्यन्ति सूक्ष्ममतयः' आदि।

यूरोप में इस अलौकिक प्रेरणा (Inspiration) पर बहुत कुछ कहा गया है। अतएव इस सन्दर्भ में इसका एक संक्षिप्त विवरण आवश्यक है। इसकी सर्व-प्रथम व्याख्या 'प्लेटो' के संगीतमय गद्य-निबंध 'इआन' (Ion) में हुई, जहाँ 'सुकरात' कवि की व्याज-स्तुति करते हुए कहते हैं[४] कि सभी उच्चकोटि के कवि अपने कौशल से काव्य-रचना नहीं करते हैं, क्योंकि उनकी सृजन-शक्ति ऐसी दैवी-प्रेरणा के वशीभूत है, जिसके प्रभाव से कवि अपनी बुद्धि को खोकर दिव्य-शक्ति का माध्यम हो जाता है और इसी दैवी-उन्माद में उसकी अन्तर्दृष्टि स्वर्गीय कानन का साक्षात्कार करती है और वह एक उन्मत्त भ्रमर के समान उसमें विकसित पुष्पों का रस चूसकर उसे आह्लादकारी मधु के रूप में पाठकों के समक्ष उद्गीर्ण करता है। इस तरह से दैवी-प्रेरणा एक चुम्बक-शक्ति-पूर्ण श्रृंखला के समान देवता, कवि, वाचक तथा पाठक को आबद्ध करती है और उनमें सहृदयता का संचार करती है।

'प्लेटो' के परवर्ती समीक्षकों ने कवि-कौशल तथा प्रतिभा को ही मुख्य-स्थान दिया। परन्तु ईसाई धर्म के कवियों ने इस विश्वास की पुष्टि करते हुए इसको काफी प्रोत्साहित किया। महाकवि 'मिल्टन' ने यूनानी देवियों का तिरस्कार करते हुए उस ईश्वरीय शक्ति का आवाहन किया जिससे सृष्टि मूर्तिमान हुई और जीवन के बिखरे हुए अस्त-व्यस्त तत्व एकता के सूत्र से संबद्ध हुए, क्योंकि वे ऐसे महा-काव्य (Paradise Lost) का निर्माण करना चाहते थे जो प्राचीन कृतियों से अधिक व्यापक तथा अलौकिक हो और संसार में उनकी अमर कीर्ति के रूप में सदैव स्तुत्य रहे। इसकी प्रतिक्रिया अठारहवीं शताब्दी के समीक्षकों में विद्यमान

---

४ All good poets, epic as well as lyric compose their beautiful poems not by art, but because they are inspired... ...the Muse first of all inspires men herself; and from these inspired persons a chain of other persons is suspended, who take the inspiration from them...They are inspired and possessed for they themselves tell us that they bring songs from honeyed fountains, culling them out of the gardens and dens of the Muses, winging their way from flower to flower like the bees.

है और 'जान्सन' महोदय ने 'मिल्टन' के इस विश्वास का खंडन करते हुए कह दिया कि दैवी प्रेरणा एक भ्रमपूर्ण मृगतृष्णा है और कोई भी व्यक्ति अपनी दृढ़ इच्छा-शक्ति से काव्य-निर्माण कर सकता है। परन्तु यह स्मरण रहे कि 'डा० जान्सन' की प्रतिभा गद्य में ही प्रस्फुटित हुई, काव्य-सौन्दर्य-प्रासाद की तो वे केवल झाँकी मात्र ही प्राप्त कर सके।

१९ वीं शताब्दी स्वच्छन्दतावाद (Romanticism) का युग है। इस काल में दैवी-प्रेरणा-सिद्धान्त को प्रचुर संबल प्राप्त हुआ, यद्यपि यह प्रेरणा बहिर्मुखी न होकर अन्तर्मुखी रूप धारण करने लगी। इस परिवर्तन का दिग्दर्शन हमें कवि शेली के डिफेन्स आव् पोयट्री (Defence of Poetry) में मिलता है। एक ओर तो वे कवि के मस्तिष्क को एक शान्त वीणा की उपमा देते हैं जिसे बाहर से आती हुई वायु के झोंके किसी भी क्षण झंकृत तथा मुखरित कर सकते हैं; परन्तु दूसरी ओर वे यह भी संकेत करते हैं कि कवि की सृजन-शक्ति उसकी अन्तरात्मा से इस प्रकार विकसित होती है जैसे पुष्पों का मनमोहक रंग। इस नये रूप की व्याख्या इस शताब्दी के मनोवैज्ञानिकों ने की है, जिनके अनुसार मनुष्य के चेतन मन के नीचे अवचेतन अथवा अचेतन का विशाल क्षेत्र है जो उसके पूर्व संस्कारों तथा मानव-जाति के शाश्वत अनुभवों तथा अनुभूतियों का केन्द्र है। यह फ्रायड् नहीं, अपितु युंग का सिद्धान्त है[५], जिनके विचार से अवचेतन ही मनुष्य की प्रेरणा तथा स्फूर्ति का उद्गम-स्थान है। कवि के भावातिरेक से जब अवचेतन आलोड़ित होता है तो उसकी **मातृत्व शक्ति** ऊर्ध्वगामी होती है और अपने वेग से संचालित होकर चेतन मन की पितृत्व शक्ति से संयोग प्राप्त करती है, इसी संयोग से श्रेष्ठ काव्य का जन्म होता है। इस तरह से एक

---

५ The psychology of creative art is really the feminine psychology; creative work grows out of unconscious depth. It is only a most powerful intuition that would like to become expression. It is like a whirlwind carrying everything before it, whirling it upward and thus gaining visible form.

Whenever the collective unconscious forces its way into experience and weds itself to the collective consciousness, there occurs a creative work that concerns the entire contemporaneous epoch.

Psychological Reflections *Ed. by Jolande Jacobi.*

आध्यात्मिक भावना (Inspiration) मनोवैज्ञानिकों का समर्थन प्राप्त करके विज्ञान के इस युग में भी मान्यता प्राप्त कर सकी। इस मान्यता का येनकेनरूपेण आज भी व्यापक प्रभाव है और इसका विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है :—

(१) मनुष्य का मस्तिष्क कभी-कभी अनायास ही ऐसा व्यापार कर देता है जिस पर कि स्वस्थ होने पर उसे स्वयं आश्चर्य होता है और उसे अपनी शक्ति के चमत्कार पर विश्वास नहीं होता और स्वभावतः वह सोचने लगता है कि यह काम किसी अलौकिक शक्ति के वशीभूत होने पर ही संपन्न हो सका है।

(२) ऐसे क्षण अप्रत्याशित हैं, इन पर मनुष्य की इच्छा का कोई प्रभाव नहीं है। वायु के झोंके के समान ये आते हैं और फिर चले जाते हैं; मनुष्य हठ-पूर्वक न तो इन्हें बुला सकता है और न रोक सकता है।

(३) यह शक्ति-वेग जितना ही अप्रत्याशित है उतना ही अस्थायी; बाढ़ के पानी के समान यह वेग से बढ़ता है और फिर उसी वेग से हट जाता है।

(४) इसका प्रभाव या तो भावों की असाधारण प्रखरता के रूप में प्रकट होता है—जैसे वाल्मीकि मुनि का आदिश्लोक अथवा मानसिक उद्बोधन के रूप में। इस दूसरी अवस्था में अन्तर्दृष्टि-पटल से चिर परिचित आवरण हट जाता है और गूढ़तम रहस्य खुले पृष्ठ के समान स्वयं गोचर होने लगते हैं।

यह रहस्यमयी शक्ति व्याख्यातीत है। इसलिए पूर्व तथा पश्चिम दोनों के काव्य-शास्त्रियों ने कवि की स्वाभाविक शक्ति ही पर अधिक बल दिया। भारतीय साहित्यशास्त्र में कवि की इस शक्ति को प्रतिभा की संज्ञा दी गई है और इसकी कई दृष्टिकोणों से परिभाषा भी की गई है। 'वामन' ने इसे कवित्व-वीज कहा है—'कवित्ववीजं प्रतिभानम्' और भट्ट तोत के मतानुसार प्रतिभा कवि की वह शक्ति है जिसके द्वारा वह नित्य नवीन विचारों का साक्षात्कार और उनकी अनूठे शब्दों में अभिव्यक्ति करता रहता है :—

प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मता।
तदनुप्राणनाज्जीवद्वर्णना निपुणः कविः॥

'अभिनव गुप्त' ने प्रतिभा की व्याख्या 'अपूर्व वस्तुनिर्माणक्षमा प्रज्ञा' कह-कर की है। इसीके वशीभूत होकर कवि ऐसी वस्तुओं का निर्माण करता है जो सृष्टि में विद्यमान नहीं है और इसीके माध्यम से वह भाव तथा भाषा को रसमय करता है—'तस्याः विशेषो रसावेशवैशद्यसौन्दर्यकाव्यनिर्माणक्षमत्वम्'। इसी

तथ्य की विस्तृत व्याख्या राजशेखर ने **काव्यमीमांसा** में इस प्रकार की है— 'या शब्दग्रामम्, अर्थसार्थम्, अलंकारतन्त्रम्, उक्तिमार्गम् अन्यदपि तथाविध-मधिहृदयं प्रतिभासयति सा प्रतिभा। अप्रतिभस्य पदार्थसार्थः परोक्षएव। प्रतिभा-वतः पुनः अपश्यतोऽपि प्रत्यक्ष एव। इस व्याख्या में विशेष बात यह है कि प्रतिभा की सहायता से ही कवि को परोक्ष वस्तु प्रत्यक्ष प्रतीत होती है और अदृष्ट वस्तुएँ दृष्टिगोचर होने लगती हैं। **आनन्दवर्धन** ने इसीको कवियों की नई दृष्टि कहा है—'कवीनां नवा दृष्टिः'। तात्पर्य यह है कि कवि की प्रतिभा वस्तुओं की आत्मा का साक्षात्कार करती है और परिचित वस्तुओं के ऊपर का आवरण हटा-कर उनकी चिरनूतनता का परिचय देती है। इसके आगे की कड़ी 'महिमभट्ट' की प्रसिद्ध परिभाषा में निहित है—'सा हि चक्षुर्भगवतस्तृतीयमिति'। कवि की प्रतिभा भगवान शिव के तृतीय नेत्र के समान है जो त्रिलोक के सभी भावों का साक्षात्कार कराती है।

यही प्रतिभा कवि को स्रष्टा बनाती है और उसकी सृष्टि में वह मौलिकता तथा विलक्षणता प्रस्तुत करती है जो प्रजापति की सृष्टि में दुर्लभ है। **काव्य-प्रकाश** के ख्यातनामा लेखक 'आचार्य मम्मट' ने, कवि-भारती के चमत्कार का वर्णन इसी तथ्य को दृष्टि में रखते हुए किया है :—

'नियतिकृतनियमरहिताम्, आह्लादैकमयीमनन्यपरतन्त्राम्।
नवरसरुचिरां निर्मितिमादधती, कवेर्भारती जयति॥

कवि की सृष्टि नियति के बन्धनों से परे है, स्वतंत्र तथा आनन्ददायिनी है और नव रसों से परिपूर्ण है। 'ध्वन्याकार' ने कवि-स्वतंत्रता का वर्णन करते हुए उसे अचेतन को चेतन तथा चेतन को अचेतन करने में समर्थ बतलाया है— 'भावानचेतनानपि चेतनवत्, चेतनानचेतनवत् व्यवहारयति यथेष्टं सुकविः।' यही शक्ति काव्य का प्राण है और इसके न रहने से अलंकार, रीति, गुण इत्यादि कभी भी चमत्कार पैदा करने में समर्थ नहीं होते। इसीलिये आचार्य कुन्तक ने कहा है—'कविप्रतिभाप्रौढिरेव प्राधान्येनावतिष्ठते, तदनुग्रहविना न मनागपि वैचित्र्यमुत्प्रेक्षामहे।' 'प्राक्तनाद्यतनसंस्कार-परिपाकप्रौढा प्रतिभा काचिदेव कवि-शक्तिः'। प्रतिभा कवि की जन्मजात शक्ति है—'जन्मान्तरसंस्कारप्रेक्षिणी सहजा' (वामन)। इसका विकास तथा परिष्कार परिश्रम, अनुशीलन अथवा ईश्वर के प्रसाद से होता है। इसीलिये 'रुद्रट' ने प्रतिभा का 'सहजा' तथा 'उत्पाद्या' भेद किया है और हेमचन्द ने उसे 'उत्पाद्या' तथा 'औपाधिकी' (दैव-

अनुग्रहजनित) नामों से अभिहित किया है। काव्य-मीमांसा में प्रतिभा के दो रूपों का निरूपण हुआ है—भावयित्री तथा कारयित्री। पहली भावक की प्रतिभा है और दूसरी कवि की। प्रतिभा तथा प्रज्ञा में भी काव्य-मीमांसा ने भेद किया है, यद्यपि प्रतिभा प्रज्ञा का विशिष्ट रूप भी मानी गई है। 'प्रज्ञा' बुद्धि के तीन भेदों—स्मृति, मति, प्रज्ञा—में एक विशिष्ट रूप है—

'त्रिधा च सा (बुद्धिः) स्मृतिः, मतिः, प्रज्ञेति। अतिक्रान्तार्थस्य स्मर्त्री स्मृतिः, वर्तमानस्य मन्त्री मतिः। अनागतस्य प्रज्ञात्री प्रज्ञा सा त्रिकारापि कवीनामुपकर्त्री।' इसीकी टीका में कहा गया है—'स्मृतिर्व्यतीतविषया मतिरागाभिगोचरा। बुद्धिस्तात्कालिकी ज्ञेया प्रज्ञा त्रैकालिकी मता ॥'

स्पष्ट है कि 'प्रतिभा' बहुरूपा है और इसमें उन सभी शक्तियों का समावेश है जो यूरोपीय काव्य-शास्त्र में 'इन्ट्यूशन', 'इमैजिनेशन', 'जीनियस' इत्यादि नामों से प्रचलित हैं। 'प्रज्ञा' तथा 'प्रतिभा' पश्चिम के 'रीजन' (Reason) और 'इमैजिनेशन' (Imagination) की पर्याय हैं जिनका अटूट सम्बन्ध कवि वर्ड् सवर्थ की प्रसिद्ध परिभाषा से प्रकट है। उन्होंने इमैजिनेशन को 'रीजन इन हर मोस्ट एक्जाल्टेड मूड' (Reason in her most exalted mood) अथवा 'रीजन' (Reason) की पराकाष्ठा कहा है। यही परिभाषा 'प्रज्ञा' तथा 'प्रतिभा' के पारस्परिक सम्बन्ध की भी पूर्णरूपेण द्योतक है।

पाश्चात्य साहित्य-सिद्धान्त में 'कारयित्री प्रतिभा' अथवा इमैजिनेशन की व्याख्या का एक लम्बा क्रमबद्ध इतिहास है जिसका सिंहावलोकन पूर्व-पश्चिम के विचारों के साम्यबोध के लिये अत्यावश्यक है। इमैजिनेशन (Imagination) और 'फैन्सी' (Fancy) मूलतः एक ही शक्ति के दो भिन्न नाम रहे—एक रोमन और दूसरा यूनानी। यूनानी दार्शनिकों ने इस शक्ति का फैन्टासिया (Phantasia) नामकरण किया था और 'प्लेटो' ने अनुकरण का एक 'फैन्टास्टिक (Phantastic) भेद माना है, जिसमें कलाकार बाह्य वस्तुओं का आश्रय न लेकर केवल अपनी कल्पना से नई सृष्टि का निर्माण करता है। 'अरस्तू' ने अपने काव्य-शास्त्र में इस बात का संकेत किया है कि नाटककार अपनी कल्पना से सभी पात्रों तथा परिस्थितियों में प्रवेश करके दर्शक की तरह पूरे कथानक का अवलोकन करे जिससे उसे ज्ञात हो जाय कि उसकी कृति प्रेक्षकों के ऊपर इच्छित प्रभाव डालने में सफल होगी अथवा नहीं। इसी शक्ति को कवि का दिव्य तथा नैसर्गिक विशिष्ट गुण कहा है।

रोमन काल में इमैजिनेशन (Imagination) शब्द वक्ता या लेखक की उस शक्ति से सम्बन्धित माना गया जो दूर तथा अदृष्ट वस्तुओं का विशद वर्णन करने में समर्थ है और जिसके परिणामस्वरूप पाठक अथवा श्रोता ऐसा अनुभव करते हैं कि परोक्ष घटना उनके समक्ष ही घटित हो रही है। कालान्तर में 'प्लेटो' के प्रसिद्ध अनुयायी 'प्लाटिनस' ने इस शक्ति का दार्शनिक रूप प्रतिष्ठित किया और कवि-प्रतिभा को सृष्टिकर्ता की शक्ति-सहोदरा के नाम से अभिहित किया। इस तरह से प्रोमेथ्यूज (Prometheus) की प्राचीन यूनानी कथा मानव की दिव्य-शक्ति की परिपोषक हुई। कथा है कि 'प्रोमेथ्यूज' ने मानव-कल्याण के लिये चोरी से अग्नि का स्वर्ग से पृथ्वी पर अवतरण कराया और इस अपराध के लिये वह दण्डित हुआ। यह पृथ्वी पर अवतरित स्वर्गीय अग्नि ही कारयित्री प्रतिभा का प्रतीक है और मानव-कवि तथा प्रजापति का समीकरण चिह्न। ईश्वर आदि-कवि हैं और उनकी शक्ति ही दिव्य प्रतिभा है और उससे रची हुई सृष्टि आदि काव्य है। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह मत भारतीय दर्शन से पूर्ण साम्य रखता है, क्योंकि शैवागम में 'प्रतिभा' 'परम शिव' की 'विमर्शरूपिणी' शक्ति का अभिधान है :—

> विमर्शो नाम विश्वाकारेण विश्वप्रकाशेन
> विश्वसंहरणेन च अकृत्रिमाहमिति स्फुरणम्।

इसी शक्ति से निष्क्रिय ब्रह्म सक्रिय होता है और चेतना का अनुभव करता है। अभिनव गुप्त ने शिव की इसी अपरा शक्ति की वन्दना करते हुए कहा है :—

> यदुन्मीलनशक्त्यैव विश्वमुन्मीलति क्षणात्।
> स्वात्मायतनविश्रान्तां वन्दे प्रतिभां शिवाम्॥

इसी शक्ति के उन्मीलन से विश्व का एक ही क्षण में उन्मीलन होता है।[६]

'प्लाटिनस' के दार्शनिक विचारों का युरोपीय काव्य-शास्त्र पर काफी प्रभाव पड़ा और इसीके फलस्वरूप कवि स्रष्टा के नाम से प्रसिद्ध हुआ। १६ वीं शती अर्थात् नवजागरण युग के प्रथम अंग्रेजी आलोचक, फिलिप सिडनी ने अपने ऐपालोजी (Apologie) में कवि की इस शक्ति का इन्वेशन (Invention) नाम से विवेचन किया है जिसके द्वारा प्रकृति से अनाश्रित होकर कवि स्वयं एक नई प्रकृति हो जाता है। या तो वह ऐसे प्राणियों का निर्माण करता है जो सृष्टि में अनुप-

---

६. देखिये : **भारतीय साहित्य-शास्त्र** प्रथम खंड पृ० ३३१, लेखक—पं० बलदेव उपाध्याय, एम० ए०, साहित्याचार्य।

लब्ध हैं—जैसे भूत, यक्ष, परी आदि अथवा एक आदर्श संसार की सृष्टि करता है जो ईश्वर की सृष्टि से कहीं सुन्दर तथा सराहनीय होती है। कवि की सृष्टि अनूठी है; प्रकृति-सृष्टि पीतल के समान है जिसे कवि स्वर्ण में परिर्वतित करता है।[७]

इसी युग के प्रसिद्ध भौतिकतावादी अंग्रेज दार्शनिक, 'फ्रांसिस बेकन' ने भी कवि की इस उच्छृङ्खल शक्ति का उल्लेख किया है जो प्रकृति के नियमों से अनुशासित न होने के कारण प्रकृति की संयुक्त वस्तुओं का विभाजन तथा असंयुक्त वस्तुओं का एकीकरण करते हुए एक ऐसे संसार का निर्माण करती है जो मनुष्य की अतृप्त इच्छाओं तथा आकांक्षाओं को सन्तुष्ट करने में समर्थ है[८]। वास्तविक सृष्टि अपूर्ण तथा न्यायशून्य प्रतीत होती है और संतप्त मनुष्य ब्रह्मा की भर्त्सना करने के लिए कटिबद्ध प्रतीत होता है—'नाम चतुरानन पर चूकते चले गये।' इसीलिये उमरखय्याम के प्रेमी-युगल नियति के सहयोग से समस्त विश्व को पकड़ कर उसे चूर-चूर कर देने के इच्छुक हैं, जिससे कि वह एक ऐसे संसार का पुर्ननिर्माण कर सकें जो उनकी अनुभूतियों के उपयुक्त हो[९]।

१७वीं शताब्दी के मध्य से लेकर १८वीं शताब्दी के अन्त तक का प्रायः १५० वर्ष का काल वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास का समय माना जाता है

---

७ Only the poet disdaining to be tied to any subjection, lifted up with the vigour of his own invention, does grow in effect another Nature, in making things either better than Nature bringeth forth or, quite anew, forms such as never were in Nature, as the Heroes, Demigods, Cyclops, Chimeras, Furies etc......Nature's world is brazen and the poet alone is able to deliver a golden.

८ Imagination being not tied to the laws of matter, may at pleasure join that which Nature has severed, and sever that which Nature hath joined, and so make unlawful matches and divorces......the use of this Feigned history hath been to give some shadow of satisfaction to the mind of man in those points wherein the nature of things doth deny it, the world being in proportion inferior to the soul.

९ Ah Love ! could I and you with Fate conspire
To grasp this sorry scheme of things entire
Will we not shatter it to bits
To remould it nearer our hearts desire ?

जिसमें बुद्धि (Intellect) पर सर्वाधिक बल दिया गया और दर्शन और साहित्य एवं धर्म से रहस्यों तथा अंधविश्वासों का निष्कासन हुआ। इसी काल के आरंभ में इंगलैंड के प्रसिद्ध दार्शनिक, हाब्स (Hobbes) ने मानव-मस्तिष्क की शक्तियों का सूक्ष्म विवेचन करके यह निष्कर्ष निकाला कि कवि-कल्पना एक चंचल नटी है जो संसार की उन समस्त वस्तुओं को एक क्षण में एकत्र करने में समर्थ है जिनमें किसी प्रकार का साम्य प्रतीत होता है। इसलिए यह आवश्यक है कि इस शक्ति का विवेक (Judgement) द्वारा अनुशासन हो, क्योंकि विवेक ही एक गंभीर विश्लेपणकारी शक्ति है। कविता-रूपी नाव के संचालन के लिए चंचल कल्पना वायु के झोंके के समान है, परन्तु विवेक उस भारी पत्थर के समान है जो डगमगाती हुई नाव को स्थिर रखता है और उसे सीधे मार्ग पर संचालित करता रहता है। इस काल में फैन्सी (Fancy) या इमैजिनेशन (Imagination) पर जो कुछ भी विचार हुआ उसके पीछे प्रसिद्ध दार्शनिकों—'हाब्स', 'लॉक' तथा 'हार्टले' के विचारों—का स्पष्टतः प्रभाव रहा। इन दार्शनिकों के विचारों के अनुसार मनुष्य का मस्तिष्क बचपन में सफेद कागज के समान होता है जिसपर कोई संस्कार-चिन्ह नहीं होता। परन्तु धीरे-धीरे इस श्वेतपत्र पर इन्द्रियों, विशेषकर आँखों, द्वारा वाह्य संसार की वस्तुओं के रूप तथा प्रभाव अंकित होने लगते हैं। ये चिन्ह आरंभ में विखरे रहते हैं, परन्तु धीरे-धीरे मन की आन्तरिक आकर्षण शक्ति द्वारा एक दूसरे के निकट आकर मिलने लगते हैं और व्यापक तथा जटिल रूप धारण करते हैं। इस क्रमिक विकास से मस्तिष्क विकसित होता है और उसमें उदात्त विचारों का उन्मीलन तथा परिपोषण होता है। इस तरह इस विचार में बाह्य सृष्टि की प्रधानता है और इन्द्रियाँ मस्तिष्क की खिड़कियों के समान हैं जिनके माध्यम से बाहरी संसार की वस्तुओं तथा व्यापारों के प्रभाव इस पर अपने आप पड़ते रहते हैं और कालान्तर में उनका संयोग तथा संगठन होता है। मस्तिष्क का निर्माण उसी तरह होता है जैसे एक मशीन के भिन्न-भिन्न पुरजों को एकत्र करके। इस विचारधारा पर 'न्यूटन' के भौतिक शास्त्रीय सिद्धान्तों का गहरा प्रभाव है। 'न्यूटन' के अनुसार समस्त विश्व ही एक विशाल यंत्र है जिसके प्रेरक तत्त्व आकर्पण तथा गति (motion) हैं। वाह्य जगत में जो नियम आकर्षण (Gravitation) के रूप में परिलक्षित है वही मानव-मन में 'असोसिएशन' का नियम कहा जाता है। इसलिए इस दार्शनिक अथवा मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त को ऐसोसियेशनिज्म (Associationism) अथवा सेन्सेशनलिज्म (Sensationalism) की संज्ञा प्रदान की गई है और इसके सर्वप्रसिद्ध समर्थक का नाम डेविड हार्टले (David Hartley) है।

१८वीं शताब्दी के अन्त में सांस्कृतिक जीवन के सभी क्षेत्रों में इस बुद्धि-अनुशासित व्यवस्था के प्रति तीव्र प्रतिक्रिया हुई जो कालान्तर में एक नये 'वाद' को जन्म देने में समर्थ सिद्ध हुई। यही 'वाद' १९वीं शती के 'स्वच्छंदतावाद' (Romanticism) के नाम से प्रसिद्ध हुआ। कवि की कारयित्री प्रतिभा (Creative Imagination) का विशद विवेचन इसी नये 'वाद' की विशिष्ट उपलब्धि है।

जैसा पहले कहा जा चुका है कि १८वीं शताब्दी का कवि-शक्ति निरूपण न्यूटन के भौतिकतावादी सिद्धान्तों से प्रभावित है और इसका पर्यवसान अंग्रेजी समीक्षा-शास्त्र में एडिसन (Addison) के प्रसिद्ध निबन्ध-संग्रह 'प्लेजर्स आव इमैजिनेशन' (Pleasures of Imagination) में पाया जाता है। १९ वीं शताब्दी का विवेचन जर्मनी के आदर्शवादी दर्शन तथा प्राणिशास्त्र (Biology) की मान्यताओं से प्रभावित है और इसके प्रख्यात प्रवर्तक, प्रसिद्ध अंग्रेजी दार्शनिक समीक्षक सेमुअल टेलर कोलरिज हैं। एडिसन (Addison) के लेखों में इमैजिनेशन (Imagination) और फैन्सी (Fancy) पर्यायवाची हैं और मस्तिष्क का काम सर्वप्रथम इन्द्रियों द्वारा लाई हुई बाह्य वस्तुओं के बिम्बों को ग्रहण करना है और इसके पश्चात् उनको संयुक्त तथा सुगठित करके सुरक्षित रखना है जिससे एकाकी अवस्था में इन बिम्बों का स्मरण करके मन आनन्दानुभव कर सके। मन की वह आन्तरिक दृष्टि, जिसके सामने ये सुरक्षित बिम्ब प्रकट होते हैं, एकान्त अवस्था के परमानन्द का मुख्य स्रोत है[१०]। परन्तु कवि में यह शक्ति क्रियात्मक होती है और इसी शक्ति से वह अलौकिक वस्तुओं का निर्माण करता है और ईश्वर की सृष्टि से अत्यधिक सुन्दर सृष्टि को जन्म देता है, जो मनुष्य की कुंठित इच्छाओं को पूर्णतया संतुष्ट करती हैं।

१९वीं शताब्दी का विवेचन प्राणिशास्त्र(Biology)के मूल सिद्धान्त के अनुकूल है। इस सिद्धान्त के अनुसार वस्तु की मूल-एकता (Whole) पहले आती है और इसके भाग-विभाग अथवा अवयव (Parts) बाद को प्रकट होते हैं और वे तभी तक जीवित रहते हैं जब तक वे 'मूल' से सम्बन्धित रहते हैं। उदाहरण के लिए वृक्ष को ले लीजिये जिसकी सत्ता बीज में विद्यमान है। यह बीज सर्वप्रथम आता है और इसीमें से वृक्ष की शाखाएँ विकसित होती हैं। मानव-मस्तिष्क का निर्माण मशीन के समान नहीं होता, अपितु एक वृक्ष के समान यह आत्म-निहित तत्वों की

---

१० Wordsworth के शब्दों में 'They flash upon that inward eye which is the bliss of solitude'.

अभिव्यक्ति करता है जिसमें बाह्य-साधन—प्रकाश, पानी, वायु इत्यादि—पोषक का काम करते हैं, क्योंकि मस्तिष्क अपनी शक्ति से इन साधनों को पोषण सामग्री बनाकर आत्मसात् करता है।

इस नये विवेचन की मूल धारणा मस्तिष्क की प्रच्छन्न क्रियाशीलता की प्राथमिकता पर निर्भर है। बाह्य जगत की सत्ता मानव-मन की देन है। जब मानव-मन बाह्य जगत से संयुक्त होकर इसे अनुप्राणित करता है तभी इसमें स्फूर्ति आती है। इसका चारुत्व अथवा शोकाभास हमारी मानसिक अवस्थाओं का बाह्य-परिधान है।[११] जब हम हँसते हैं तो संसार हँसता है, परन्तु दुःखाकुल मनुष्य के लिये तो 'मगधेन समा काशी' और 'गंगापि अंगारवाहिनी' हैं। इन्द्रियाँ मस्तिष्क की परिचारिकाएँ हैं और वह उसी के रंग से रंजित होकर अपना व्यापार करती हैं और साधारण प्रत्यक्ष-बोध (Perception) में भी मस्तिष्क निष्क्रिय नहीं रहता। यही 'कोलरिज' की मूल धारणा है और इसी से प्रेरित होकर उन्होंने 'हार्टले' केऐसोशियेसनिज्म(Associationism) का खंडन करने का संकल्पभी किया। उनका कहना था कि मानव-मस्तिष्क जो सृष्टि-कर्ता के मन का प्रतिरूप (Image) माना जाता है और जो दिव्य-शक्ति से परिपूर्ण है, वह कभी भी निष्क्रिय, निश्चेष्ट अथवा रिक्त (blank) नहीं माना जा सकता। उनके विवेचन पर जर्मन दार्शनिक 'काण्ट' और 'शेलिंग' का काफी प्रभाव है, परन्तु उन्होंने इस ऋण को द्विगुणित करके चुकाया है। इस विवेचन का केन्द्र 'बायोग्राफिया लिट्‌रेरिया' (Biographia Literaria) के १३वें अध्याय का सर्वपरिचित अंश है, जिसमें उन्होंने प्राइमरी (Primary) या साधारण इमैजिनेशन (Imagination) और सेकेन्डरी (Secondary) या विशिष्ट इमैजिनेशन (Imagination) की परिभाषा करके इसे फैन्सी (Fancy)स्वच्छन्द-कल्पना से भिन्न बतलाया है।[१२] नीचे उधृत

---

११ 'O Lady ! we receive but what we give
And in our life alone does nature live
Ours is her wedding garment
And ours is her shroud

S. T. Coleridge

१२ The Imagination then I consider either as Primary or Secondary. The Primary Imagination I hold to be the living Power and prime agent of all human perception, and a repetition in the finite mind of the eternal act of creation in the infinite IAm. The Secondary Imagination I consider as

किये हुए गद्य-खंड के अनुसार कोलरिज तीन प्रकार के सृष्टि-व्यापार का उल्लेख करते हैं—(१) वह शाश्वत सृष्टि-कार्य (eternal act of creation) जो अनन्त विश्व में चल रहा है (in the Infinite I am) जिसमें ईश्वर की सत्ता अपने को घोषित करती है। (२) इसी व्यापक क्रिया की पुनरावृत्ति (repetition) मनुष्य के संकुचित मस्तिष्क में, जिसका नाम साधारण प्रतिभा (Primary Imagination) है क्योंकि यह सभी चेतन मस्तिष्क की मूल-शक्ति है। (३) कवि की कारयित्री प्रतिभा (Secondary Imagination) जो सर्वसाधारण शक्ति पर निर्भर होते हुए भी उससे अधिक बलवती है और इसी के सहयोग से कवि बाह्य संसार की वस्तुओं को अनुप्राणित तथा गतिशील बनाता है और प्राकृतिक अवयवों को तोड़-मरोड़ करके अथवा गला-पिघला करके एक नवीन सृष्टि का निर्माण करते हुए दिव्य सृष्टि-कर्ता का मानव अवतार होने का दावा करता है।

अब प्रश्न यह है कि अनन्त विश्व में सक्रिय शाश्वत सृष्टि-विधान का क्या रूप तथा अर्थ है। इसीकी व्याख्या करने के लिये 'कोलरिज' ने जर्मन दार्शनिक, 'हेगेल' के thesis (पक्ष) और anti-thesis (विपक्ष) दो विरोधी तत्वों का सहारा लिया है जो सदैव संघर्ष करते हुए किसी अन्तिम समन्वय (Synthesis) की ओर उन्मुख रहते हैं। यह दो शक्तियाँ 'मैगनेट' के धनात्मक और ऋणात्मक पोल के समान हैं अथवा उन्हें हम केन्द्रोन्मुख (Centripetal) और

---

an echo of the former, coexisting with the conscious will, yet still as identical with the primary in the kind of its agency and differing only in degree, and in the mode of its operation. It dissolves, diffuses, dissipates in order to recreate or where the process is rendered impossible, yet still at all events it struggles to idealize and unify. It is essentially vital, even as all objects (as objects) are essentially fixed and dead.

Fancy, on the contrary, has no other counters to play with but fixity and definities...a mode of memory emancipated from the order of time and space...blended with...choice. Fancy must receive all its materials ready made from the law of Association.

केन्द्रविमुख (Centrifugal) शक्तियाँ कह सकते हैं[१३]। इनके पारस्परिक संघर्ष का नाम जीवन है और इनके समन्वय अथवा संतुलन से ही जीवन-तत्व या चेतना का उत्तरोत्तर विकास होता है। यह तत्व प्रकृति में खनिज, वनस्पति, पशु इत्यादि कोटियों के बीच अग्रसर होता हुआ मनुष्य में पहुँचता है। इस तरह अन्तिम मंजिल पर मनुष्य तथा प्रकृति दो संयुक्त विरोधी तत्वों के समान विद्यमान होते हैं, परन्तु मनुष्य स्वयं समस्त प्रकृति का सार अथवा लघुरूप है। जो शक्ति प्रकृति में जीवन-तत्व के रूप में क्रियमाण है वही मनुष्य के मस्तिष्क में चेतना (intelligence) का रूप धारण करती है।

जीवन-तत्त्व की दो विरोधी शक्तियों की अभिव्यक्ति वस्तुओं के लगाव तथा बिलगाव के रूप में होती है जिससे हर वस्तु अपनी विशिष्टता रखते हुए भी अन्य वस्तुओं से संबंधित रहती है। चैतन्य मानव में इसका रूप स्वार्थ और परमार्थ में विद्यमान है। कवि 'वर्ड्सवर्थ' ने कहा है कि बुद्धिमान मनुष्य वही है जो स्वार्थ और परमार्थ का सामंजस्य करने में सफल हो[१४]।

'कोलरिज' के अनुसार प्रत्येक प्रतीतिबोध (act of perception) में

---

[१३] The centrifugal and the centripetal powers are like the opposite poles of the magnet. We might say that the life of the magnet subsists in their union, but that it lives (acts or manifests itself) in their strife.

Selected Poetry and Prose of Coleridge : *D. A. Stauffer* p. 578.

At the apex of the living pyramid, it is man and Nature, but man himself is a syllepsis, a compendium of Nature—the micocrosm. *Ibid* : p. 601.

The productive power, which in nature acts as nature, is essentially one with the intelligence, which is in the human mind above nature. *Ibid* : p. 511–12.

The two component counter powers (tendency to individuation and the tendency to unite or connect) actually interpenetrate each other, and generate a higher third, including both the former. *Ibid* : p. 586.

[१४] Type of the wise who soar but never roam
True to the kindred points of heaven and home.

हम बाह्य प्रकृति से अपने को संयुक्त करते हैं, परन्तु इसके साथ ही साथ अपनी सत्ता को अलग भी रखते हैं[१५]। इसी विचित्र विरोध तथा सहकारिता के फल-स्वरूप सामान्य या साधारण चेतना का विकास होता है और कवि काव्य-सृष्टि संपन्न करता है।

कवि की प्रतिभा उसी समय जागरूक तथा सक्रिय होती है जब उसका आभ्यन्तरिक आनन्द प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित करता है। इसीको 'कोलरिज' और वर्ड्‌स वर्थ दोनों ने मानव और प्रकृति का गठबंधन (Wedding) कहा है।

इसी संबंध से प्रकृति के अचेतन पदार्थ चैतन्य तथा गतिशील होते हैं; इसी भावाग्नि में पिघलकर वे एक दूसरे से मिल जाते हैं और समस्त विश्व बाह्य-विभिन्नता में एकता का आभास दिलाता है। यही कवि-प्रतिभा की विचित्रता है जिसको कोलरिज ने भिन्न-भिन्न नामों से अभिहित किया है—जैसे कोऐड्डुनेटिंग पावर (Coadunating power), वह शक्ति जो वस्तुओं को पिघलाकर संयुक्त कर दे। कवि की प्रतिभा दो वस्तुओं का एकीकरण करती है, परन्तु स्वच्छन्द कल्पना (Fancy) उन्हें केवल एक दूसरे के निकट प्रस्तुत कर देती है जिससे उनका तारतम्य तो होता है, परन्तु कोई रूप-परिवर्तन नहीं होता। इसका दूसरा नाम एसेम्प्लास्टिक पावर (Esemplastic power) है जो वस्तुओं को अपने दबाव से मोड़कर इच्छित स्वरूप प्रदान करती है जैसे कुम्हार चाक पर रखी हुई मिट्टी को अपनी उँगली से दबाते हुए सुन्दर घट का निर्माण करता है। 'इमैजिनेशन' द्वारा सम्पादित वस्तु-एकता Organic या अखंड है और 'फैन्सी' की एकता मशीनी (Mechanical) है। पहले में दोनों वस्तुएँ एक दूसरे के अंग के समान हो जाती हैं परन्तु दूसरे में वे मशीन के पुरजों के समान संयुक्त होने पर भी अलग-अलग रहती हैं। 'इमैजिनेशन' दो विरोधी तत्वों का समन्वय है। इसीसे नवीन तथा प्राचीन, परिचित तथा अपरिचित, साधारण और असाधारण, हृदय तथा मस्तिष्क, चेतन तथा अवचेतन, भूत, वर्तमान, भविष्य, व्यक्ति तथा जाति, भिन्न आकार-प्रकार के शब्द तथा उनकी विभिन्न ध्वनियाँ, स्वच्छन्दता तथा नियन्त्रण आदि तत्त्व समन्वित होकर कवि-सृष्टि का उन्मीलन करते हैं और अनेकता को एकता के रूप में बाँधते हैं। कवि अपनी सम्पूर्ण शक्ति के द्वारा ही काव्य-निर्माण

[१५] In every act of conscious perception, we at once identify our being with that of the world without us, yet place ourselves in contradistinction to that world.

D. A. Stauffer—Opt. Cit. p- 511.

करता है और उस काव्य का आस्वादन करने के लिए पाठक या भावक के लिए अपनी सभी शक्तियों का संगठन आवश्यक है।

'इमैजिनेशन' तथा 'फैन्सी' का अन्तर सुगमता से समझने के लिए हमें उस दरिद्र ब्राह्मण की प्रसिद्ध कथा का स्मरण करना चाहिये जो राजा भोज से धन प्राप्त करने की अभिलाषा से उनकी यश-प्रशस्ति में एक श्लोक बनाना चाहता था। उसे केवल एक ही सूत्र मिला था कि यश की उपमा धवल वस्तुओं से देने की परम्परा है। इसलिए उसने धवल वस्तुओं को—दुग्ध, दधि, आटा, कुष्ठ तथा वृद्ध ब्राह्मण के श्वेत बाल—एकत्र करके एक श्लोक तैयार किया :—

दुग्धवत् दधिवत् चैव पिष्टवत् कुष्ठवत् तथा।
राजाभोज यशोनाम वृद्धब्राह्मणशष्पवत्॥

उसने कालिदास के समक्ष स्वीकृति के लिए अपना श्लोक प्रस्तुत किया और महाकवि ने अन्तिम उपमा को बदलकर दूसरी पंक्ति को **'राजाभोज यशो नाम शरच्चन्द्रमरीचिवत्'** कर दिया। कहने की आवश्यकता नहीं कि कालिदास की उपमा कोलरिज के 'इमैजिनेशन' का उदाहरण है और ब्राह्मण की उपमाएँ चपल कल्पना का विलास-मात्र हैं।

इस विवेचन का पर्यवसान 'क्रोचे' के अभिव्यंजनावाद में होता है जहाँ पर कवि की विशुद्ध कल्पना अन्तर्मुखी होकर बाह्य जगत से एकदम विमुख हो जाती है। कला का प्राण कल्पना है; क्योंकि इसीसे बाह्य वस्तुओं का आन्तरिक रूप अभिव्यक्त होता है। परन्तु यह अभिव्यक्ति मनुष्य के मन में होती है और इसी विशुद्ध अभिव्यक्ति को कलाकार वाद को बाह्यरूप देता है जो कि गौण क्रिया है। इस तरह 'क्रोचे' के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति कवि है; क्योंकि चेतना के अन्तर्जगत में सभी अपने स्वयंप्रकाश्य (Intuition) का साक्षात्कार करते हैं, और प्रत्येक स्वयंप्रकाश्य मूर्तिमान होता है और इसीका नाम अभिव्यक्ति या अभिव्यंजना है। साधारण जन तथा कलाकार में अन्तर केवल इतना ही है कि कलाकार की अन्तर्दृष्टि अधिक पैनी होती है और वस्तुओं की आत्मा में दूर तक प्रवेश करती हैं। 'क्रोचे' के अनुसार कोई मूक कवि नहीं है।

'क्रोचे' ने इस तरह कवि की प्रतिभा का अदृष्ट रूप ही प्रधान मानकर कवि के महत्व पर कुठाराघात किया है, क्योंकि हमारे लिए तो कवि की प्रतिभा की सत्ता काव्यरूप ही में निहित है और जब तक वह इस तरह से विकसित नहीं है, हम कभी भी उसके कायल नहीं हो सकते। 'हैज़लिट' ने ठीक ही कहा है कि महान पुरुषों की परिभाषा यह है कि उनका नैसर्गिक महत्व मनुष्यों को इस तरह से प्रभावित करता है कि उसको मानने के लिए सभी लोग विवश हो जाते हैं।

जब तक ऐसा प्रभाव प्रतीत नहीं होता है, महत्व का कोई अर्थ नहीं होता। इसी लिए 'बरनर्ड बोसांके' (Bernard Bosanquet) ने 'क्रोचे' के सिद्धान्त की आलोचना करते हुए सत्य ही कहा है कि प्रत्येक कलाकार का सबसे कठिन तथा आवश्यक कार्य उपयुक्त माध्यम प्रस्तुत करना है; क्योंकि यह माध्यम ही वह शरीर है जिसमें उसका स्वयंप्रकाश्य (intuition) विशिष्ट आत्मा का रूप धारण करता है। वाह्य सांचे के विना अनुभूति निष्क्रिय तथा मुमूर्षु है।

इस तथ्य को पूर्व और पश्चिम के सभी साहित्य-शास्त्रियों ने स्वयंसिद्ध-सिद्धान्त (axiom) के रूप में माना है।। संस्कृत विचारकों के अनुसार कवि के लिए 'दर्शन' तथा 'वर्णन' दोनों वांछनीय हैं। भट्ट तोत ने 'काव्यानुशासन' में इसी तथ्य का सुन्दर वर्णन किया है :—

> स तत्त्वदर्शनादेव शास्त्रेषु पठितः कविः।
> दर्शनाद् वर्णनाच्चाथ रूढा लोके कवि श्रुतिः॥
> तथा हि दर्शने स्वच्छे नित्येऽप्यादि कवेर्मुनेः।
> नोदिता कविता लोके यावज्जाता न वर्णना॥

ऐसा कहा गया है कि सृष्टि के पहले ब्रह्म शब्दरूप में अगोचर था, परन्तु सृष्टि के उदय में उसने शरीर धारण किया[१६]। कवि के काव्य में भी शब्द का सशरीर होना नितान्त आवश्यक है, और यही उसका गुरुतम कार्य भी है। 'इलियट' ने कवि के उस कष्ट का उल्लेख किया है जो रक्त को मसि में परिवर्तित करने के कार्य में निहित है[१७] जिसकी उपमा प्रसव-पीड़ा से दी गई है। इस प्रसव-पीड़ा के बाद ही भाव भाषा के रूप में जन्म लेता है। 'राबर्ट ब्रिजेज' ने अपनी Nightingales नामक कविता में इसका मार्मिक वर्णन किया है। यहाँ पक्षी कवि के प्रतीक हैं और उनका कहना है कि उनका मुग्धकारी गीत प्रसव-पीड़ा को अभिव्यक्ति है; क्योंकि उनके स्वप्न इतने दिव्य और आशाएँ इतनी अव्यावहारिक हैं कि उनकी अभिव्यक्ति गीत की मूर्च्छना और लम्बी आह भी पूर्णतया सम्पन्न करने में असमर्थ है[१८]।

---

१६ In the beginning was the Word and the Word became the flesh.

१७ The pain of turning blood into ink.

१८ A throe of heart.
Whose pining visions dim, forbidden hopes profound,
No dying cadence or long sigh can sound,
For all our art.

कवि की विशेषता इसीमें है कि वह हमारी हृदयस्पर्शी अनुभूतियों को मुखरित करता है जो हमारे लिए मूक ही रहती हैं और यही वाक्-शक्ति उसको समाज में विशिष्ट स्थान देती है। 'वर्ड्सवर्थ' ने ठीक ही कहा है :— 'Poet is a man speaking to men' अर्थात् कवि वह मानव है जो अन्य मानवों से बोलने में समर्थ होता है, लेकिन उसका हृदय अत्यधिक संवेदनशील तथा बुद्धि अधिक व्यापक है और उसमें आत्म-निहित आनन्द-स्रोत तथा बाह्य प्रकृति में विद्यमान व्यापक आनन्द का अनुभव करते हुए अपनी वाणी के चमत्कार से पाठकों तक वह आनन्द प्रेषित करने की अपूर्व शक्ति है जिसके द्वारा वह समस्त मानव-जाति को भाव-सूत्र में बाँधकर संवेदनशील बनाता है [१९]।

'वर्ड्सवर्थ' तथा 'कोलरिज' ने इस उक्ति को बार-बार दुहराया है कि कवि ज्ञान में तो समाज का अग्रगण्य होता है; परन्तु उसकी दृष्टि बच्चों के समान कौतूहलपूर्ण है। इसी दृष्टि से वह संसार की परिचित वस्तुओं के ऊपर से सामान्य रूप का आवरण हटाता है (removes the film of familiarity) और उसमें निहित विशिष्ट रूप का उद्‌घाटन करता है। इस तरह से बाह्य जगत् के सौन्दर्य तथा रहस्य को स्थायित्व प्रदान करना भी कवि की प्रतिभा का उपयोगी कर्म है। आचार्य 'कुन्तक' ने वक्रोक्ति का चमत्कार इस तरह प्रकट किया है :—

> कवि चेतसि प्रथमं च प्रतिभा प्रतिभासमानम् अघटित–
> पाषाणशकलकल्पमणि प्रख्यमेव वस्तु विदग्धकवि–
> विरचित वक्रवाक्योपारूढं शाणोल्लीढमणिमनोहरतया
> तद्विदाह्लादकारि काव्यत्वमधिरोहति ॥

कवि-कौशल

मनुष्य जन्मना कवि होता है, केवल कौशल से नहीं; परन्तु कौशल प्रतिभा के विकास के लिए आवश्यक है। इसलिए भारतीय तथा यूरोपीय विचारकों ने कवि-

---

[१९] The poet binds with passion the vast empire of society.

Born of deep pain is the poet's art,
And the song that alone is true,
Is wrung from a throbbing human heart,
That sorrow is burning through.

Kerner

शिक्षा, कौशल, कला, ज्ञान तथा अभ्यास पर भी काफी बल दिया है। 'काव्य-प्रकाश'कार ने इसी तथ्य की व्याख्या करते हुए कहा है :—

'शक्तिर्निपुणता लोक-शास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात्।
काव्यज्ञ शिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे।'

यूरोपीय समीक्षकों ने प्रतिभा तथा कला के संबंध में बहुत छानबीन की है। प्रतिभा नैसर्गिक है और कला उत्पाद्या शक्ति है तो दोनों का मेल किस तरह से बैठता है ? इसके उत्तर में 'लाँजिनस' ने सुन्दर समाधान प्रस्तुत किया है। उनका कहना है कि जिस तरह एक धन-सम्पन्न व्यक्ति को ऐसे परामर्शदाता की आवश्यकता होती है जो उसे धन के सदुपयोग का नियम बता सके, उसी तरह प्रतिभा को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए कला उपयोगी है। काव्य-सृष्टि के लिए 'भट्ठी तथा रेती' (forge and file) दोनों आवश्यक हैं। एक धातु पिघलाने के लिए और दूसरा उसको परिष्कृत करके चमकाने के लिए। परन्तु सफल कला वही है जो अपने को छिपाने में समर्थ होकर स्वाभाविकता का अंगमात्र होने का आभास कराती है[२०]। इसीसे पोप ने कहा है कि 'True ease in writing comes from art not chance' अर्थात् आशुलेखन-शक्ति कला के द्वारा ही प्राप्त होती है।

हमारे यहाँ आचार्य 'राजशेखर' ने कवियों को तीन मुख्य कोटियों में विभक्त किया है—शास्त्रकवि, काव्यकवि और उभयकवि। इसी तरह अंग्रेजी प्रबंधकार तथा १८वीं शताब्दी के प्रसिद्ध आलोचक 'एडिसन' (Addison) ने कवियों की दो मुख्य कोटियों का उल्लेख किया है—प्रतिभा-प्रधान कवि तथा कला-प्रधान कवि। पहिली श्रेणीवाले कवि अपनी प्रतिभा की प्रखरता के बल से कला की अपेक्षाकृत अवहेलना करते हुए भी उच्चकोटि का काव्य-सृजन करते हैं। इसके विपरीत दूसरे वर्ग के मेधावी कवि अपने को कला के अनुशासन में रखते हुए अपनी प्रतिभा को विकसित तथा अभिव्यंजित करते हैं।

हमारे यहाँ आदिकवि वाल्मीकि के 'शोक श्लोकत्व' की परंपरा के अनुसार और पश्चिम में दिव्यप्रेरणा (Inspiration) में आस्था के कारण एक वर्ग के कवियों तथा समीक्षकों की ऐसी धारणा है कि कविता तो प्रतिभा-संपन्न भावुक कवि-हृदय का उच्छ्वास है और उसके रसप्लावित हृदय से

---

२० Art is effective when it seems to be nature, and nature hits the mark when she has art hidden in her bosom.

—*On the Sublime.*

काव्य-देवी, भाव तथा भाषा से अलंकृत होकर उसी प्रकार निस्सृत होती हैं जैसे यूनान की ज्ञान-देवी 'मिनरवा' अपने पिता, देवाधिदेव, 'जियस' के मस्तिष्क से स्वस्थ तथा शस्त्र-सज्जित प्रकट हुई थीं (His Minerva is born in full panoply, Lamb)। इस प्रसंग में पूर्व तथा पश्चिम के कुछ साहित्य-विवेचकों ने कवि वर्ड्सवर्थ की काव्य-परिभाषा के प्रथम अंश को इस धारणा का परिपोषक माना है—'कविता प्रबल भावों का सहज उच्छलन है (Poetry is the spontaneous overflow of powerful feelings)। यह प्रमाण इसलिये नितान्त भ्रमात्मक है कि परिभाषा के एक महत्वपूर्ण अंश की इसमें अवहेलना है। 'वर्ड्सवर्थ' आगे चलकर स्पष्ट व्याख्या करते हैं कि काव्य का उदय उन भावों से होता है जो मन की शान्त अवस्था में अनुस्मृत होते हैं (Emotions recollected in tranquillity)। इस प्रकार भावों के काव्य-क्षेत्र में प्रस्फुटन का क्रम चार अवस्थाओं में विभक्त किया जा सकता है—(अ) कवि-हृदय का बाह्य अथवा आन्तरिक परिस्थितियों के कारण भावोद्वेलित होना। यह अवस्था ऐसी है जिसमें भाव-स्रोत पंकिल जल के समान है जिसे स्वच्छ होने के लिए कुछ समय की अपेक्षा होती है। (ब) इस भाव को स्थिर होने के लिए अपेक्षित समय जिसमें इसका परिष्कार हो सके। (स) इसके बाद मन की शान्त अवस्था में पूर्व परिस्थितियों का स्मरण होता है जिसके फलस्वरूप वे पुराने भाव अपने स्वच्छ रूप में उद्बुद्ध होते हैं, यद्यपि उनकी प्रभविष्णुता (Warmth) तथा तीव्रता (Intensity) संतुलित होते हुए भी अखंडित रहती है। (द) अन्तिम अवस्था इस पुनर्जागृत भावों की काव्याभिव्यक्ति है। कहने की आवश्यकता नहीं कि स्वच्छंदतावादी नवयुवक कवियों को यह परिभाषा अमान्य थी और 'वायरन' ने अपने को उस व्याघ्र के समान घोषित किया जो पहला प्रयास असफल होने पर गुर्राता हुआ पीछे हट जाता है। और 'शेली' ने अपने 'Defence of Poetry' में स्पष्ट ही कहा है कि काव्य-निर्माण के समय हृदय दहकते हुए अंगारे के समान होता है, परन्तु वह इतनी तीव्रता से शीतोष्ण हो जाता है कि उच्चतम कवि-कृति भी प्रथम भाव-स्फूर्ति की छाया मात्र ही रह जाती है।[२१]

परन्तु तर्कसंगत मत तो यही है कि कवि के उच्चकोटि के उद्गार भी भेड़िये के बच्चे के समान अपरूप होते हैं जिनको प्रसविनी माता अपनी जिह्वा

---

२१ The mind in creation is like a fading coal, which somo invisible influence, like an inconstant wind, awakens te transitory brightness.

से चाट करके ही सुघड़ तथा सबल करती है। कवि अपने काव्यों का बार-बार संशोधन करता है, उनके शब्दों, वाक्यों, अलंकारों तथा बिम्बों (Images) में बार-बार परिवर्तन करता है और सैकड़ों बार के संशोधन तथा काट-छाँट के बाद ही भाव और भाषा का अन्तिम स्वरूप निश्चित होता है। कवि 'शेली' की पाण्डुलिपि की परीक्षा से यह पता चलता है कि उसके गीतिकाव्य, जो हृदय के शुद्ध उद्‌गार के समान आभासित होते हैं, वास्तव में संशोधन और परिवर्तन की क्रिया से अछूते नहीं हैं। 'ईट्स' (Yeats) अपने को अन्तिम स्वच्छन्दतावादी कवि (Last romantic) समझते थे, परन्तु उनकी बहुत सी प्रसिद्ध कविताएँ वर्षों के लगातार संशोधन के बाद ही कवि-परीक्षक की कसौटी पर खरी उतर सकीं। उन्होंने काव्य-चमत्कार के रहस्य के संबंध में ठीक ही कहा है कि कवि होने का अर्थ है सड़क पर पत्थर तोड़नेवाले श्रमिक से अधिक परिश्रम करना, परन्तु संसार की दृष्टि में एक बेकार खिलाड़ी बना रहना[२२]। इसके साथ ही यह तथ्य भी स्मरणीय है कि कवि-प्रयास की झलक मात्र ही काव्य को सारहीन करने के लिए पर्याप्त होती है। जिस प्रकार बाह्यसृष्टि विश्व-कर्ता की लीला है उसी प्रकार कवि-सृष्टि भी प्रतिभा के लीला-रूप में ही सफलता की चरम सीमा पर पहुँचती है, चाहे एक-एक शब्द के पीछे कवि के वर्षों का परिश्रम छिपा हो और प्रत्येक वाक्य उसके श्रमसीकर तथा अश्रुओं (Sweat and tears) से सिक्त ही क्यों न हों।[२३]

'मिल्टन' ने ठीक ही कहा है कि उत्तम काव्य-निर्माण एक कठिन तपस्या है इसके लिए सुख की अवहेलना करके कठिन परिश्रम का जीवन अपनाना पड़ता है (Scorn delight and live laborious days) और जो सुंदर, सुखद काव्य के स्रष्टा होने की आकांक्षा करते हैं, उन्हें अपना जीवन ही एक सुंदर काव्य के समान बनाना चाहिए (ought himself to be a true poem)।

कवि-शिक्षा पर पूर्व-पश्चिम में समान रूप से जोर दिया गया है, परन्तु यूरोप में बहुत दिनों तक इस शिक्षा का मुख्य स्तंभ किसी प्राचीन आदर्श का सफल

---

२२. For to articulate sweet sounds together
Is to work harder than all these, and yet
Be thought an idler by the noisy set
Of Bankers, school masters, and clergymen.

२३ Art is the form imposed by taste upon the playful imagistic activity.

Melvin Rader : *A Modern Book of Esthetics*

अनुकरण रहा है। जिस प्रकार हमारे देश में राष्ट्र-भाषा हिन्दी तथा अन्य प्रान्तीय भाषाओं के लिए चिरकाल तक संस्कृत कवि तथा लेखक ही आदर्श रहे, उसी प्रकार यूरोप के विभिन्न भाषा-सेवियों के लिए शताब्दियों तक यूनानी तथा लैटिन भाषा-साहित्य ही उत्कृष्ट साहित्य के प्रतीक रहे और प्राचीन कवियों तथा आचार्यों का अनुशीलन तथा अनुकरण प्रत्येक उदीयमान लेखक का मुख्य कर्तव्य रहा। परन्तु 'अनुकरण' का क्या अर्थ है ? यह प्रश्न रोमनकाल ही में उठाया गया था, क्योंकि रोम की सत्ता के उत्कर्ष-काल में भी साहित्य के कर्णधारों के लिए अधिकृत यूनान का साहित्य और संस्कृति ही अनुकरणीय आदर्श बनी रही। इस प्रश्न का सही समाधान 'होरेस' (Horace) तथा 'क्विन्टिलियन' (Quintilian) ने किया और अपने देशवासियों को यूनानी साहित्य-महारथियों के उत्तम ग्रन्थों का दिन-रात अनुशीलन करने के महत्व पर आग्रह करते हुए इस बात का स्मरण दिलाया कि यूनानी लेखकों का महत्व उनकी मौलिकता में निहित है और अनुकरण का अर्थ यह है कि आदर्श लेखक की प्रतिभा तथा कला के अध्ययन से नये लेखक की प्रतिभा मुखरित होकर राष्ट्र-साहित्य का, राष्ट्र के संस्कार तथा संस्कृति के अनुसार ही सुव्यवस्थित रूप निर्मित करने में समर्थ हो। इस विषय पर इस काल के प्रसिद्ध अलंकार-शास्त्री (Rhetorician) 'लॉजिनस' ने, जिनका माध्यम यूनानी भाषा थी, अपने प्रसिद्ध, किन्तु अपूर्ण, निबन्ध 'ऑन दी सबलाइम' (On the sublime) में बड़ा ही सुंदर तथा सर्वमान्य विवेचन प्रस्तुत किया है। उनका कहना है कि किसी उत्तम आदर्श के अनुकरण का अर्थ है उसकी आत्मा से अनुप्राणित होकर उसी ऊँचाई पर पहुँचना—जैसे देवमन्दिर में रहने-वाली भविष्यवक्ता पुजारिन (prophetess) धर्म-सिंहासन पर बैठते ही दैवी उन्माद से प्रेरित होकर देव-तुल्य हो जाती है, उसी प्रकार शिष्य-लेखक अपने आदर्श में तन्मय होने का संकल्प करता है। यह अनुकरण आदर्श गुरु के साथ पुनीत स्पर्धा करने के समान है जिसमें जीत और हार दोनों उपयोगी सिद्ध होती हैं; क्योंकि उत्तम स्पर्धा ही मानव-जीवन के विकास के लिए मूलभूत प्रेरणा है। इतना ही नहीं, उदीयमान लेखक को अपने आदर्श ही का रूप धारण करके लिखना चाहिये। यह समझते हुए कि उसका लेख अतीत के महारथियों के समक्ष प्रस्तुत किया जायगा और उनकी अग्नि-परीक्षा ही में इसकी शुद्धि, अशुद्धि का निर्णय होगा।[२४]

---

२४ Like the Pythian priestess who breathes the divine vapour exhaled round her tripod and by the heavenly power thus communicated she is impregnated and straightway 'delivers oracles in virtue of the afflatus.

यूरोप के पुनर्जागरण-काल अर्थात् पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण से लेकर १८वीं सदी के आरंभ तक लगभग दो सौ वर्षों का समय सैद्धान्तिक संघर्ष का काल माना जाता है जिसमें पुराने ग्रीक और लैटिन सिद्धान्तों तथा परम्पराओं के माननेवालों तथा नई भाषाओं की स्वच्छन्द-प्रगति के समर्थकों में भयंकर संग्राम चलता रहा, जिसमें परम्परा तथा प्रयोग का महान् प्रश्न उपस्थित हुआ।

प्रश्न गंभीर है और इस पर विचार भी गंभीरतापूर्वक हुआ है। साहित्य के विकास के लिए इसका गतिशील और बन्धन-मुक्त होना आवश्यक है और इसके साथ ही साथ स्वतंत्रता का अर्थ यह नहीं है कि पूर्व-परम्परा से संबंध-विच्छेद करके साहित्य बिना पतवार की नाव के समान परिस्थितियों का थपेड़ा खाते हुए उद्देश्यहीन तथा उच्छृंखल होकर समाज का अभिशाप बन जाय। पश्चिम का साहित्य-इतिहास संतुलित प्रयोग तथा परम्परा के पारस्परिक संबंध का उत्कृष्ट नमूना है। इसमें परिवर्तन एवं भयंकर क्रान्तियाँ तथा विस्फोट होते रहे और कुछ काल तक साहित्य का परम्परागत रूप छिन्न-भिन्न सा हो गया, परन्तु अन्त में नयी मान्यताओं के साथ पुरानी पद्धतियाँ कम से कम आंशिक रूप में समन्वित होकर एक स्वस्थ साहित्य का संबल बनीं। आज का पश्चिमी साहित्य प्रयोगवादी विचारधाराओं का क्रीड़ा-स्थल बन गया है और पुरानी परम्पराएँ तिरस्कृत और परित्यक्त सी हो गई हैं, परन्तु बहुत से प्रयोग तो पानी के बुलबुलों के समान क्षणिक सिद्ध हुए हैं और कुछ अपने विकास के साथ ही एक नये अनुशासन की रूपरेखा भी तैयार कर रहे हैं।

काव्य-परंपरा के सबल समर्थक 'डाक्टर जान्सन' ने ठीक ही कहा है[२५] कि अनुकरणमात्र से ही कोई उच्च कलाकार नहीं हो सकता। प्रत्येक युग में प्रतिभावान् कलाकार पुरानी परम्परा में परिवर्तन करते हैं और ये परिवर्तन कालान्तर में

And in truth that struggle for the crown of glory is noble and best deserves the victory in which even to be worsted by one's predecessor brings no discredit.'

It will be a high test if we presuppose such a tribunal and theatre for our own utterances, and imagine that we are undergoing a scrutiny of our writings before these great heroes, acting as judges and witnesses.

२५ Every genius produces some innovation which, when invented and approved subverts the rule which the practice of foregoing authors had established.

मान्यता प्राप्त करके साहित्य में नवीनता का उद्भव करते रहते हैं। इस विषय में सबसे सराहनीय और विस्तृत विवेचन बीसवीं सदी के लब्ध-प्रतिष्ठ कवि तथा समीक्षक, टी० एस० इलियट, नेअप ने बहु प्रशंसित लेख 'ट्रेडिशन ऐण्ड इन्डिविडुअल टैलेण्ट' (Tradition and Individual Talent) में किया है, जिसका एक संक्षिप्त विश्लेषण यहाँ अभीष्ट है। इस प्रसिद्ध निबंध का सारांश यह है कि प्रत्येक नव-लेखक को, यूरोप की प्राचीन काव्य-परंपरा को सदैव ध्यान में रखना चाहिये; यह परम्परा यूनान के आदिकवि होमर, से लेकर आज तक अक्षुण्ण चली आयी है और इसीके अन्तर्गत विभिन्न देशीय भाषाओं का उद्गम तथा विकास हुआ है। इस चेतना को ऐतिहासिक चेतना कह सकते हैं जिसका अर्थ है कि अतीत और वर्तमान अविभाज्य हैं और एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। वर्तमान भूत का उत्तराधिकारी तो है ही, परन्तु इसके साथ ही साथ वह अतीत के पुराने रूप को बदलता भी रहता है। जब वर्तमान में किसी महान् ग्रन्थ का निर्माण होता है तो परम्परागत व्यवस्था में परिवर्तन अवश्यम्भावी है; क्योंकि नये प्रतिभासंपन्न कवि का पूर्व कवियों के बीच योग्यतानुसार स्थान निर्दिष्ट करना अनिवार्य हो जाता है। इस तरह परम्परा का रूप स्थिर नहीं, अपितु निरंतर परिवर्तनशील है। आज के कवि के जीवन-स्पन्दन में अतीत के सभी कवियों का सूक्ष्म-अस्तित्व किसी न किसी रूप में विद्यमान रहता है और उसकी सर्वाधिक मौलिकता में पूर्ववर्ती लेखकों का अत्यधिक प्रभाव होता है।[२६]

---

२६ The historical sense involves a preception, not only of the pastness of the past, but of its presence ; the historical sense compels a man to write not merely with his own generation in his bones, but with the feeling that the whole of the literature of Europe from Homer and within it the whole of the literature of his own country, has a simultaneous existence and composes a simultaneous order.........the existing monuments form an ideal order among themselves which is modified by the introduction of the new (the really new) work of art among them.

......If we approach a poet without prejudice we shall often find that not only the best, but the most individual parts of his work may be those in which the dead poets, his ancestors, assert their immortality most vigorously.

इस प्रकार परम्परा तथा अनुकरण तभी सार्थक तथा उपादेय होते हैं जब वे कवि की प्रतिभा तथा मौलिकता का दमन नहीं, अपितु उन्मीलन तथा विकास करते हैं। जो कवि अपने आदर्श-लेखक से प्राप्त ऋण को अपनी मौलिकता के रंग में रंगने में असमर्थ है वह साहित्यिक तस्कर (Plagiary) है। इसीलिए 'बेन जान्सन' (Ben Jonson) ने ठीक ही कहा है कि उदीयमान कवि को मधु-मक्खी का स्वभाव ग्रहण करना चाहिए, जो विभिन्न पुष्पों पर बैठकर उनका रस लेती है, परन्तु उसे अपनी शक्ति से मधु रूप में परिवर्तित कर देती है। 'शेक्सपियर' तथा 'मिल्टन' ऐसे प्रसिद्ध और महान् कवि दूसरे लेखकों के निरंतर ऋणी रहे हैं, परन्तु उनकी प्रतिभा पारस पत्थर के समान थी जो बाहर से लिए हुए लोहे को सोने में बदल सकती थी। 'बेन जान्सन' स्वयं इसी कोटि के कवि थे और साहस तथा निर्भीकता के साथ पुराने साहित्य-भण्डार की लूट करते थे, परन्तु 'ड्राइडेन' ने ठीक ही कहा है— 'वे पुराने लेखकों के निकट एक 'बादशाह' के समान उपस्थित होते हैं और जो व्यापार तुच्छ लेखकों में चोरी की संज्ञा से युक्त होगा, वह उनके लिए विजय का पर्याय है।''

हमारे भारतीय काव्यशास्त्रियों ने भी इस विषय के सन्दर्भ में प्रायः इन्हीं तथ्यों का निरूपण किया है और दोनों वर्गों में पर्याप्त साम्य भी है। मम्मट ने प्रतिभा-विकास के लिए अध्ययन, अभ्यास, शिक्षा इत्यादि को आवश्यक बतलाया है जिसका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं :—

शक्तिर्निपुणता लोक-शास्त्र - काव्याद्यवेक्षणात्।
काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे॥

विद्यावृद्ध पुरुषों के सान्निध्य से ही नव-कवि-प्रतिभा पुष्पित तथा पल्लवित होकर संसार में सुगन्धि फैलाती है :—

प्रथयति पुरः प्रज्ञा ज्योतिर्यथार्थ परिग्रहे
तदनुजनयत्यूहापोहक्रिया विशदं मनः।
अभिनिविशते तस्मात्तत्व तदेकमुखोदयं
सह परिचयो विद्यावृद्धैः क्रमादमृतायते॥

—काव्य-मीमांसा[२७]

---

२७ प्रसरति किमपि कथञ्चन,
नाभ्यस्ते गोचरे वचः कस्य।
इदमेव तत्कवित्वं,
यद्वाचः सर्वतो दिक्का॥

मौलिकता के अनुसार कवि के कई भेदोपभेद किये हैं—कवि, कुकवि, तस्कर आदि—कविरनुहरतिच्छायामर्थं कुकवि पदादिकं चौरः।
सर्वप्रबन्धहर्त्रे साहसकर्त्रे नमस्तस्मै।

'कवि' छाया मात्र का अनुकरण करता है; 'कुकवि' भाव तथा अर्थ का अपहरण; परन्तु 'कवि-चोर' तो समस्त प्रबन्ध को निगलकर डकार भी नहीं लेता। 'काव्य मीमांसा' के अनुसार कवियों की चार श्रेणियाँ हैं :—**उत्पादक कवि**, जो प्रतिभा के माध्यम से उत्तम काव्य-निर्माण करता है, **परिवर्तक कवि**, जो अपनी निपुणता से पुराने भावों को नये रूप में प्रस्तुत करता है; **आच्छादक कवि**, जो दूसरों की रचना की अनुकृति को मौलिक ग्रन्थ के रूप में घोषित करता है; और **संवर्गक कवि** जो निर्भीक तस्कर है, चोरी के माल को अपनी कृति कह कर मौलिकता का दावा करता है।

इस विषय को अधिक बढ़ाने की आवश्यकता नहीं है, जो कुछ कहा गया है उतना ही पर्याप्त है।

कवि-कर्म

आचार्य राजशेखर ने 'कवि' शब्द की व्युत्पति 'कवृ वर्णे' धातु से मानकर कवि की 'वर्णना' को मुख्य शक्ति माना है, यद्यपि 'भट्टगोपाल' ने 'कौति शब्दायते विमृशति रसभावानिति कविः' कहकर कवि की भावुकता तथा सहज गायन-निपुणता को प्रथम स्थान दिया है; परन्तु 'मम्मट' की परिभाषा—'लोकोत्तर-वर्णनानिपुणं कवि कर्म' अधिक व्यावहारिक तथा तर्क-संगत प्रतीत होती है। कवि का मुख्य कर्म है वास्तविक वस्तुओं का अलौकिक रूप मूर्तिमान करना।

कवेः सम्भ्रियतेऽशक्तिर्व्युत्पत्त्या काव्यवर्त्मनि।
वैदग्धी-चित्रचित्तानां हेया शब्दार्थ गुम्फना॥

वही

नैसर्गिकी च प्रतिभा, श्रुतश्च बहुनिर्मलम्।
अमन्दश्चाभियोगश्च, कारणं काव्य-सम्पदः॥

दण्डी—काव्यादर्श

अन्धास्ते कवयो येषां पन्थाः क्षुण्णः परैर्भवेत्।
परेषां तु यदा क्रान्तः पन्थास्ते कविकुंजराः॥

गंगावतरण-काव्य

परन्तु इस अलौकिक रूप की आधारशिला स्वभावोक्ति ही है, जिसकी परिभाषा दण्डी ने इस प्रकार की है :—

नानावस्थं पदार्थानां रूपं साक्षाद् विवृण्वतीम्।
स्वभावोक्तिश्च जातिश्चेत्याद्या सालंकृतिर्यथा॥

नानावस्थाओं में पदार्थ के साक्षात् रूप के प्रकटीकरण का नाम स्वभावोक्ति है। यह कथन 'कोलरिज' के प्रसिद्ध विचार से पूर्ण साम्य रखता है। 'कोलरिज' ने काव्य के दो मूल सिद्धान्तों का उल्लेख किया है—एक है वस्तुओं को प्रत्यक्ष रूप में तथावत् प्रस्तुत करना, और दूसरा है वस्तुओं के वास्तविक रूप पर कल्पना का मुलम्मा देकर उनकी अप्रत्यक्ष विचित्रताओं की अभिव्यक्ति करना। 'वर्ड्सवर्थ' के प्रकृति-चित्रों की सराहना करते हुए उन्होंने कहा है कि इनकी कविता में वस्तुओं का बिंब पारदर्शी झील में प्रतिबिंबित हरे खेत के समान है; बिंब तथा वस्तु का अंतर केवल इतना ही है कि बिंब में अधिक स्निग्धता तथा चमक का पुट आ गया है। प्रतिभा का कार्य ओस तथा कंकड़ के ऊपर की हुई पालिश के समान है; यह न तो वस्तुओं का रूप बिगाड़ती है और न उन पर अवास्तविकता का रंग चढ़ाती है। अपितु उनके अप्रत्यक्ष और साधारण दृष्टि से अगोचर बारीकियों और रंगों को उभारकर उन्हें रत्नों का सौंदर्य प्रदान करती है[२७]।

इस संदर्भ में आचार्य कुन्तक का पूर्वोक्त कथन स्मरणीय है कि लौकिक वस्तु पाषाणखंडवत् मणि के समान है, परन्तु कवि की प्रतिभा, कौशल तथा वाक्-चातुर्य से वह शान पर खरादी हुई मणि के समान सुशोभित होती है। इस प्रकार कवि की प्रतिभा तथा बाह्य वस्तुओं का समन्वय ही काव्य-निर्माण का कारण है।

---

[२७] Like a green field reflected in a calm and perfectly transparent lake, the image is distinguished from reality only by its greater softness and luster. Like the moisture or the polish on a pebble, genius neither distorts nor false colours its objects, but on the contrary brings out many a vein and many a tint which escapes the eye of common observation, thus raising to the rank of gems what had been often kicked away by the hurrying foot of the traveller on the dusty high road of custom.

D. A. Stauffer : *Op. Cit. p. 355.*

इसमें प्रधानता कवि के अन्तर्चक्षु की है जो वस्तुओं के विशिष्ट रूपों का साक्षात्कार करके, उन्हें बाह्य रूप-सौष्ठव के परिधान में प्रस्तुत करने के लिए कवि-कौशल को सक्रिय बनाती है। कहा तो यहाँ तक गया है कि कवि अपने ध्यानबल से इस आन्तरिक रहस्य का दर्शन करता है और उसी दर्शन का अभिव्यक्तीकरण ही काव्य है। इसीलिए काव्य-कलाकार के विशिष्ट गुणों में बाह्य तथा आन्तरिक विशेषताओं का सुखद समन्वय है—जैसे प्रज्ञा, सूक्ष्म-निरीक्षण, अभ्यास-प्राप्त कौशल, छन्दों इत्यादि का ज्ञान, स्थिर तथा गतिमान परिस्थितियों में प्राणिमात्र की शारीरिक प्रतिक्रियाओं का ज्ञान, प्रत्युत्पन्नमतित्व तथा आत्मसंयम और चरित्र-बल। कवि-सृष्टि का रहस्य समझने के लिए हमें दुष्यन्त की उस धारणा का स्मरण करना चाहिये जिसके अनुसार ब्रह्मा ने समस्त रूपोच्चय की प्रतिमा चित्त में मूर्तिमान करके उसमें प्राणप्रतिष्ठा की और इस तरह शकुन्तला का आविर्भाव हुआ—

चित्ते निवेश्य परिकल्पितसत्त्वयोगा
रूपोच्चयेन मनसा विधिना कृतानु।
स्त्रीरत्नसृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे
धातुर्विभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्च तस्याः॥

अंग्रेजी शब्द 'पोइट्री' पोयिन (Poiein) धातु से बना है जिसका अर्थ है बनाना या नवनिर्माण करना। यूनानी 'माइमेसिस' (Mimesis) अथवा 'अनुकरण' का यही शुद्ध अर्थ है, परन्तु 'प्लेटो' ने इसका संकुचित अर्थ में प्रयोग करके कवि-व्यापार को तिरस्कृत बतलाया। उनके कथनानुसार कवि प्रकृति-वस्तुओं के समक्ष एक दर्पण रखता है और उसमें प्रतिबिंबित छाया का ही चमत्कारिक रूप प्रकट करके वास्तविकता की भ्रान्ति पैदा करता है। प्रकृति स्वयं स्वर्गीय तत्त्वों (Ideas) का बिंबमात्र है और उसका अनुकरण तो बिंब को प्रतिबिंबित करने के समान है। इसके अतिरिक्त सांसारिक वस्तुओं में सत्य का अभाव है; क्योंकि इनका रूप निरन्तर बदलता रहता है। कवि-कृति इन्हीं बाह्यावर्तों का प्रतिरूप है; इसमें उपरिष्ठ (Superficial) चमत्कार है, सत्य का आभास नहीं।

यही विचार 'अरस्तू' के काव्य-शास्त्र का परोक्षरूप से अभिप्रेरक है। उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि कवि-व्यापार एक सक्रिय प्रतिभा तथा कला की उपज है, जिसके द्वारा कवि प्रकृति तथा मानव-जीवन में बिखरे हुए अव्यवस्थित उपकरणों को व्यवस्थित करके उन्हें नया रूप देता है।

नाटक का कथानक मानव-कार्यों का ऐसा समन्वित रूप है जिसमें

विभिन्न अंश एक दूसरे से इस प्रकार गुँथे रहते हैं जैसे शरीर के विभिन्न अवयव। इसलिये इसमें से यदि तुच्छाति तुच्छ अंश भी अलग कर दिया जाय तो वह समस्त कथानक को अपूर्ण तथा विकृत कर देगा। 'अरस्तू' ने कवि के अनुकरण का क्षेत्र काफी व्यापक रक्खा है। इसमें भूत, वर्तमान की वस्तुओं का वास्तविक रूप, समाज के विश्वास तथा परम्पराजन्य वस्तुएँ (जैसे देवता, दानव इत्यादि) और उनका आदर्श रूप[२८] आदि आते हैं। अपने वैज्ञानिक ग्रन्थों में उन्होंने कहा है कि कला प्रकृति का अनुकरण है। यह विचारणीय है कि इस अनुकरण में प्रकृति का बाह्य रूप (Natura naturata) तथा आन्तरिक प्राकृतिक क्रिया (Natura naturan) दोनों सम्मिलित हैं। इस क्रिया का अर्थ समझने के लिए यह स्मरण रखना चाहिये कि 'अरस्तू' के मतानुसार प्रत्येक वस्तु का वास्तविक तत्व उसी वस्तु में निहित है और समस्त प्रकृति उन्हीं आत्म-निहित तत्वों को साकार करने में सक्रिय है, जैसे रहस्यमय क्रियाओं तथा प्रक्रियाओं के फलस्वरूप विभिन्न धातुओं में निहित स्वर्णतत्व की सोने के रूप में अभिव्यक्ति होती है। कवि इसी विकासोन्मुख प्रकृति-क्रिया का अनुकरण करता है और अपनी प्रतिभा के बल से प्रकृति के चरमलक्ष्य अथवा आदर्शरूप को ग्रहण करके उसे एक व्यक्ति के अभिधान, परिधान से सुशोभित करता है—देखने में वे विशिष्ट व्यक्ति लगते हैं, परन्तु वास्तव में वे जातिबोधक होते है। इसीलिए 'अरस्तू' का कहना है कि काव्य इतिहास से अधिक गंभीर तथा दार्शनिक होता है; क्योंकि इतिहास किसी मनुष्य के किये हुए विभिन्न कार्यों का विवरण है, परन्तु काव्य का संबंध मनुष्य के सार्वभौमिक रूप से है। इतिहास घटित घटनाओं का एकीकरण है; परन्तु काव्य का संबंध संभावित घटनाओं से होता है। कवि को उन घटनाओं को प्राथमिकता प्रदान करनी चाहिए जो असंभव होते हुए भी मानव-स्वभाव तथा प्रकृति के अनुकूल हों, न कि उन कार्यों को जो संभव होते हुए भी अस्वाभाविक अथवा मानव-प्रकृति के प्रतिकूल जान पड़ते हैं।[२९] अरस्तू का

---

२८ Things as they are or were; as they are said or thought to be or as they ought to be.

२९ Poetry is more serious and philosophical than history, because history deals with particular actions but poetry with the universal. History describes what has happened and poetry what may happen. The poet should prefer probable impossibility to improbable possibility,

अनुकरण-सिद्धान्त विविध रूप में १८वीं शताब्दी के अन्त तक यूरोपीय समीक्षा-शास्त्र का आधार-स्तम्भ रहा जिसकी व्याख्या कभी यथार्थवाद और कभी आदर्श-अनुकरण के रूप में होती रही। परन्तु इसी काल में कभी-कभी 'निओ प्लैटानिक' (Neo-Platonic) सिद्धान्तों की प्रतिध्वनि भी सुनाई पड़ी, जिसके अनुसार कवि ब्रह्म की कारयित्री शक्ति से अनुप्राणित होते हुए स्वयं सृष्टिकर्त्ता होता है और उसकी सृष्टि अन्तर्दर्शन (inner vision) की ही अभिव्यक्ति होती है।

इस सिद्धान्त का विकसित रूप १९वीं शताब्दी के स्वच्छन्दतावादी युग में प्रकट हुआ और 'अभिव्यक्तिवाद' से संवल प्राप्त करता रहा। इस सिद्धान्त के अनुसार काव्य अनुकरण नहीं, अपितु कवि के भावों तथा सृष्टि-शक्तिरूपिणी कल्पना की अभिव्यञ्जना है। कवि का सम्बन्ध वस्तु के स्थूलरूप से नहीं है; क्योंकि वस्तु उसके भावों से रंजित तथा स्फूर्तिमय होकर ही काव्य में अवतरित होती है। जर्मन-विचारकों और अंग्रेजी कवि 'शेली' के मतानुसार कवि प्रकृति के गर्भ में निहित विशुद्ध सौन्दर्य (naked Beauty) का द्रष्टा होता है और उसीका साक्षात्कार अपने पाठकों को कराता है।

१९वीं सदी के तृतीय चरण में विज्ञान के प्रभाव से इस विचारधारा में परिवर्तन हुआ और ऐसा माना जाने लगा कि कवि को वैज्ञानिक के समान ही आत्मनिरपेक्ष होकर बाह्य वस्तुओं का निरीक्षण तथा चित्रण करना चाहिये। इस सिद्धान्त का पर्यवसान जोला (Zola) के प्रकृतिवाद (Naturalism) में हुआ जिसके अनुसार मनुष्य भी पशुओं के समान ही प्राकृतिक परिवेशों (environment) तथा संस्कारगत प्रवृत्तियों (heredity) के वशीभूत है और कवि अथवा लेखक का काम यही है कि वह बाह्य प्रभावों का सूक्ष्म अध्ययन करते हुए मनुष्यसमुदायों तथा कुटुम्बों के उत्कर्ष तथा अपकर्ष का धारावाहिक वर्णन प्रस्तुत करे।

परवर्ती मनोवैज्ञानिक विचारों से प्रभावित होकर लेखकों ने इस बात का घोर विरोध करते हुए यह तर्क उपस्थित किया कि मनुष्य का यथार्थ रूप उसकी अन्तर्चेतना में है जो कि एक प्रवाह के समान गतिशील है। इसी प्रवाह की अभिव्यक्ति के लिए 'चेतना-प्रवाह' (stream of consciousness) की नई शैली का जन्म हुआ। परन्तु इससे भी सन्तुष्ट न होकर कुछ कलाकार अवचेतन के गुह्यव्यापारों को परम यथार्थ मानते हुए एक नये वाद, 'सुर्रियलिज्म' (Surrealism) के प्रवर्तक हुए, जिसके अनुसार स्वप्निल अवस्था की मनःस्थिति पैदा करके लेखनी को अवचेतन की प्रेरणा पर छोड़ देने से जो चित्र शब्दों में उद्भासित होते हों वे ही अवचेतन की मूक वाणी का प्रस्फुटन और

उसका यथार्थ रूप हैं। इन नये वादों का खंडन मार्क्सवादी नेताओं तथा विचारकों ने किया जिसके फलस्वरूप 'सामाजिक यथार्थवाद' (Socialist Realism) का जन्म हुआ। इस वाद के अनुसार कवि एक सामाजिक व्यक्ति है और उसकी चेतना तथा भाषा समाज की देन हैं। उसका परम कर्तव्य है कि वह वैयक्तिक नहीं अपितु सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति करे। यह सामाजिक यथार्थ आर्थिक व्यवस्था पर निर्भर है जिसके मूल में शोषक वर्ग तथा शोषित वर्ग का निरन्तर संघर्ष चलता रहता है। इसी संघर्ष की अभिव्यक्ति करके पाठकों को इस तथ्य से अवगत कराना तथा उनको शोषित वर्ग के अधिकारों के प्रति जागरूक करके उस संघर्ष को सबल बनाना, जिसका अन्तिम लक्ष्य पूँजीवादी प्रथा तथा राज्य-व्यवस्था को समाप्त करके एक वर्गहीन और समत्वभाव से अभिप्रेरित समाज की स्थापना करना है; यही कवि तथा साहित्य-सेवियों का परम पुनीत कार्य होना चाहिये। इसलिये कविनिर्मित काव्य में अवतरित पात्र व्यक्ति-विशिष्टता से सम्पन्न होते हुए भी सामाजिक विचारधाराओं के प्रतीक होने चाहिये जिनके व्यवहारों द्वारा उस मूल-भूत संघर्ष का स्पष्टीकरण हो सके। इन सब नये वादों ने ऐतिहासिक परिस्थितियों से संबल तथा पोषण प्राप्त किया है और उनका साहित्य के शाश्वत सिद्धान्तों से विशेष संबंध नहीं है। पाश्चात्य समीक्षा तथा सौंदर्यशास्त्री आज भी भारतीय मूल-सिद्धान्तों के अनुरूप ही यह विश्वास करते हैं कि कलाकार एक प्रतिभासम्पन्न निर्माता है और उसका मुख्य कर्तव्य अपने आत्मनिहित आदर्श मूर्ति को कला के माध्यम से सहृदयों के आनन्दार्थ साकार करना है। कवि का विशेष संबंध वस्तु के बाह्य रूप से नहीं है, जो कि विज्ञान का क्षेत्र है, अपितु उसकी आत्मा से जिसको कवि 'हापकिन्स' (Hopkins) ने 'इन्सकेप' (inscape) का नाम दिया है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए इस सदी के प्रसिद्ध कवि स्पेन्डर (Spender) ने कहा है कि कवि का कार्य वस्तु के बाह्य रूप की अनुकृति प्रस्तुत करना नहीं, अपितु उसमें गुप्त तथा कारावास-ग्रस्त आत्मा को मुक्त करना है (to disimprison the soul of fact)। इसके आगे जाकर **'प्रकाशकार' ने कवि-प्रतिभा** को 'अनन्य परतन्त्राम्' कह दिया है जिसकी व्याख्या 'लोचन' के प्रथम श्लोक में उपस्थित है:—

> अपूर्वं यद् वस्तु प्रथयति विना कारणकलाम्
> जगद्ग्रावप्रख्यं निजरसभरात् सारयति च।
> क्रमात् प्रख्योपाख्या प्रसरसुभगं भासयति तत्
> सरस्वत्यास्तत्त्वं कवि सहृदयाख्यं विजयते॥

अध्याय २

काव्य में कवि

अब तक के विवेचन से यही निष्कर्ष निकलता है कि काव्य का निर्माता कवि है जिसकी प्रतिभा, कौशल, शिल्प-चातुर्य तथा वाग्विदग्धता ही काव्य के महत्व तथा सौंदर्य के मूल कारण हैं। इसलिए कवि को काव्य का प्रमुख केन्द्र-बिन्दु मानना तर्कसंगत है। अब प्रश्न यह उठता है कि कवि के व्यक्तित्व तथा उसकी कृति के संबंध का क्या स्वरूप है? इसका उत्तर भारतीय काव्य-शास्त्रियों ने एक स्वर से यही दिया है कि कवि को अपने भावों के **साधारणीकरण** द्वारा सहृदय पाठकों में रसास्वादन के लिए उपयुक्त मनःस्थिति उत्पन्न करने में योग प्रदान करना चाहिये। काव्य में अभिव्यक्त भाव कवि का व्यक्तिगत मनोविकार नहीं है। 'भावयति भावः' के अनुसार सहृदय का मनोरंजन करनेवाला भाव ही काव्य-भाव है। अभिनव गुप्त ने ठीक ही कहा है 'भावयन् = आस्वादयोग्यी कुर्वन्'। कवि का हृदय संवेदनशील होता है और उसमें लौकिक कारणों से सद्यः मनोविकारों का उद्रेक होता है। परन्तु उसका मुख्य कर्तव्य है कि वह अपने मनोविकारों को पाठकों के लिए ग्राह्य तथा आस्वाद्य बनावे। इसके लिए यह आवश्यक है कि वह अपने मनोविकारों को 'अहं' की सीमा तथा देश, काल आदि भेदों से विमुक्त करे जिससे वह समस्त मानव-हृदय का स्पर्श करने में समर्थ हो। अभिनव गुप्त ने इसी तथ्य की स्पष्ट व्याख्या की है—'कवेः वर्णनानिपुणस्य यः अन्तर्गतः अनादिप्राक्तनसंस्कारप्रतिभानमयः न तु लौकिकविषयजः—इसलिए 'देशकालादिभेदाभावात् साधारणीभावेन आस्वादयोग्यः तं भावयन् आस्वादयोग्यी कुर्वन्'।

इस कथन से यह सिद्ध होता है कि (१) कवि की काव्य-रचना केवल स्वान्तःसुखाय नहीं, अपितु सहृदय-सुखाय होती है। (२) इसके लिए काव्य भाव 'साधारण' अथवा व्यक्ति-काल-देशनिरपेक्ष होना चाहिये जिसको अंग्रेजी में 'यूनिवर्सल' कहते हैं। इसी गुण के कारण प्राचीन कवियों की वाणी, चाहे उन्होंने किसी भी भाषा को माध्यम मानकर काव्य-रचना की है—युग-युगान्तर तक देश-काल-समाज के दायरे से बाहर होकर समस्त मानव-जाति के लिए सजीव तथा आनन्ददायिनी बनी रहती है। (३) परन्तु कवि के भावों का आस्वादन करने के

लिए पाठक में भी उपयुक्त क्षमता तथा मनोदशा का होना आवश्यक है, नहीं तो कवि का गायन 'अरण्य-रोदन' के समान होगा। कवि जिन भावों की अभिव्यक्ति करता है उनका संस्काररूप में पाठक के हृदय में विद्यमान रहना अपेक्षित है जिससे भावास्वादन के लिये आवश्यक मनोदशा का उद्भव हो सके। (४) कवि भावों को मूर्तिमान नहीं करता; क्योंकि यह असंभव है। वह तो केवल विभाव आदि के माध्यम से उन भावों की व्यंजना करता है। इसी तथ्य को भरतमुनि ने अधोलिखित कारिकाओं के द्वारा प्रतिपादित किया है:—

विभावैराहृतो योऽर्थः ह्यनुभावैस्तु गम्यते।
वागंगसत्त्वाभिनयैः स भाव इति संज्ञितः॥
वागंगमुखरागेण सत्त्वेनाभिनयेन च।
कवेरन्तर्गतं भावं भावयन् भाव उच्यते॥

अर्थात् कवि का अन्तर्गत भाव अभिनय, विभाव तथा अनुभावों के द्वारा अभिव्यक्त होकर ही मनोरंजक होता है। नाटक के अतिरिक्त अन्य काव्यों में, जिन्हें श्रव्य की संज्ञा दी गई है, ये भाव उचित उपकरणों तथा शब्दों द्वारा ही अभिव्यक्त किये जाते हैं और इन्हीं के माध्यम से पाठकगण अभीष्ट अर्थ को ग्रहण करते हैं। उदाहरण के लिए वाल्मीकि मुनि का आदिश्लोक ले लीजिये:—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वती समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकं अवधीः काममोहितम्॥

इसमें कवि के शोक की अभिव्यंजना 'काममोहित क्रौंचमिथुन' के माध्यम से हुई है। इसका अर्थ वे ही लोग समझ सकते हैं जिनको कामासक्ति इत्यादि का अनुभव प्राप्त है। मुनि तो विरक्त होते हुए भी मानव-मन की सभी अवस्थाओं से परिचित थे, यही उनकी प्रतिभा थी। उपर्युक्त कथन की पुष्टि हमें पाश्चात्य विचारकों में भी मिलती है। हरोल्ड आसवार्न के विचार में कवि भावों का प्रेषण अथवा वर्णन नहीं करता; क्योंकि यह मनुष्य-शक्ति के बाहर है। वह तो केवल उस भाव के अनुकूल मनोदशा का उपयुक्त शब्दों में वर्णन करता है जिससे पाठक के संस्कारजन्य अनुभवों का स्मरण हो सके और उसकी मनोदशा भी कवि-मन से सामंजस्य स्थापित कर सके। इसके बिना काव्यास्वादन असंभव है।[३०]

[३०] What the poet can do is to evoke with great precision very finely discriminated states of mind towards presented situations or series of events...The poet can convey no new sensory or emotional experience. The most he can do is to

यूरोप का प्राचीन काव्य-शास्त्र भी पाठक या श्रोता सापेक्ष ही रहा; क्योंकि उस पर वाग्मिताशास्त्र अथवा 'रेटारिक' का गहरा प्रभाव पड़ा था। व्याख्यान में वक्ता की समस्त शक्ति श्रोताओं के मन में ऐसी प्रक्रियाओं का उद्भव कराने में केन्द्रित रहती है जिससे अपेक्षित भावों का उन पर समुचित प्रभाव पड़ सके। 'प्लेटो' की काव्य-जुगुप्सा इसी बात पर आश्रित है; उससे पाठकों तथा दर्शकों का नैतिक संतुलन बिगड़ता है; क्योंकि भावात्मक शक्ति विवेक पर हावी हो जाती है। इसके परोक्ष (Indirect) उत्तर में 'अरस्तू' ने अपने काव्य-शास्त्र में जो कुछ भी कहा है उसका निष्कर्ष यही है कि कविता तथा नाटक पाठकों और दर्शकों के मनोविकारों को उभाड़ते हुए उनका परिमार्जन करते हैं। 'कैथारसिस' (Catharsis) का अर्थ श्रोता की मनोदशा पर ही आश्रित है और यही कवि-कर्म का मुख्य उद्देश्य है। अरस्तू के परवर्ती समीक्षकों—जैसे रोमन काल के 'होरेस' तथा 'लांजिनस' ने भी इसी परम्परा का अनुमोदन, समर्थन तथा स्पष्टी-करण किया है। 'होरेस' के अनुसार काव्य का मुख्य उद्देश्य पाठकों को शिक्षा देना, मनोरंजन करना अथवा दोनों व्यापारों का संमिश्रण है। 'लांजिनस' ने तो साहित्य में औदात्य (Sublimity) की परिभाषा ही पाठकों या श्रोताओं को केन्द्र में रख कर की है। 'औदात्त्य' प्रबंध का वह गुण है जो पाठकों की आत्मा को परमानन्द (ecstasy) की अवस्था में उठाता है, (Elevates)—एक बार नहीं, अपितु निरन्तर, चाहे पाठक किसी वर्ग, जाति तथा लिंग (Sex) के क्यों न हों।

यूरोप के पुनर्जागरण काल से अठारहवीं शताब्दी के प्रायः अन्त तक कवि का कर्तव्य आत्माभिव्यक्ति नहीं, अपितु पाठकों का शिक्षण तथा मनोरंजन था।

---

induce us to recollect more vividly aspects of our own past experience......No one can give a blind man the experience of seeing or the colour-blind man the experience of colour discrimination. Nor can any man communicate to another types of emotional experience with which the latter is unfamiliar. A man who has never been in love may read all the love poetry in the world and still he will not know what it feels like to be in love. Or...a man who has never known mystical religious emotions may read the books of the mystics and the analytical descriptions of the phychologists...but it will all be 'meaningless' to him, empty words without concrete significance.

Harold Osborne. *Aesthetics and Criticism.* 186-187.

कवि का कार्य अपने निजी विचारों तथा इच्छाओं का प्रदर्शन नहीं, उसकी सफलता तो उन पात्रों की सृष्टि तथा उन भावों की अभिव्यक्ति पर आश्रित है जो मनुष्य मात्र के लिए रोचक तथा बोधगम्य हों। १८वीं शताब्दी के महान समालोचक 'डा० जान्सन' ने बार-बार इसी तथ्य का प्रतिपादन किया है और इसी कारण 'शेक्सपियर' की प्रतिभा की सराहना की है; क्योंकि उनके पात्र मानव-जाति के प्रतिनिधि हैं और मानवभावों तथा मनोविकारों को मानवोचित भाषा में प्रकट करते हैं। 'ग्रे' (Gray) की प्रसिद्ध शोक-गीति (Elegy) की प्रशंसा करते हुए उन्होंने स्पष्ट कहा है कि इसकी सर्वप्रियता इस बात पर निर्भर है कि इसके भाव तथा विचार सभी वर्ग के पाठकों के हृदय में प्रतिध्वनि पैदा करते हैं और इसके प्रकृति-वर्णन तथा बिंब (Images) ऐसे हैं जो सर्वसाधारण के लिए अनुभवसिद्ध हैं और उनके सुषुप्त स्मरण के उद्दीपक हैं। इन सब कथनों का सार उनके उपन्यास के अन्तर्गत उस प्रसिद्ध वाक्य में निहित है जिसमें उन्होंने कहा है कि कवि का कर्तव्य मानव-जाति की उन विशेषताओं का वर्णन करना है जो उसकी प्रकृति के मूल धर्म हैं, न कि उसके अपवाद। इसी तरह बाह्य-प्रकृति में भी साधारण तथा सर्वग्राह्य दृश्यों का ही काव्य में अवतरण होना चाहिये। कवि का काम पत्तों पर अंकित रेखाओं की गणना अथवा वन की हरीतिमा के सूक्ष्म अंशों का विश्लेषण करना कदापि नहीं माना जा सकता है।[३१]

परन्तु १९ वीं सदी के स्वच्छंदतावाद से इस परंपरा में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ और कवि का व्यक्तित्व परोक्ष से अग्रसर होकर प्रत्यक्ष में आया और काव्य के केन्द्र में प्रतिष्ठापित हुआ। इसके उग्र समर्थकों के अनुसार काव्य कवि-सापेक्ष हैं और कवि का स्वभाव ही अपने भावों के वशीभूत होकर कोकिल की तरह कूंजना है, चाहे उसका सुननेवाला कोई हो अथवा नहीं। 'शेली' ने कहा है कि कवि वह बुलबुल है जो निर्जन रात्रि के अंधकार में गाता है, अथवा उस उच्च-

---

[३१] The business of the poet is to examine, not the individual but the species; to remark general properties and large appearances; he does not number the streaks or describe the different shades in the verdure of the forest.

Rasselas.

The poet must divest himself of the prejudices of the age and country...must disregard present laws and opinions and rise to the general and transcendental truths which will always be the same'.

Rambler—36.

कुलीन रमणी के समान है जो अपने महल के एकान्त कोने में बैठकर अपने प्रेमाभिभूत हृदय का मनोरंजन प्रेम ही के समान मधुर प्रणय गीत के द्वारा करती है और उसकी स्वर-लहरी धीरे-धीरे प्रसारित होकर उसके चतुर्दिक् वातावरण को मुखरित करती है।[३२]

परन्तु इस काल में भी कुछ कवियों तथा समीक्षकों ने इस बात का आग्रह किया था कि काव्य व्यक्ति-निरपेक्ष (Impersonal) होना चाहिये और कवि की निजी रुचि, अरुचि तथा अहं का उसमें स्थान नहीं है। इसी तथ्य का 'जान कीट्स' ने अपने एक प्रसिद्ध कथन में प्रभावशाली तथा स्पष्ट भाषा में उल्लेख किया है। कवि के मूल गुण को उन्होंने 'निगेटिव कैपेबिलिटी' (Negative Capability) अथवा स्वसंस्पर्शविहीनता की शक्ति बतलाया है जो कवि को सन्देहों इत्यादि के बीच में भी संतुष्ट रखती है।

इसी तथ्य की व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा है कि कवि का अपना कोई विशिष्ट व्यक्तित्व नहीं रहता, वह सब कुछ है और कुछ भी नहीं है। 'इयागो' (Iago) ऐसे खल-पात्र का निर्माण करने में उसे उतना ही आनन्द प्राप्त होता है जितना 'इमोजन' (Imogen) ऐसी पवित्र नायिका की कल्पना में। जो वस्तु अहंकारी दार्शनिक को व्यग्र कर सकती है वही 'गिरगिट' सरीखे (क्योंकि गिरगिट का रंग बाह्यपरिवेश के अनुसार ही बदलता रहता है) कवि के लिए आनन्द-प्रद होती है। कवि तो नितान्त अकाव्यात्मक पात्र है; क्योंकि उसकी कोई अहमियत नहीं होती। वह तो सदैव किसी न किसी शरीर में प्रविष्ट होकर उसे अनुप्राणित करता रहता है।[३३]

कहने की आवश्यकता नहीं कि 'कीट्स' के लिए आदर्श कवि शेक्सपियर ही थे और उन्हीं को ध्यान में रखते हुए इस शक्ति की कल्पना की गयी थी। परन्तु

---

३२ The poet is a nightingale singing in darkness.
Like a highborn maiden.
In a palace tower,
Soothing her love-laden
Soul in secret hour.
With music sweet as love which overflows her bower.

३३ The capability of being in uncertainties, mystries doubts, without any irritable reaching after fact and reason. The poetical character has no self, it is everything and nothing. It has as much delight in conceiving an Iago as an Imogen.

कीट्स में स्वयं ऐसी शक्ति थी और अपने पत्रों में उन्होंने इसका प्रायः स्पष्ट उल्लेख भी किया है—जैसे, "जब कोई गौरैया (Sparrow) मेरी खिड़की पर आकर बैठती है तो मैं उसका रूप धारण करके कंकडों के बीच चञ्चु-प्रहार करता रहता हूँ" (Peck at the pebbles)।

इससे भिन्न शक्ति को उन्होंने 'इगोटिस्टिकल सबलाइम' (Egotistical sublime) अथवा 'अहं' का उदात्तीकरण कहा है जिसके अनुसार आत्म-केन्द्रित कवि समस्त विश्व में अपनी सत्ता देखता है अथवा बाह्यसंसार को अपने ही में समेट लेता है। इस शक्ति के प्रतिनिधि—कवि 'वड्‌सवर्थ' तथा 'मिल्टन' हैं और इसी मूलतत्व को ध्यान में रखते हुए 'कोलरिज' ने 'शेक्सपियर' तथा 'मिल्टन' का स्पष्ट भेद इसके पहले ही अपने एक भाषण में निश्चित कर दिया था—"यदि 'शेक्सपियर' अपने ही पात्र 'एरियल' (Ariel) के समान नानारूप धारण करने में कुशल हैं तो 'मिल्टन' सभी वस्तुओं को अपने 'अंहं' की व्यापक परिधि में समेटने की शक्ति रखते हैं।[३४]

यहाँ भी प्राथमिकता शेक्सपियर की आत्म-निरपेक्षता ही को है और इसी तत्त्व को जर्मनी के प्रसिद्ध दार्शनिक-कवि, गेटे (Goethe) ने अपने जोरदार शब्दों में प्रतिपादित किया है—'जो व्यक्ति अपने ही भावों का प्रकाशन अपनी कविता में करता है वह कवि-कोटि में आने के योग्य नहीं है।[३५]

---

३४ 'While the former darts himself forth, and passes into all the forms of human character and passion, the one Proteus of the fire and flood ; the other (Milton) attracts all forms and things to himself, into the unity of his own Ideal. All things and modes of actions shape themselves anew in the being of Milton, while Shakespeare becomes all things, yet for ever remaining himself.

३५ So long as the poet gives utterance merely to his subjective feelings, he has no right to the title. Does not all art come when a nature that never ceases to judge itself, exhausts personal emotion in action or desire so completely that something impersonal, something that has nothing to-do with action or desire, suddenly starts into its place, something which is as unforeseen, as compeletely organized, even as unique, as the images that pass before the mind between sleeping and waking.

ईट्स (W.B. Yeats) ने, जो कि इस शताब्दी के स्वच्छन्दतावादी परम्परा के स्तम्भ माने जाते हैं, अपनी आत्म-कथा में इसी तथ्य का विवेचन करते हुए कवि की अहं-निरपेक्षता का ही समर्थन किया है। उनका कहना है 'जब इस स्वभाव का व्यक्ति, जो कि आत्म-परीक्षण में सदैव जागरूक रहता है, अपने वैयक्तिक भावों को कार्य अथवा इच्छा में पूर्णतया समाप्त कर देता है तब इसके स्थान पर ऐसे भावों का उदय होता है जो कि स्वत्व से रहित होते हैं और कार्य तथा इच्छा से बिल्कुल अलग; वे एकदम अनपेक्षित होते हैं और उनका रूप सुगठित तथा अनुपम होता है और वे उन मूर्तिमान बिंबों के समान होते हैं जो हमारी अन्तर्दृष्टि के समक्ष अर्धनिद्रित अवस्था में प्रकट होते हैं। इन्हीं भावों को काव्य में साकार किया जाता है।

इस स्थान पर हमें उन अतिवादी कवियों कि धारणा का विश्लेषण कर लेना चाहिये जिनके लिए, कवि बायरन (Byron) के शब्दों में कविता ज्वालामुखी के मुँह से निकलते हुए 'लावा' के समान है जिसके विस्फोट से ही भू-कम्प का प्रलयंकारी आगमन रोका जा सकता है।[३६] अर्थ यह है कि कवि के हृदय में उठते हुए भावसंवेग इतने प्रबल तथा निरंकुश होते हैं कि कवि के मनरसंतुलन के लिए उनका उच्छलन अत्यन्त आवश्यक है। यदि ऐसा नहीं होता है तो कवि पागल हो सकता है। इस तरह से कवि अपने भावसंवेगों से अभिभूत होता है और उसकी काव्य-धारा पृथ्वी के गर्भ से प्रस्फुटित स्रोत के समान स्वयंभूत तथा उसके नियन्त्रण से मुक्त होती है। इस तरह का दावा प्रायः किया गया है और इसके समर्थन में वाल्मीकि कवि का आदिश्लोक प्रस्तुत किया जाता है; परन्तु यह विचारणीय है कि हमारे कवि ऋषि थे और उनमें लोकोत्तर प्रतिभा का प्रकाश था; दूसरे उनका उद्‌गार केवल एक ही श्लोक में समाप्त हो गया, परन्तु एक श्लोक को काव्य नहीं कहा जा सकता। इसलिए इस विचार के समर्थक कवि कहा करते हैं कि शुद्ध काव्य तो गीति-काव्य ही है, जिसका लघु रूप कवि के भावों के सहज उद्‌गारों का समुचित साँचा है, क्योंकि ऐसे भाव अग्निज्वाला के समान तीव्र किन्तु अस्थायी होते हैं।

आज के समीक्षकों ने इस दावे का खण्डन किया है और स्पष्ट रूप से घोषित किया है कि कवि का शोक उसी समय काव्यात्मक होता है जब कवि उसके ऊपर नियन्त्रण स्थापित करके उसकी शब्दों में सुचारु अभिव्यञ्जना करने के लिए अपने को संतुलित बनाता है।

---

३६ Poetry is the lava of passion whose eruption prevents an earthquake.

अपने तर्क-पूर्ण निबंध, 'द सेनिटी आव जीनियस' (The Sanity of Genius) में 'लैम्ब' (Lamb) ने ठीक ही कहा है कि कवि तथा पागल मनुष्य में मूलतः यही अन्तर होता है कि पागल अपने उन्माद का दास होता है, परन्तु कवि अपने उन्माद का स्वामी। कुमारी एलिजाबेथ ड्रू (Miss Elizabeth Drew) के कथनानुसार जो कवि अपने असंतुलित भावों को काव्य में उड़ेलने की कल्पना करता है वह कवि नहीं, अपितु एक निर्वल भावुक है। वह अपने भावों की अभिव्यक्ति तभी कर सकता है जब वह उनका तटस्थ रूप से साक्षात्कार करते हुए उसे समुचित रूप दे सके। जब कवि का अन्तर्भाव बाह्यरूप धारण कर लेता है तब वह कवि के प्रभुत्व से मुक्त होकर सर्व-साधारण के चिंतन तथा मनोरंजन का विषय हो जाता है। इसलिए कविता एक ऐसी अभिव्यक्ति है जिसमें भाषा के सभी उपलब्ध साधनों के प्रयोग से किसी सारगर्भित अनुभव को अखंड तथा संश्लिष्ट रूप प्रदान किया जाता है[३७]। इसीलिए 'डाइलान टामस' (Dylan Thomas) ने कहा है कि कवि की सर्जना तथा प्रेरणा केवल कवि के शिल्प-चातुर्य की सहायक विशिष्ट स्फूर्ति है[३८]। काव्य का उद्भव तभी होता है जब कवि की रहस्यमयी अन्तर्शक्ति उसके ऐच्छिक शिल्प-कौशल के अनुशासन में आती है, इस क्रिया में जीवन-तत्व तथा भाषा का सम्मिलन होता है और अर्थ तथा शैली परिणय-सूत्र में बँधकर अभिन्न हो जाते हैं, जिससे दिव्यानुभूति तथा संशोधन-क्रिया दोनों अपना स्वतंत्र व्यापार करने के लिए सक्षम तथा उन्मुक्त रहते हैं[३९]। हॉपकिन्स (Hopkins) के शब्दों में कवि के अलौकिक आनन्द तथा बौद्धिक शक्ति के समन्वय का नाम ही काव्य है[४०]।

---

३७ A poem is a form of expression in which an unusual number of resurces of language are concentrated into a patterned organic unit of significant experience.

३८ To me the poetical impulse and inspiration is only the sudden, generally physical coming of energy to the constructional, craftsman's ability.

३९ Poetry comes from a twofold source, a mysterious inner compulsion and a fully conscious technical discipline : it is a process in which both living and language meet, in which both meaning and method marry, and both vision and revision play their parts.

४० Union of rapture and mind by which poetry is conceived :

कवि अपने को खोकर ही स्वत्व की प्राप्ति कर सकता है। वह अपने निजी मनोविकारों को खोता है और उनके स्थान पर एक विशुद्ध मूर्तिमान कला-कृति की उपलब्धि करता है, जिसमें उसके आभ्यंतरिक भावसंवेग एक ऐसा रूप धारण करके उसके समक्ष प्रकट होते हैं कि अन्य भावकों के साथ वह स्वयं उनका आस्वादन कर सकता है।

विक्टोरिया युग के प्रसिद्ध समीक्षक, 'मैथ्यू आर्नाल्ड' ने अपने पूर्ववर्ती स्वच्छंदतावादी कवियों की निन्दा करते हुए उनकी कविता को कवि के मस्तिष्क का प्रतीक (The allegory of the poet's mind) घोषित किया, यद्यपि अपनी मुक्तक कविताओं में वे अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियों तथा संघर्षों का 'साधारणीकरण' करने में असमर्थ सिद्ध हुए। परन्तु उसी युग के प्रसिद्ध कवि, 'राबर्ट ब्राउनिंग' ने एक ऐसी काव्य-विधि (Mode) का व्यापक प्रयोग किया जो व्यक्तिनिष्ठ कविताओं को भी कवि-निरपेक्ष बनाने में सफल हुई। इसको 'ड्रामेटिक लिरिक' अथवा 'ड्रामेटिक मानोलोग' कहते हैं और इसका 'मैं' (I) कवि न होकर कोई पात्र होता है जो अपने जीवन के किसी विशेष क्षण में एक आत्मनिवेदन करता है जिसमें उसके समस्त जीवन तथा व्यक्तित्व की एक झांकी मिल जाती है। इसी पात्र के माध्यम से कवि कभी-कभी अपने व्यक्तिगत भावों तथा विचारों का भी प्रेषण करता है, परन्तु बहुत ही सतर्कता और संयम के साथ। इसी पद्धति को बीसवीं शताब्दी के महारथियों, डब्ल्यू. बी. ईट्स एजरा पाउण्ड (Ezra Pound), टी० एस० इलियट (T. S. Eliot) ने अपनाया, परन्तु नये मनोविज्ञान की मान्यताओं द्वारा परिवर्तित तथा संशोधित करके। इनकी कविताओं का पात्र अपने अवचेतन से प्रभावित होकर आत्म-विश्लेषण अथवा आत्माभिव्यक्ति करता है। उसको कोई श्रोता अपेक्षित नहीं है और न तो उसके उद्‌गार चेतन मन से नियंत्रित होते हैं। उसका मन-मंथन तो आन्तरिक (Interior monologue) है, वह आत्म-निवेदन नहीं, अपितु अत्यन्त गुप्त प्रवृत्तियों तथा कुण्ठित मनोविकारों की अभिव्यक्ति करता है।

इस तरह आज के पाश्चात्य समीक्षक तथा विचारक प्रायः इस बात से सहमत हैं कि काव्य व्यक्तिनिरपेक्ष होना चाहिये और कवि को अपने 'अहं' का शमन

The fine delight that fathers thought,
The strong spur, live and lancing like the blowpipe flame
Breathes once and, quenched faster than it came,
Leaves yet mind a mother of immortal song.

Cf. *Poetry* : Elizabeth Drew.

करना चाहिये। डब्ल्यू. बी. ईट्स ने तो यहाँ तक कह दिया कि 'मेरा चरित्र तो मेरे स्वत्व का एक ऐसा तुच्छ अंग है कि समस्त जीवन में यह मुझे मार्ग-अवरोधक ही सिद्ध हुआ है। इससे मेरी कविताओं पर तथा मेरे ऊपर उतना ही नगण्य प्रभाव पड़ा है जितना कि नर्तक के चरित्र का उसके नृत्य पर पड़ता है[४१]।'

'युंग' (Jung) ने इसी तथ्य का मनोवैज्ञानिक निरूपण किया है। उनके मतानुसार प्रत्येक व्यक्ति में चेतन तथा अचेतन का संमिश्रण होता है। अचेतन मनुष्य मन का प्राचीनतम भाग है जिसके दो भिन्न क्षेत्र हैं; एक उसके व्यक्तिगत संस्कारों का आगार (Personal unconscious) है और दूसरा उसके जातीय संस्कारों का निकेतन (Collective unconscious)। प्रत्येक क्रियात्मक व्यक्ति इन्हीं दो विरोधी तत्त्वों का समन्वय होता है। कला एक स्वभाव-जन्य सहज आवेग है जो कलाकार को अपना माध्यम बनाती है। इसलिए कलाकार की हैसियत से व्यक्ति समष्टि का अंग होता है और उसमें संघर्ष की प्रबलता अवश्यम्भावी है। जब एक प्रबल शक्ति मनुष्य पर हावी हो जाती है तो उसकी क्रियात्मक स्फूर्ति कला में ही अपनी शक्ति का अधिकांश भाग व्यय कर देती है और जीवन के अन्य व्यापारों के लिए बहुत कम अवशेष रह जाती है। इस तरह कला एक तरह से व्यक्ति का मानव-संस्कारों से रहस्यमय सम्मिलन अथवा अनुभव के ऐसे स्तर पर अवतरण है जहाँ मानव ही जागृत रहता है न कि व्यक्ति।[४२] कवि या कलाकार लौकिक जीवन में एक साधारण, निर्बल एवं कुत्सित व्यक्ति हो सकता है, क्योंकि उसके सभी महान तत्व उसकी कृति में प्रविष्ट रहते हैं। कवि का लौकिक चरित्र उसके काव्य से नितान्त भिन्न वस्तु है।

---

[४१] 'My character is so little myself that all my life it has thwarted me. It has affected my poems, myself, no more than the character of a dancer affects the movement of the dance.'

[४२] Every creative person is a duality or a synthesis of contradictory aptitudes, a human being and an impersonal creative process. As an artist he is a collective man. His life cannot be otherwise than full of conflicts. The strongest force seizes and monopolizes the creative energy and little is left for other things. Creation is a return to the state of *participation mystique* to that level of experience at which it is 'man' who lives and not the individual.

परन्तु 'फ्रायड' के सिद्धान्तों ने कलाकार के व्यक्तिगत जीवन को ही केन्द्र में प्रतिष्ठापित किया है। अतएव इस विरोधी विचारधारा का भी एक सिंहावलोकन आवश्यक है। 'फ्रायड' ने मनुष्य को पशुकोटि में रखकर ही उसके रूप का विश्लेषण किया है—'आहारनिद्राभयमैथुनं च सामान्यमेतत् पशुभिः नराणाम्'। इसमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व 'मैथुन' अथवा काम-वासना है जो मनुष्य-जीवन में बाल्य-काल में ही उदित होती है। इस तरह से परोक्षरूप में बालक माँ के प्रेम के लिए अपने पिता का प्रतिद्वन्द्वी होता है, कन्या अपनी माता के प्रति उसी प्रवृत्ति से अभिप्रेरित होती है और भाई-बहनों में भी एक दूसरे के लिए कामासक्ति गुप्तरूपेण विद्यमान रहती है। परन्तु सामाजिक तथा नैतिक नियम, जिनका प्रतिनिधि चेतनमन की निरोधक शक्ति है, इन प्रवृत्तियों का दमन करके इन्हें अचेतन (Id) के गर्त में ढकेल देते हैं, जहाँ से वे स्वप्न में तथा मनुष्य की विक्षिप्त अवस्था में प्रायः छद्मवेष धारण करके प्रकट होती रहती हैं। कलाकार भी समाज का एक असंतुलित तथा कुण्ठित प्राणी है। उसकी वासनाएँ, आकांक्षाएँ तथा इच्छाएँ वास्तविक जीवन में अतृप्त ही रहती हैं। ऐसी दशा में व्यक्ति की यह साधारण प्रवृत्ति होती है कि वह अपने दिवास्वप्न (Day dream) के द्वारा अपने संतोष के लिए क्षति-पूर्ति का साधन एकत्र करे। इसीलिए भिखारी महल का स्वप्न देखता है और कुरूप कन्या परियों की किंवदन्तियों से संतोष प्राप्त करती है। कवि अपनी सृजन-शक्ति से क्षति-पूर्ति करने का प्रयास करता है और काव्य-व्यापार उसका दिवास्वप्न है जो उसके अहंभाव को तृप्त करता है और समाज के अन्य कुण्ठित प्राणियों के लिए भी आत्म-परितुष्टि का साधन प्रस्तुत करता है। इस तरह कवि स्वयं रोगग्रस्त होने पर भी सामाजिकों के मनोविकारों की चिकित्सा करता है। 'फ्रायड' की इस धारणा के अनुसार व्यक्ति के स्वप्न उसकी आन्तरिक कुण्ठा तथा विकारों के अस्वच्छ दर्पण हैं, जिनका अध्ययन और विश्लेषण अत्यन्त उपयोगी है। काव्य भी कवि का मूर्तिमान् स्वप्न है और उसमें भी उसके योनि-संबन्धी जीवन की पूर्ण अभिव्यक्ति होती है, यद्यपि उसकी अनैतिक तथा असामाजिक प्रवृत्तियाँ उसके प्रतीकों तथा बिम्बों में (Imagery) छिपी रहती हैं।

'फ्रायड' के विचारों का यूरोपीय समीक्षा-साहित्य पर प्रबल प्रभाव पड़ा और इससे प्रभावित आलोचकों का समस्त प्रयत्न लेखक के योनि-संबंधी जीवन पर केन्द्रित हुआ। यदि शेक्सपियर की जीवन-कथा उपलब्ध नहीं है तो उसके Sonnets तो हैं, उनमें एक सुन्दर मित्र है और एक काली, आकर्षक तथा चतुर प्रेमिका। इसलिए महाकवि का मित्र के साथ अप्राकृतिक संबंध रहा होगा

और स्त्री के साथ अनैतिक। डा० जोन्स ने हैमलेट की समस्या का विवेचन करते हुए कुछ अनोखे तथ्यों का आविष्कार किया है—जैसे हैमलेट (Hamlet) परोक्ष रूप से अपनी माता पर आसक्त था और पिता को अन्तर्मन में अपना शत्रु समझता था, उसकी हत्या करनेवाला व्यक्ति, 'क्लाडियस' (Claudius) प्रत्यक्ष रूप से हैमलेट का घातक शत्रु है, परन्तु परोक्षरूप से उसका स्नेहपात्र। इसी संघर्ष के फलस्वरूप हैमलेट की कार्य-शक्ति निश्चेष्ट हो जाती है।

गोस्वामी जी ने ब्रह्माण्ड के भीतर कामकृत-कौतुक का वर्णन करते हुए लिखा है—'अवला बिलोकहिं पुरुषमय जग पुरुष सब अवलामयं', परन्तु कामदेव का कौतुक तो केवल दो दंड तक रहा; फ्रायडवादियों का चमत्कार तो उत्तरोत्तर प्रगति पर है। परिणाम यह हुआ है कि कभी-कभी तो अत्यन्त सुन्दर कविताओं का विश्लेषण भी सफाई-इन्स्पेक्टर की रिपोर्ट से भी कहीं अधिक घृणोत्पादक सिद्ध हुआ है। एक विद्वान समालोचक ने कोलरिज की प्रसिद्ध कविता 'कुबलाखान' (Kubla khan) की सुन्दरतम पक्तियों की व्याख्या करके इसमें योनि संबंधी प्रतीकों का ही अनुसन्धान किया है और Cedarn cover को 'Pubic-hair' सिद्ध करके हमें काव्य-सौंदर्य-परख का सुन्दर नमूना भेंट किया है।

But o that deep romantic Chasm,
That slanted athwart the cedarn cover.
A place as holy and enchanted,
As ever beneath the waning moon was haunted
By woman wailing for her demon lover.

इन्हीं परिस्थितियों के प्रतिक्रियास्वरूप टी० एस० ईलियट के निर्वैयक्तिकवाद (Depersonalisation) का उद्भव हुआ ; जो अतिवाद होते हुए भी उपयोगी है और उसकी अवहेलना किसी भी अर्थ में मान्य नहीं हो सकती। 'ईलियट' के मुख्य कथन उनके लेखों से उद्धृत किये गये हैं, परन्तु उनका सटीक अनुवाद प्रस्तुत करने के लिये हमने डा० नगेन्द्र की सबल लेखनी का आश्रय लिया है,[४३] यद्यपि उन्होंने सभी कथनों का उल्लेख नहीं किया है। इसलिए अन्ततोगत्वा उनका तथा अपना अनुवाद मिश्रित करके हमने प्रसिद्ध समालोचक की धारणा के सार मात्र ही से काम चलाया है :—

काव्य भावों का उच्छलन नहीं, अपितु भावों से पलायन है; 'आत्मा की अभिव्यक्ति नहीं, वरन् आत्म से पलायन है।' काव्य में भावाभिव्यक्ति का मुख्य उपाय

[४३] देखिये 'विचार और विवेचन' पृष्ठ ६२.

है इसके लिए उपयुक्त वस्तु-प्रतीक प्रस्तुत करना (Objective correlative) अर्थात् ऐसे पदार्थों का समुच्चय या प्रसंग अथवा कथानक प्रस्तुत करना जिनके माध्यम से भावों की अभिव्यक्ति स्वयं हो सकती है[४४]। कलाकार की प्रगति का अर्थ है उसका सतत आत्मोसर्ग अथवा आत्म-निर्मूलन। इसी निर्वैयक्तीकरण से ही कला विज्ञान से साम्य स्थापित करने की अवस्था में पहुँचती है। कलाकार जितना ही अधिक पूर्ण होगा उतने ही अंश में उसके काव्य में संवेदनशील व्यक्ति तथा सृजनात्मक मस्तिष्क का बिलगाव होगा। इस बिलगाव के कारण ही वह मस्तिष्क अपने भाव-संवेगों को, जो कि इसके उपकरण मात्र हैं, पका-पचाकर रूपान्तरित करने में सफल होगा।[४५] कवि के मस्तिष्क में विविध विरोधी भावों, विचारों तथा संस्कारों का संश्लेषण अवश्य होता है, परन्तु समन्वय की 'इस समस्त प्रक्रिया में उसका व्यक्तित्व सर्वथा पृथक् एवं निर्विकार रहता है। उदाहरण के लिए आक्सी-जन और सल्फर-डायोक्साइड से भरे किसी कमरे में आप प्लेटिनम का एक तन्तु डाल दें तो वे दोनों तो सल्फर ऐसिड में परिवर्तित हो जायँगे—परन्तु प्लेटिनम के तन्तु में किसी प्रकार का विकार नहीं आवेगा। कवि का मन इसी प्लेटिनम तन्तु के समान है जो उसकी अनुभूतियों को प्रभावित करता हुआ भी स्वयं निर्विकार रहता है।[४६]

---

४४ Poetry is not a letting loose of emotion but an escape from emotion; it is not an expression of personality but an escape from personality. The only way of expressing emotion in the form of art is by finding an 'objective correlative'; in other words, a set of objects, a situation, a chain of events which shall be the formula of that particular emotion; such that when the external facts are given, the emotion is immediately evoked.

४५ The progress of an artist is a continual self-sacrifice, a continual extinction of personality. It is in this depersonalization that art may be said to approach the condition of science. The more perfect the artist, the more completely separate in him will be the man who suffers and the mind which creates, the more perfectly will the mind digest and transmute the passions which are its material.

४६ I shall, therefore, invite you to consider, as a suggestive analogy, the action which takes place when a bit of

ईलियट के उपर्युक्त कथनों की व्याख्या करने के पहिले दो-तीन बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है :—

(१) ईलियट का सिद्धान्त एक अतिवाद है जो स्वच्छंदतावादी कवियों के अहं—अतिरेक के विरुद्ध प्रतिक्रिया का परिणाम है ।

(२) इन्होंने बाद में इस सिद्धान्त का बिल्कुल खण्डन तो नहीं, परन्तु संशोधन तथा परिमार्जन स्वयं किया है ।

(३) उनकी अपनी प्रगति व्यक्ति-निरपेक्षता से आरंभ होकर व्यक्ति-सापेक्षता की ओर उन्मुख होते हुए उनके अतिवाद का खंडन करती है ।

ईलियट के 'व्यक्तित्व' तथा 'व्यक्तिगत' भावों से पलायन का ठीक अर्थ यही हो सकता है कि जब तक कवि के भाव उसके अन्दर रहते हैं तब तक वे उसके उद्वेग तथा मानसिक उलझनों के कारण होते हैं, परन्तु उनका शब्दों द्वारा तथा शिल्प-चातुर्य के माध्यम से सुगठित बाह्य रूप निर्माण करने से कवि उन पर विजय पा सकता है और उनको तटस्थ भाव से देखते हुए आनन्द भी प्राप्त कर सकता है । इस तरह अहं तथा व्यक्तिगत भावसंवेगों से मुक्ति होते ही उसे ऐसा मालूम होता है कि वह 'स्व' के संकुचित दायरे से बाहर हो गया है । परन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं हो सकता कि काव्य में कवि के व्यक्तित्व की कोई गंध तक नहीं रहती । 'ईलियट' ने जो उदाहरण दिया है वह नितान्त भ्रामक है । मनुष्य के मस्तिष्क तथा प्लेटिनम की कोई तुलना नहीं है; क्योंकि एक निर्जीव पदार्थ है और दूसरा जीवन-तत्व तथा स्फूर्ति और संवेदना से परिपूर्ण है । उसमें यह शक्ति है कि वह अपने विभिन्न संस्कारों का समन्वय कर सके । समन्वय की प्रक्रिया रहस्यमय हो सकती है और अनैच्छिक भी, परन्तु इसका आशय यह कदापि नहीं है कि वह उसके स्पर्श से एकदम रहित है अथवा उसके उपकरण अपने आप पैदा हो गये हैं । ये उपकरण बाहर से लिये गये हैं अवश्य, परन्तु उनको ग्रहण करने की शक्ति तो उसी मन की है और वे उस मन की व्यापकता तथा परिपक्वता के द्योतक हैं । वही उपकरण कवि के अनुभव तथा निरीक्षण शक्ति के मापदण्ड हैं और उन्हीं से इस बात का परिचय मिलता है कि कवि का क्षेत्र कैसा और कितना

---

finely filiated platinum is introduced into a chamber containing Oxygen and Sulphur-dioxide......in the presence of a filament of platinum, they form sulphurous acid......but it contains no trace of platinum, and the platinum itself is apparently unaffected; has remained inert, neutral, and unchanged.

है; उसका साहित्य-अनुभव तथा जीवन-परिचय कितना व्यापक अथवा प्रगाढ़ है; उसने मानव-जीवन की समस्याओं पर कितना मनन-चिन्तन किया है और उसके फल-स्वरूप किस तरह का दृष्टिकोण प्राप्त किया है; उसकी भाषा का क्षेत्र कैसा है और शब्द-चयन तथा शिल्प-कला में उसने कितना कौशल प्राप्त किया है।

'इलियट' का सिद्धान्त कीट्स के 'निगेटिव कैपेबिलिटी' से बहुत साम्य रखता है और दोनों विचारकों ने 'शेक्सपियर' को ध्यान में रखते हुए इस सिद्धान्त का निरूपण किया है, परन्तु 'कीट्स' ने स्पष्ट शब्दों में इस बात को स्वीकार किया है कि शेक्सपियर के नाटक उसके आध्यात्मिक जीवन की टीका के रूप में हैं और यह सिद्ध करते हैं कि उसका जीवन द्विविध था, एक का संव्वंध लौकिक कार्यों से था और दूसरे का काव्यकृतियों से। इस तरह शेक्सपियर अपनी कृतियों में उसी तरह से विद्यमान है जैसे ईश्वर अपनी सृष्टि में। समस्त सृष्टि ईश्वरमय है, परन्तु उसको कोई देख नहीं सकता और न यह बतला सकता है कि वह सृष्टि के किस अंग अथवा भाग में स्पष्ट रूप से विराजमान है।[४७]

इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए 'मिल्टन' ने कहा है कि महान् कृति किसी महान् आत्मा का विशिष्ट जीवन-स्पन्दन है जो भविष्य में आनेवाली पीढ़ियों के लाभार्थ सुरक्षित किया गया है। यह सर्वमान्य सत्य है कि हम 'शेक्सपियर' के वास्तविक जीवन तथा व्यक्तिगत सुख-दुःख, अनुभव तथा व्यवहारों के बारे में बहुत कम जानते हैं, तथापि उनके व्यक्तित्व की गरिमा तथा शब्दों का जादू तो उनके प्रत्येक पृष्ठ पर अंकित है, और उनके समस्त ग्रंथों का अध्ययन करके हम भली-भाँति जान सकते हैं कि मनुष्य मात्र के लिए उनके हृदय में प्रेम तथा सहिष्णुता का उदार भाव था और यद्यपि मानव-अवगुणों तथा उन्मादों का निरीक्षण करने में उसकी दृष्टि अत्यन्त पैनी एवं निर्दय थी, तथापि मनुष्य की सहज शक्ति तथा प्राकृतिक उदारता में उसकी पूर्ण आस्था थी। मनुष्य का हृदय विकृत हो सकता है और भाग्य तथा परिस्थिति के चक्कर में वह विक्षिप्त होकर पथभ्रष्ट भी हो सकता है परन्तु वह गिरकर भी उठने की शक्ति रखता है और भाग्य की ठोकर खाते हुए भी जीवन-संग्राम में एक वीर की तरह जूझता है। जिसे हम उसका दुर्भाग्य तथा मृत्यु समझते हैं, वही उसकी वास्तविक सत्ता तथा अजेय शक्ति का प्रबल परिचायक है। इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखते हुए हम उन्हें संसार के प्रतिभाशाली लेखकों में उच्च स्थान देते हैं और यह एक स्वर से स्वीकार करते हैं कि उनकी प्रसिद्ध नायिका (Cleopatra) के समान ही कालचक्र उन्हें शुष्क

४७. Like God present everywhere but seen no where.

नहीं कर सकता और परिचय की पुनरावृत्ति उनके सीमातीत रूप-वैविध्य को अनाकर्षक नहीं बना सकती है।[४८] यही नहीं, उनकी कृतियाँ मोतियों के समान एक सूत्र में पिरोई गई हैं और यह सूत्र उनका आत्म-तत्व ही है, क्योंकि अपने 'कमेडी', 'हिस्ट्री', 'ट्रैजेडी' तथा 'रोमान्सेज' में उन्होंने मानव-जीवन के विभिन्न पहलुओं का विश्लेपण ही नहीं किया है, अपितु अपने आत्मिक-विकास के मुख्य स्तरों की स्पष्ट झलक भी दर्शायी है।

सारांश यह है कि कवि का आन्तरिक रूप तथा आत्मा उसकी कृतियों में विराजमान रहती है और काव्यानुशीलन का वास्तविक अर्थ है दो आत्माओं का सम्मिलन। जब तक पाठक काव्यात्मा से तादात्म्य नहीं स्थापित कर पाता तब तक शुद्ध आनन्द से वह वंचित रहता है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए कवि कीट्स ने कहा है कि कविता तो पाठक के निजी भावों की अभिव्यक्ति के समान होनी चाहिये, उसे ऐसा आभास होना चाहिये कि शायद स्वप्न में उसने स्वयं उसकी रचना की है। इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि कवि अपने को पाठक के स्तर ही पर रखने का प्रयास करे; उसे तो अपनी प्रतिभा का चरमोत्कर्ष ही अभीष्ट होना चाहिये और यह पाठक का कर्तव्य है कि वह अपने को उसकी ऊँचाई तथा गहराई तक पहुँचाने का सतत प्रयत्न करे। काव्यानन्द मेघजल के समान पाठक के मुँह में अनायास ही प्रवेश नहीं कर सकता—'न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः।' उसके लिए तो पाठक को सतत जागरूक तथा प्रयत्नशील रहना अपेक्षित है। 'वर्ड्सवर्थ' ने ठीक ही कहा है कि पाठक भारतीय राजा के समान पालकी में लेटे हुए अपने सेवकों के कन्धे पर कवि की ऊँचाई तक नहीं पहुँच सकता। वह तो कवि द्वारा अभिप्रेरित तथा प्रोत्साहित होते हुए अपने ऊर्ध्वगामी पथ पर अग्रसर होकर ही अपने पाठकत्व का वास्तविक अर्थ सिद्ध कर सकता है, दूसरे का भार बनकर इस क्षेत्र में प्रगति असंभव है। इसी प्रसंग में श्री जे० एच० कजिन्स का एक सुन्दर कथन उल्लेखनीय है। उन्होंने कहा है कि 'काव्य प्रस्तर-मूर्ति के समान निश्चल ही रहेगा और अपने रहस्य का उद्घाटन कदापि न करेगा जब तक कि काव्य-प्रेमी की आँखें पृष्ठ के ऊपर एक यात्री के समान यात्रा करते हुए उसकी अन्तर्दृष्टि के सहयोग से कल्पना-शक्ति को अपना चमत्कार दिखलाने के लिए तत्पर नहीं करती है। यह चमत्कार है भाव के अदृश्य स्तर से उत्तरोत्तर ऊपर उठना, विचारों की एक चोटी से दूसरी चोटी की ओर

४८. Age cannot wither her not custom stale.
Her infinite variety.

अग्रसर होते हुए अपनी सूक्ष्म मानसिक क्रिया के विभिन्न अंगों को पूर्ण रूपेण सम्पन्न करना।[४९]

कठिनाई उस समय होती है जब कवि किसी ऐसे विषय पर कविता लिखने के लिए विवश होता है जिसका कि विशिष्ट संबंध उसके निजी जीवन से होता है और संसार के अन्य प्राणी उसको समुचित महत्व प्रदान करने के लिए उत्सुक नहीं होते। यही समस्या Elegy अथवा शोकगीति की रचना में उपस्थित होती है जब कि उसका विषय कवि के किसी व्यक्तिगत मित्र अथवा प्रियपात्र की दुःखद मृत्यु होती है। ऐसी बहुत-सी कविताएँ उपलब्ध हैं और उनके उत्तम नमूनों में इस समस्या का उत्तम समाधान भी विद्यमान है। उदाहरण के लिए 'टेनिसन' के 'इन मेमोरियम' (In Memoriam) को ले लीजिये। यह कवि के अभिन्न मित्र के आकस्मिक मृत्यु-जनित शोक की अभिव्यक्ति है; परन्तु कवि का ध्यान मित्र की मृत्यु से धीरे-धीरे ऊपर उठकर मानव-जाति के अभिशापरूप में उपस्थित 'मृत्यु' के रहस्यमय रूप पर केन्द्रित हो जाता है और उसके साथ ही वह आत्मा, अमरत्व, मृत्यूपरान्त आत्मा की स्थिति इत्यादि सार्वभौमिक समस्याओं का निरूपण करने लगता है। इस विवेचन की गरिमा तत्कालीन वैज्ञानिक धारणाओं तथा परम्परागत धार्मिक विचारों के संघर्ष से अत्यधिक महत्व प्राप्त करती है, और कवि की वेदना, अन्तर्द्वन्द्व तथा निराशा के गर्भ से आशा का उद्भव इत्यादि व्यक्ति के संकुचित दायरे से उठकर समस्त समाज की आशा-निराशा का व्यापक रूप धारण कर लेते हैं। इसलिए कविता अत्यन्त व्यक्ति-सापेक्ष होते हुए भी समस्त समाज के लिए ग्राह्य तथा उपयोगी सिद्ध हुई है। यह कठिनाई वास्तव में गंभीर नहीं हैं; क्योंकि मृत्यु-शोक का अनुभव तो प्रत्येक मर्त्य को होता है और एक की मृत्यु दूसरे व्यक्ति के निधन की सहज ही प्रतीक हो सकती है।

इससे गुरुतर कठिनाई उस समय आती है जब कवि ऐसे विश्वासों तथा

---

४९ Poetry, resting in a book, immobile as a statue, declines to disclose itself unless the eye sets out on a journey along an external flat surface, and in collaboration with the inner eye causes the imagination to perform the subjective miracle of rising from unseen level to level of ieelng, from height to height of impalpable thought, through mounting phase after phase of bodiless activity. J. H. Cousins : *The Aesthetical Necessity in Life*. p. 86

अनुभूतियों को अपने काव्य का आधार बनाता है जो पाठक के अनुभव के बिलकुल बाहर अथवा विपरीत होते हैं। जैसे वर्ड्सवर्थ का यह विश्वास था कि—

Sweet is the lore that nature brings
Our meddling intellect,
Misshapes the beauteous forms of things
We murder to dissect
....
One impulse from the vernal wood
May teach you more of man
Of moral evil and of good
Than all the sages can.

हमारे विज्ञान-युग के समालोचकों ने इस विश्वास को निराधार बतलाकर यह निष्कर्ष निकाला है कि (आरनल्ड के शब्दों में) कवि का विश्वास तो एक कोरा भ्रम है और इससे उसकी कविता का पूर्ण आस्वाद नहीं हो सकता है। शायद इसी आक्षेप को ध्यान में रखते हुए कवि ने स्वयं कह दिया था कि प्रत्येक मौलिक लेखक को पाठकों में वह अभिरुचि पैदा करनी होती है जिससे उसके काव्यमर्म तथा महत्व का मूल्यांकन संभव है। अर्थ यह है कि ऐसी हालत में पाठकों को आत्मपरीक्षण करना चाहिये और अनुभव का क्षेत्र बढ़ाना चाहिये और बहुत सोच-विचार के बाद ही कवि के अनूठे विश्वासों पर अनास्था प्रकट करनी चाहिये। 'वर्ड्सवर्थ' के विश्वासों का समर्थन मिल (Mill) इत्यादि बुद्धिवादी मनीषियों ने किया है; क्योंकि मानसिक जीवन के अत्यन्त संकटकाल में 'वर्ड्सवर्थ' के प्रकृति-प्रेम तथा पूजन ने उनके लिए सूखे खेत में वर्षा का काम किया और नये जीवन तथा स्फूर्ति का बीजारोपण किया।

इससे गंभीरतर समस्या दान्ते (Dante) की 'डिवाइना कमेडिया' (Divina Commedia) उपस्थित करती है क्योंकि उत्कृष्ट काव्य-कला के साथ ही इसमें धार्मिक तथा राजनीतिक हठवादिता (Dogmatism) समन्वित है और उदार पाठक भी महाकवि की इस उग्रता पर क्षोभ प्रकट करते हैं कि उसने 'प्लेटो' आदि सभी दार्शनिकों को अपने नरक में स्थान दिया है; क्योंकि वे मसीह (Christ) के पहले पैदा होने और मरने के कारण मानव-जाति के आदि अभिशाप से मुक्त नहीं हो पाये। प्रश्न उठता है कि इस तरह का दृष्टिकोण काव्यानन्द में कहाँ तक बाधक अथवा घातक है। 'टी० एस० इलियट' तथा 'आई० ए० रिचर्ड्स' जैसे मनीषियों ने इस प्रश्न पर गंभीरतापूर्वक विचार किया है और वे इसी निष्कर्ष

पर पहुँचे हैं कि ऐसे काव्यों का पूर्ण आनन्द तभी प्राप्त हो सकता है जब पाठक अपनी निजी आस्थाओं को एक क्षण के लिए अलग करके कवि के भावों में तन्मय हो जाय और उसकी अनुभूतियों की वास्तविकता समझने का प्रयत्न करे। यदि उसके भाव हृदय की नैसर्गिक आस्था के उद्रेक होंगे तो उनमें एकनिष्ठता (Sincerity) की झलक होगी, जो अन्ततोगत्वा पाठक का आकर्षण-केन्द्र बनेगी। इसी तरह की समस्या पर विचार करते हुए प्रसिद्ध अंग्रेज दार्शनिक तथा समालोचक 'कोलरिज' ने कहा था कि ऐसे काव्यों में, जिसके कि पात्र प्रकृति-क्षेत्र के बाहर हैं, जैसे—भूत, प्रेत, जादूगरनी इत्यादि, यह अत्यन्त आवश्यक है कि पाठक अपने अविश्वासपूर्ण भावना को पठन-काल में स्थगित अथवा निष्क्रिय कर दे जिससे वह कवित्व-सौंदर्य का आस्वादन कर सके। बिना Suspended disbelief अथवा अविश्वास के अनुलंबन के पाठक तथा लेखक में आवश्यक सहयोग संभव नहीं होगा जो वास्तविक अध्ययन का आधार-स्तम्भ है। इसीलिए 'बेकन' (Bacon) ने कहा है कि केवल लेखक के विचारों का खंडन करने की भावना से प्रेरित होकर ही नहीं पढ़ना चाहिये और न उसके सभी विचारों को बुद्धिहीन मनुष्य की भाँति हृदयंगम करना चाहिए। पाठक का सर्वप्रथम कर्तव्य है लेखक के विचारों को पूर्णरूपेण समझना, फिर उस पर मनन-चिंतन करना तब किसी निश्चित निर्णय पर पहुँचना।

सारांश यह है कि पाठक के लिए विवेक तथा सहिष्णुता उतनी ही आवश्यक है जितनी कि उसकी सहृदयता अथवा रसिकता।

अन्त में क्रोचे के एक कथन के उद्धरण के साथ ही हम इस विमर्श को समाप्त करना चाहते हैं। ''हम सीमाबद्ध या संकीर्ण व्यक्तित्व नहीं चाहते, अपितु सीमाहीन, स्वच्छन्दवाही, भाव-संवेगात्मक व्यक्तित्व चाहते हैं। इस प्रकार के व्यक्तित्व के अभाव में काव्य का कवित्व नहीं रह जाता।''

क्रोचे ने कहा है कि हम कवि से किसी तत्त्व-विषयक उपदेश की अपेक्षा नहीं करते और न अत्यधिक कल्पना की ही कामना करते हैं। हम उससे एक ऐसा भावाभिव्यञ्जक व्यक्तित्व चाहते हैं, जिसके संस्पर्श से श्रोता या पाठक का चित्त भी प्राणमय हो उठे··कवि हो या चित्रकार, उसकी रचना इन्हीं भाव-संवेगों से परिपूर्ण रहती है। इन्हीं भाव-संवेगों के आन्दोलन की गंभीरता या तीव्रता ही कवि के चित्त का स्वरूप प्रकट करती है। जब इस प्रकार का कोई स्थायी रस अभिव्यक्त नहीं होता तो कवि के चित्त को और उसके साथ ही साथ उसके

व्यक्तित्त्व को हानि पहुँचती है और उसका काव्य भी निम्नकोटि का होता है।[५०]

———

[५०] It is without doubt that if pure intuition and pure expression are indispensable in a work of art, the personality of the artist is equally indispensable.

We do not ask of an artist instructions as to real facts and thoughts nor that he should astonish us by the richness of his imagination, but that he should have a personality, in contact with which the sentiment of a spectator or hearer may be heated......A work that is a failure is an incoherent work in which no single personality appears but a number of disaggregated and jostling personalities, that is, really, none.

देखिये 'सौन्दर्य-तत्व'—डा० सुरेन्द्रनाथ दास गुप्त, अनुवादक—डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित, पृष्ठ १२४-१२५।

अध्याय ३

काव्य-माध्यम

काव्य का माध्यम भाषा है, जिसे हम विभिन्न आकार, अर्थ तथा ध्वनिवाले शब्दों का पुंज अथवा भाण्डार कह सकते हैं। शेक्सपियर के हैमलेट में पोलोनियस राजकुमार के हाथ में पुस्तक देखकर पूछता है कि आप क्या पढ़ रहे हैं? इसके उत्तर-स्वरूप हैमलेट कहता है—Words, Words, Words. तात्पर्य है कि शब्द ही कविभावाभिव्यक्ति के मुख्य साधन हैं और इनके उचित तथा आकर्षक प्रयोग पर ही कवि की प्रतिभा बहुत अंशों तक निर्भर करती है। 'लाँजिनस' ने उत्तम शब्दों को विचार का प्रकाश माना है और उत्कृष्ट शब्द-व्यापार को ही कवि-प्रतिभा का मापदण्ड। आचार्य 'मम्मट' ने भी 'लोकोत्तर वर्णनानिपुण कवि कर्म' को काव्य की संज्ञा प्रदान की है और अन्य समीक्षकों ने भी इसी तथ्य का प्रतिपादन किया है :—

सरस्वती स्वादु तदर्थवस्तु निष्यन्दमाना महतां कवीनाम्।
आलोकसामान्यमभिव्यनक्ति परिस्फुरंतं प्रतिभाविशेषम्॥५७॥

एक पाश्चात्य मनीषी ने ठीक ही कहा है कि जब तक कवि का अनुभव या भाव भाषा का रूप धारण नहीं कर लेता तब तक वह काव्य-कोटि में नहीं आता और काव्य का उपादान मात्र ही रहता है। इसी भाव के भाषान्तर को हम साहित्य-कला का उद्भव कह सकते हैं। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि जब तक भाव भाषा में अवतरित नहीं होता तब तक कलाकारों में बेचैनी तथा आन्तरिक पीड़ा का अनुभव होता है ऐसा मालूम पड़ता है कि उनके अनुभव का कोई गूढ़ तथा प्रच्छन्न अंग उसी समय स्पष्ट होगा जबकि वह भाषा का परिधान प्राप्त करके उनके समक्ष उपस्थित होगा।[५१]

---

[५१] Until it is verbalized experience is not literature but the material of literature only. It is in verbalization that literary art is born. It is not infrequent indeed that confirmed literary artists are afflicted by a sensation of discomfort before any unverbalized experience, as though the experience contained some hidden and recondite significance which could only he grasped when it bad been clothed in language.

Harold Osborne : *Op. Cit.* p. 322

इसीलिए टी० एस० इलियट ने कवि-प्रतिभा के इस विशिष्ट अंग को अपने एक महत्वपूर्ण लेख का मुख्य विषय बनाया है। इस शक्ति को उन्होंने 'आडिटरी इमैजिनेशन' (Auditory Imagination) अथवा शब्द, ध्वनि-शोधक कल्पना कहा है और इसकी व्याख्या उन्होंने इस प्रकार की है :—

"यह वह शक्ति है जो प्रत्येक शब्दांश तथा गति की पारखी है और इसके लिए चेतना तथा मनोभावों के स्तर के बहुत नीचे तक इसका प्रवेश होता है, जिससे यह शब्दों को स्फूर्तिमय बनाती है; यह प्राचीन शब्दों तक—जो कि प्रायः अप्रचलित हैं—जाती है और भाषा के उद्‌गम स्थान से वापस आती है, परन्तु अपने साथ कुछ लेकर। यह न्यूनाधिक रूप में अर्थसापेक्ष होती है और पुराने, घिसे हुए तुच्छातितुच्छ शब्दों को नवीनतम, प्रसिद्ध तथा चमत्कारपूर्ण शब्दों से समन्वित करती है। इस तरह यह शक्ति प्राचीनतम तथा सभ्यातिसभ्य दृष्टि-कोणों का संयुक्त रूप है।"[५२]

परन्तु कवि का शब्द-व्यापार केवल इसीलिए ही कठिन नहीं है कि उसे ऐसे भावों की अभिव्यक्ति करनी है जो स्वभावतः अमूर्त तथा सूक्ष्म हैं, बल्कि इसलिए भी कि शब्द या भाषा स्वयं रहस्यमय तत्वों से परिपूर्ण है जो कवि के कौशल को भी प्रायः चमका दे देते हैं। इन विशेषताओं पर संक्षिप्त विचार-विवेचन कर लेना समीचीन है।

(१) ऐसा कहा गया है कि शब्द तथा अर्थ शरीर तथा आत्मा के समान अखण्ड हैं और प्रसिद्ध कवियों ने भी इस स्वयंसिद्ध तथ्य का पुष्टीकरण किया है, जैसे कालिदास ने 'जगतः पितरौ पार्वती परमेश्वरौ' को 'वागर्थाविव सम्पृक्तौ' कहा है और उन्हीं की प्रेरणा से गोस्वामी जी ने सीता और राम का समन्वय 'गिरा अर्थजलवीचिसम कहियत भिन्न न भिन्न' की प्रसिद्ध उपमा से अभिव्यञ्जित किया

---

[५२] ...... the feeling for syllable and rhythm, penetrating far below the conscious levels of thought and feeling, invigorating every word; sinking to the most primitive and forgotten, returning to the origin and bringing something back, seeking the beginning and the end. It works through meanings certainly, or not without meanings in ordinary sense, and fuses the old and the obliterated and the trite, the current and the new and surprising, the most ancient and the most civilized mentality.

है। यह एक सर्व-मान्य सत्य है और 'बेन जान्सन' इत्यादि पाश्चात्य समीक्षकों ने भी इसका प्रायः अनुमोदन किया है।

(२) परन्तु अर्थ जो शब्द की आत्मा है कोई स्थिर तथा एकरूप वस्तु या तत्व नहीं है; क्योंकि समग्र तथा परिस्थितियों के कारण इसका रूप बदलता गया है, जिसके फलस्वरूप एक शब्द-शरीर की या तो कई आत्माएँ हैं अथवा एक आत्मा के पीछे एक लम्बी ध्वन्यात्मक पुच्छ लगी हुई है। ऐसा समझा जाता है कि भाषा के बाल्यकाल में शब्द का मुख्य संबंध मनुष्य-शरीर के विविध व्यापारों से रहा और उसका अर्थ रूढ़िसापेक्ष तथा स्थिर था। कालान्तर में भाषा वस्तु से अलग होने लगी और उसके तने से विभिन्न रूप की शाखाए निकलने लगीं। परिणाम यह हुआ कि साहित्य के उद्भव के साथ ही एक-एक शब्द प्रच्छन्न अर्थों का पुंज हो गया और उनका उपयुक्त संकलन कवि की विशिष्ट समस्या तथा उसकी प्रतिभा की कसौटी सिद्ध हुआ।[५३] इसीलिए हमारे यहाँ शब्द की तीन मुख्य शक्तियाँ मानी गई हैं अमिधा, लक्षणा, व्यञ्जना, जिसको पश्चिम में Denotation और Connotation के दो अंगों में समाहित किया गया है।

शब्द का अभिधारूप उसका प्रत्यक्ष कोप-विहित रूप है और लक्षणा तथा व्यञ्जना अभिधा से संबंधित सांकेतिक रूप हैं। जैसे 'माता' शब्द को लीजिये। इसका अभिधार्थ है जनन करनेवाली स्त्री 'विशेष' परन्तु 'माता वात्सल्यमयी है' इस वाक्य में 'माता' जातिबोधक है; फिर 'ऋण असत्य की माता है' यह ध्वनित अर्थ है। इसके अतिरिक्त कई शब्द देखने में एकार्थक अथवा समानार्थक है, परन्तु वास्तव में प्रत्येक के अलग-अलग संदर्भ होते हैं जो उसकी विशिष्टता के परिचायक तत्व हैं। जैसे अंग्रेजी में 'हार्स' (horse) तथा 'स्टीड' (steed) दोनों का 'घोड़ा' अर्थ होता है, परन्तु दोनों के व्यापारिक अथवा व्यावहारिक संबंध भिन्न होने से उनका वास्तविक अर्थ बदल जाता है। 'हार्स' अधिक से अधिक घुड़सवार सेना का स्मरण दिला सकता है, परन्तु स्टीड शब्द से प्रताप के 'चेतक' तथा सिकन्दर के प्रसिद्ध अश्व अथवा मध्यकालीन वीरों के वाहनों का चित्र मानस-पट पर उभरता है और इस 'घोड़े' को कल्पना का स्वर्णिम सौंदर्य प्राप्त हो जाता है।

---

[५३] The word shoots forth sub-meanings as a branch shoots forth twigs. Branch and twig get nourishment from the same root.........A word is a focus or cluster, a blur of meanings on which the mind brings its light to play.

I. Gold Berg—*The Wonder of Words*.

(३) भाषा मनुष्य के विविध विचारों की अभिव्यंजक है। यह समाज की देन है और इस सामाजिक उपलब्धि को कवि अपने प्रयोजन के अनुसार नया रूप प्रदान करता है। काव्य-भाषा शास्त्र, दर्शन या विज्ञान की भाषा से भिन्न होती है। शास्त्र तथा दर्शन तो केवल अभिधा ही से काम चला लेते हैं, परन्तु कवि के लिए अभिधा, लक्षणा तथा व्यञ्जना तीनों अर्थों की आवश्यकता होती है, जिससे सहृदय पाठक उसके अनुरूप ही मानसिक अवस्था प्राप्त करके रसास्वाद के योग्य हो सकें।

शब्दप्राधान्यमाश्रित्य तत्र शास्त्रं पृथग्विदुः।
अर्थे तत्त्वेन युक्तेतु वदन्त्याख्यानमेतयोः॥
द्वयोर्गुणत्वे व्यापारप्राधान्ये काव्यगीर्भवेत्॥

मम्मट ने इसी अन्तर की व्याख्या करते हुए 'प्रभुसम्मित', 'सुहृत्सम्मित' 'कान्तासम्मित' का प्रयोग किया है। 'प्रभुसम्मित' वेदशास्त्रादि में शब्दप्रधानता का द्योतक है; यहाँ शब्द नपे-तुले, वक्रता के लवलेश से रहित होते हैं, जिस तरह कोई सेवक अपने स्वामी से सीधे स्पष्ट शब्दों में अपना निवेदन प्रस्तुत करता है। 'सुहृत्सम्मित' पुराण तथा इतिहासादि का निर्देशक है जो अर्थप्रधान होते हैं और मित्रवत् उपदेश करते हैं। परन्तु काव्य का शब्द-व्यापार तो प्रेयसी की वाणी के समान 'रसांगभूतव्यापारप्रवणतया' विलक्षण होता है।

इस प्रसंग में आई. ए. रिचर्ड्स का विवेचन भी उल्लेखनीय है। उन्होंने विज्ञान तथा काव्य की भाषा का विश्लेषण करते हुए बतलाया है कि वैज्ञानिक का मुख्य प्रयोजन है अपने शब्दों द्वारा एक ऐसे तथ्य की अभिव्यक्ति करना जो आत्मनिरपेक्ष है और तर्क तथा प्रयोग से सत्य अथवा असत्य सिद्ध किया जा सकता है। वैज्ञानिक तटस्थ होकर उपयुक्त शब्दों द्वारा उस बौद्धिक तथ्य का निरूपण करता है, उसके शब्द तो साधनमात्र होते हैं और लेखक के निजी भावों तथा मनोदशा का उनपर किसी तरह का प्रभाव नहीं रहता है। परन्तु कवि का काम है किसी मनोदशा अथवा भाव की इस तरह से अभिव्यञ्जना करना कि जागरूक पाठक में भी उसके समान ही मनः स्थिति (Attitude) उत्पन्न हो जाय। इसलिए कवि के शब्द भावोत्प्रेरक (evocative) होते हैं और एक हृदय से निकलकर दूसरे हृदय को स्पर्श करते हैं। काव्य की सफलता के लिए कवि तथा पाठक का तादात्म्य आवश्यक है और इसकी भाषा का उद्देश्य इसी रागात्मक संबंध का परिपोषण होना चाहिये। इसलिए काव्य में प्रयुक्त भाषा का अर्थ चतुरांगीं होता है, अर्थात् इसके चार अंग होते हैं (१) सेन्स (sense), (२) फीलिंग (Feeling), (३) टोन (Tone), (४) इण्टेन्शन (Intention), शब्द का मुख्य अर्थ,

उसके पीछे लेखक या वक्ता का मनोभाव, उनकी स्वर-भंगिमा जिससे वह श्रोता के प्रति स्व-संबंध का निर्देश करता है और लेखक का तात्पर्य जो केवल व्यञ्जना द्वारा लक्षित होता है।

इसीलिये कवि का सर्वप्रथम कार्य है उपयुक्त शब्दों का चयन जो उसके हृदय-गत भावों को पूर्णरूपेण प्रकाशित करने में समर्थ हों। 'फ्लाउबे' (Flaubert) और 'पेटर' (Pater) के अनुसार तो प्रत्येक भावभंगी का अभिव्यंजक केवल एक ही शब्द हो सकता है, और उसीका प्रयोग कवि-शक्ति की कसौटी है। इसके लिए कवि को भाषा-धनी होना चाहिये और उसकी स्मृति इतनी स्फूर्तिमय होनी चाहिये कि आवश्यकता की उपस्थिति के साथ ही उसका मस्तिष्क शब्द-समूहों से मुखरित हो जाय तथा चयन-कार्य दुष्कर।[५४] स्पष्टीकरण के लिए कालिदास की प्रसिद्ध पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं।

निर्वासिता सीता लक्ष्मण को अन्तिम सन्देश देते हुए कहती हैं :—

वाच्यस्त्वया मद्वचनात् स राजा
वह्नौ विशुद्धामपि यत्समक्षं
मम लोकवादश्रवणादहासीः
श्रुतस्य किं तत्सदृशं कुलस्य।

पति की राजसत्ता से पीड़ित सीता अपना आक्रोश 'स राजा' शब्दों में प्रकट करती हैं। 'स' तृतीयपुरुष संबंधविच्छेद का सूचक है और 'राजा' से कर्तव्य-भावना द्वारा प्रेरित पति के निर्दोष पत्नी पर अत्याचार तथा अन्याय का संकेत है। परन्तु क्रोधावेश शोकाकुल प्रेम से पराजित होता है और 'स' के स्थान पर 'त्वं' का प्रयोग पति-पत्नी के अविच्छेद्य संबंध का निर्देश करता है।

'त्वयात्यन्तवियोगमोघे'—'स्याद् रक्षणीयो यदि मे न तेजः त्वदीय अन्तर्गत'। अन्त में दो विरोधी भावों का सामंजस्यस्थापित होता है 'नृप' में—'नृपस्य वर्णाश्रमपालनं यत्तदेव धर्मः मनुना प्रणीतः—अर्थात् राम 'नृप' हैं और उनका धर्म है राज्य के प्राणीमात्र की रक्षा करना। इसीलिए उनकी परित्यक्ता पत्नी भी उनके संरक्षण से वंचित नहीं रह सकती।

इसी प्रकार मानव-स्वभाव की संमिश्रित महानता तथा तुच्छता पर मनन करते हुए हैमलेट कहता है—What a strange piece of work is a man

---

५४ One must be drenched in words, literally soaked in them, to have the right ones form themselves into the proper patterns at the right moment—Hart Crane.

परन्तु मनन का अवसान होता है मनुष्य की तुच्छता में जो कि 'this quintessence of dust' में निहित है।

तत्सम शब्दों के अर्थ-भेद ही में कुशल लेखक अपना पूर्ण परिचय देता है—इलियट का एक वाक्य लीजिये :—

'Dryden is the satirist of *contempt;* Pope of *hatred* and Swift of '*disgust*'.

वर्ड्सवर्थ 'डैफोडिल' पुष्पों की अनन्त राशि एकाएक देखते हैं और तुरत अनुभव करते हैं उनकी प्रचुरता का, परन्तु दूसरे ही क्षण उनके सुनिश्चित क्रम का बोध हो जाता है। इसलिए वे लिखते हैं —'I saw a *crowd*, a *host* of golden daffodils'.

(४) परन्तु शब्द एकाकी नहीं आते; क्योंकि उनकी शक्ति 'संघ' ही में निहित है। वे गिरोह में रहनेवाले (gregarious) प्राणी हैं और दूसरे शब्दों के संयोग से ही उनमें सार्थकता, रोचकता तथा चमत्कार का प्रादुर्भाव होता है। एक समीक्षक ने ठीक ही कहा है कि शब्द पकी ईंट नहीं, अपितु मिट्टी के लोंदे के समान होते हैं जो पार्श्ववर्ती शब्दों के भार, दबाव तथा तनाव से ही अपने स्वस्थ रूप को प्राप्त होते हैं और तनाव से उनका संगीत प्रस्फुटित होता है तथा उनके अर्थों की विभिन्नता विशिष्ट संदर्भ के वशीभूत लुप्त होकर उनके किसी सुनिश्चित अर्थ-विकास के लिए मार्ग प्रशस्त करती है।"[५]

इसीलिए पूर्व तथा पश्चिम के सभी समीक्षक शब्द-योजना के महत्व को एक स्वर से स्वीकार करते हैं। 'होरेस' (Horace) तथा अरस्तू (Aristotle) ने कहा है कि साधारण शब्द भी योजना-कौशल से असाधारण प्रतीत होते हैं और

---

[५५] Words are not rigid and univocal symbols in isolation; they are not pre-formed shapes like bricks of a house, but are rather like lumps of clay which are moulded into shape by the weight and tension of their neighbours. Some words have several primary meanings, but all words have a wealth of associated meaning—an umbra of subsidiary implications ...when they are concatenated with other words into univocal sequences the effect of the organization is......to select and order the vague conglomerate of meaning which belongs to each word individually.

Harold Osborne : *Op. Cit. Pp.* 271-272.

इनका सुनियोजन (Jointure) ही कवि-व्यापार की आधार-शिला है। नाना रूप, आकार, प्रकार के शब्दों को लेकर कवि उन्हें एक सूत्र में अनुस्यूत करके रंगबिरंगे पुष्पों की माला तैयार करता है जिसमें प्रत्येक पुष्प अपनी विशेषता रखते हुए समस्त विन्यासके साथ अवयव-अवयवी भाव से विद्यमान रहता है। इसी शब्द-गुम्फन की व्याख्या करते हुए 'इलियट' ने नृत्य का रूपक उपस्थित किया है:—

The common word exact without vulgarity
The formal word precise but not pedantic
The complete consort dancing together.

उदाहरण के लिए गोस्वामी जी की प्रसिद्ध उक्ति लीजिये :—

राजन राउर नामयश, सब अभिमत दातार।
फल अनुगामी महिपमणि मन अभिलाष तुहार!

यहाँ साहित्यिक शब्दों के मध्य 'राउर' और 'तुहार' ऐसे साधारण भाषा के शब्द असाधारण प्रतीत होते हैं।

'कोलरिज' ने कहा है कि गद्य की परिभाषा है उपयुक्त शब्द उपयुक्त विन्यास में (Proper words in proper order) और पद्य की विचित्रता है सर्वोत्तम शब्द सर्वोत्तम विन्यास में (Best words in best order)। संस्कृत में इसी सुनियोजन के लिए 'शय्या', 'मैत्री' तथा 'पाक' का प्रयोग हुआ है। 'शय्या' का अर्थ है सुनियोजित शब्दों की स्थिरता जो शैय्या पर लेटे हुए शान्त व्यक्ति के समान होती है, और 'मैत्री' से शब्दों का घनिष्ठ मेल लक्षित है। 'पाक' की परिभाषा है 'गुणालंकारीत्युक्तिशब्दार्थग्रथनक्रमः' अथवा 'गुणस्फुटत्वसाकल्ये काव्य-पाकं प्रचक्षते।' वामन ने इसीकी विशिष्टता दर्शाते हुए 'कोलरिज' की उस प्रसिद्ध उक्ति का समर्थन किया है जिसके अनुसार काव्य की शब्द-योजना इतनी स्थिर होती है कि उसका रूपान्तर नहीं हो सकता और रूपान्तर करने से विशिष्ठ अर्थ लुप्त हो जाता है—

यत् पदानि त्यजन्त्येव परिवृत्तिसहिष्णुताम्।
तं शब्दन्यायनिष्णाताः शब्दपाकं प्रचक्षते॥

इस 'मूल' पाक के भिन्न-भिन्न प्रकारों का विवेचन हुआ है जिसका उल्लेख आवश्यक नहीं है।

उक्ति-विशेषः काव्यम्

ऐसा माना जाता है कि काव्य का गुण, दोष 'उक्ति' के ही आश्रित हैं और पूर्व तथा पश्चिम के समीक्षकों ने इस उक्तिवैशिष्ठ्य की व्याख्या नाना रूपों में की

है। परन्तु इन भिन्न-भिन्न समीक्षा-मार्गों का विचार करने के पहले एक समस्या का समाधान आवश्यक है। क्या काव्य की भाषा साधारण गद्य की भाषा से भिन्न होती है, अथवा क्या कुछ विशिष्ट शब्द ही काव्य में प्रयुक्त हो सकते हैं? पाश्चात्य साहित्य में यह एक जटिल तथा विवादग्रस्त प्रश्न रहा है, परन्तु संस्कृत-काव्य-शास्त्र में इसकी गंभीरता का आभास नहीं मिलता है। कारण स्पष्ट है; संस्कृत में जन-साधारण की भाषा साहित्यिक भाषा से भिन्न ही रही; क्योंकि संस्कृत शायद कभी भी चिर-काल तक लोक भाषा नहीं रही। इसलिए संस्कृत-काव्य में शास्त्र-व्याकरणविहित तथा विद्वानों द्वारा स्वीकृत भाषा ही कवियों के लिए मान्य हुई।

परन्तु पश्चिमी साहित्य में भाषा बहुरंगी है; इसमें कई वर्ग तथा श्रेणियों के शब्द हैं—कुछ ग्रीक तथा लेटिन की प्रतिष्ठित भाषाओं से उपलब्ध हैं, कुछ जन-साधारण की भाषा के अंग हैं, कुछ काव्य-परंपरा से काव्यात्मक रूप तथा सौंदर्य प्राप्त कर चुके हैं और कुछ कवियों द्वारा समय समय पर आविष्कृत होकर प्रचलित हो गये हैं और बहुत से दूसरी भाषाओं तथा विज्ञान, दर्शन इत्यादि की पारिभाषिक-शब्दावली (Technical terminology) की देन हैं। इसलिए प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि काव्य-भाषा (Poetic diction) का क्या रूप है और इसका साधारण बोलचाल तथा व्यापार की भाषा से क्या संबंध है? इस प्रश्न के तीन विशिष्ट उत्तर दिये गये हैं जो 'हेगेल' के पक्ष (Thesis), विपक्ष (anti-thesis) और समन्वय (Synthesis) के समान माने जा सकते हैं। १८वीं शताब्दी के उत्तरार्ध के प्रसिद्ध कवि 'टामस ग्रे' ने इस विषय में कहा है कि किसी युग की प्रचलित भाषा काव्य की भाषा नहीं हो सकती, अर्थात् काव्य में उन्हीं शब्दों का प्रयोग होना चाहिये जो परंपरागत साहित्य के अंग हो चुके हैं। इस कथन के पीछे उस युग की प्रमुख विचारधारा है जिसके अनुसार काव्य की भाषा साधारण गद्य-भाषा से भिन्न होनी चाहिये और उसमें जन-जीवन के बीच प्रचलित साधारण शब्द या ऐसे शब्द जिनका संबंध जीवन के साधारण व्यापारों से है अथवा विज्ञान के पारिभाषिक शब्द कदापि उपयुक्त नहीं हो सकते। डा० जॉन्सन की व्याख्या भी इसी आशय की है[५६] और वे

---

५६ A system of words at once refined from the grossness of domestic use, andfree from the harshness of terms appropriated to particular arts......From those sounds which we hear on small or on coarse occasions, we do not easily receive strong impressions.

इसके इतने प्रबल समर्थक थे कि उन्होंने शेक्सपियर द्वारा लिखित प्रसिद्ध नाटक 'मैकबेथ' की कुछ मार्मिक पंक्तियों को इसीलिए दोषपूर्ण बतलाया कि उनमें 'Knife' और 'blanket' ऐसे साधारण तथा अनुदात्त शब्दों का प्रयोग हुआ है।[५७] उस युग के कवियों के लिए यह आवश्यक था कि साधारण वस्तुओं को असाधारण ढंग से प्रस्तुत करें और प्रकृति की परिचित किन्तु सुन्दर वस्तुओं, जैसे सूर्य तथा चन्द्रमा, को भी पुराने पौराणिक (Mythological) नामों से अलंकृत करके ही काव्य में प्रयुक्त करें। 'Sun' के स्थान पर 'Sol'; 'moon' के लिए 'Cynthia; 'birds' के स्थान पर 'feathered tribe', 'Sheep flock' के लिए 'woolly flock' इत्यादि। पोप ने 'चाय कप में ढालने की क्रिया' को काव्यरूप देते हुए लिखा है—'And China's earth receives the smoking Tide'.

इस अतिवाद का उत्तर एक दूसरे अतिवाद के रूप में प्रकट हुआ और १८वीं शताब्दी के अग्रगण्य कवि वर्ड्सवर्थ इसके विशिष्ट प्रतिपादक माने जा सकते हैं। उन्होंने अपनी नयी कविताओं को—जो लिरिकल बैलेड्स Lyrical Ballads के नाम से प्रकाशित हुई थीं—अपने पाठकों के समस्त प्रस्तुत करते हुए निवेदन किया कि इन कविताओं में यह नया प्रयोग किया गया है कि साधारण ग्रामीणों की भाषा, भावातिरेक से अनुप्राणित होने पर किस हद तक काव्य का सबल माध्यम हो सकती है। परन्तु इतने से ही सन्तुष्ट न होकर उन्होंने यहाँ तक कह दिया कि ग्रामीणों की भाषा ही शुद्ध तथा स्फूर्तिमय होती है क्योंकि ऐसे लोगों द्वारा उसका व्यवहार होता है जिनके भावसंवेग स्वाभाविक तथा प्रबल होते हैं और उनकी निर्बाध रूप से अभिव्यक्ति भी होती है। ऐसी भाषा में वह सहज-शक्ति विद्यमान है जो १८वीं शताब्दी के अलंकृत परन्तु निष्प्राण पांडित्य-प्रदर्शन में कभी भी प्राप्य नहीं है।

---

[५७] Come thick night.

And pall thee in the *dunnest* smoke of hell
That my keen *knife* see not the wound it makes
Nor heav'n peep through the *blanket* of the dark.
To cry, 'Hold, hold',

The epithet 'dun' is now 'seldom heard but in the stable, and 'knife' is the name of an instrument used by butchers and cooks in the meanest employments.'

Johnson.

निष्कर्ष यह है कि साधारण गद्य की भाषा तथा छन्दोवद्ध कविता की भाषा में किसी प्रकार का मौलिक अन्तर नहीं है।

वड्‌सवर्थ का कथन अतिशयोक्तिपूर्ण होते हुए भी नितान्त सारहीन नही हैं और 'कोलरिज' को भी—जो कि वड्‌सवर्थ के प्रथम तथा अत्यन्त तीव्र और तल-स्पर्शी आलोचक माने जाते हैं—इस बात को स्वीकार करना पड़ा कि पद्य में गद्य के शव्द वरावर प्रयुक्त होते हैं, परन्तु काव्य के संगीतमय वातावरण में तथा अन्य शब्दों की संगति पाकर उनका रूप तथा प्रभाव परिवर्तित हो जाता है। कुछ लोगों की यह धारणा है कि वड्‌सर्वथ स्वभावोक्ति ही के समर्थक हैं और आरनल्ड के शब्दों में हम कह सकते हैं कि उनके प्रसिद्ध काव्यों में ऐसा ज्ञात होता है कि प्रकृति देवी ने उनकी लेखनी को अपने हाथ में लेकर अपने शुद्ध, प्रसादमय किन्तु प्रभावशाली (bare, sheer, penetrating power) शक्ति से उनके भावों का द्योतन किया है। परन्तु सिद्धान्ततः उनका ग्रामीण भाषा-समर्थन उनके नाटकीय (dramatic) लघुकाव्यों से संवंधित है किन्तु उच्च कोटि के काव्य में रूपक इत्यादि का प्रयोग उन्होंने निषिद्ध नहीं किया, यदि वे भावों का स्वाभाविक अभिव्यंजन करते हैं। उन्होंने एक स्थल पर स्पष्ट कहा है कि अपने बाल्य-काल में साधारण भाषा भी रूपक-संपन्न होती है, परन्तु उसमें कृत्रिमता का लेश नहीं होता; सभ्यता के विकास के साथ ही भाषा अधिक बौद्धिक होती जाती है और भाव तथा रूपक का मौलिक संवंध शिथिल होने लगता है। परिणाम यह होता है कि अलंकृत भाषा परम्परा-ग्रस्त होकर ऐसे स्थलों पर भी प्रयुक्त होने लगती है जहाँ वह वाह्य-प्रसाधन मात्र ही रहती है और उसके स्फूर्ति-प्रदायक भाव लुप्तप्राय रहते हैं। ऐसी सारहीन आंडबरी भाषा प्रत्येक विवेकवान् कवि के लिए निन्दनीय है[५८]

५८ The earliest poets were moved by the beauty and grandeur of Nature, their emotions were aroused and instinctively figures of speech, images and metaphors appeared in their utterances. With the passage of time human sensibility lost its primal intensity, but the images and metaphors which had appeared in primitive poetry became a permanent possession of the race. By wont and custom successive generations of poets made use of the same figures of speech. Their style was thus enriched, but acquired, nevertheless, a touch of artificiality......With the progress of refinement the diction became daily more and more corrupt, thrusting out of right the plain humanities of nature by a ghostly masquerade of tricks.

the Appendix to the Preface.

इसी आशय का कथन लाँजिनस ने भी अलंकारों के सम्बन्ध में बार-बार दुहराया है। अलंकार कृत्रिमता के दोष से तभी मुक्त हो सकते हैं जब भावाग्नि में उनका आडम्बर भस्म हो जाय और ऐसा प्रतीत हो कि भाव-संवेगों के वही शुद्ध तथा सहज वाचक अथवा साकार प्रतीक हैं।

अंग्रेजी काव्य-साहित्य के साधारण विद्यार्थी भी इस तथ्य से अवगत होंगे कि वहाँ काव्यात्मक भाषा तथा बोलचाल की भाषा में सम्यक् समन्वय स्थापित करने के लिए सतत प्रयत्न होता रहा है। एलिजाबेथ-युग में 'डन' (Donne) तथा उनके अनुयायियों तथा 'बेन जान्सन' (Ben Jonson) और उसके शिष्यों ने काव्य-परम्परा को नया मोड़ दिया जो जन-भाषा के पक्ष में रहा। इसी तरह १८वीं शताब्दी के कृत्रिम काव्य-शैली की तीव्र प्रतिक्रिया वर्ड्सवर्थ के 'Prface' में हुई। इसके पश्चात् १९ वीं शताब्दी के अन्त में 'कला कला के लिए' सिद्धांत को माननेवाले कवियों तथा लेखकों ने उक्ति की प्रधानता को स्वीकार करते हुए एक ऐसी साहित्यिक शैली का प्रचार किया जो एकदम दिखावटी न होते हुए भी जटिल, परिष्कृत तथा साधारण भाषा तथा शैली से प्रायः भिन्न ही रही। बीसवीं सदी के साहित्यकारों, कवियों तथा समीक्षकों ने मूलतः एक ही धारणा से अभिप्रेरित होकर इस युग में नव-काव्यनिर्माण का कार्य आरम्भ किया—वह धारणा थी इस वैज्ञानिक तथा मशीन-युगीन भाषा को उदात्त बनाकर काव्य का सूक्ष्म माध्यम बनाने का संकल्प। इस ध्येय का वर्णन करते हुए 'इलियट', 'पाउण्ड' इत्यादि समीक्षकों तथा काव्य-स्रष्टाओं ने स्पष्ट कहा है कि उनका मूल सिद्धान्त था काव्यमयी भाषा का परित्याग तथा इस युग की प्रचलित लोकभाषा का ग्रहण तथा उदात्तीकरण (heightening of the Common language) और बोदेलेयर (Baudelaire) की प्रसिद्धि का मुख्य कारण यह माना गया है कि उन्होंने आज कल के औद्योगिक नागरिक जीवन से सम्बन्धित शब्दों तथा बिंबों को लेकर उन्हें काव्य का सूक्ष्म तथा भावात्मक उपादान बनाया।[५९]

---

[५९] It was one of our tenets that verse should have the virtue of prose, diction should become assimilated to cultivated contemporary speech......Subject-matter and imagery of poetry should be extended to topics and objects related to the modern life. We were to seek the non-poetic, to seek even material refractory to transmutation into poetry, and words and phrases which had not been used in poetry before.

T. S. Eliot.

सारांश यह है कि काव्य का कोई निश्चित शब्द-विन्यास नहीं हो सकता है, उसके लिए संसार की सभी वस्तुएँ 'विषय' (Subject) हो सकती हैं और सभी शब्द उसके माध्यम का अंग हो सकते हैं, यदि कवि-शक्ति उन्हें अनुप्राणित करने में समर्थ हो। भाषा स्थायी नहीं; किन्तु गतिशील होती है, उसका कलेवर बदलता रहता है, नये शब्दों तथा नये विचारों का सभ्यता की प्रगति के साथ ही साथ उद्भव तथा विस्तार होता है और भाषा जीवित तभी तक मानी जाती है जब तक वह गतिमान है और नये विचारों तथा शब्दों को पचाने के लिए उसमें शक्ति है। काव्य-भाषा 'कच्छप धर्म' स्वीकार करते ही शक्तिहीन तथा निष्प्राण हो जाती है। कविता की कोमल-कान्त पदावली तभी तक उपयुक्त होती है जब तक वह सम्पन्न रसिकों तथा विलासी राजाओं का मनोरंजन करना ही अपना मुख्य धर्म समझती है। परन्तु दरबार का विलासी वातावरण छोड़कर जन-जीवन के विशाल तथा कंटकाकीर्ण क्षेत्र में प्रवेश करने के साथ ही उसको अपनी भाषा तथा वेश-भूषा बदलनी पड़ती है। पुराने तपस्वी कवियों ने राजा भगीरथ की तरह काव्य-गंगा का स्वर्ग से पृथ्वी पर अवतरण कराया; परन्तु आज के काव्य-सेवियों का कार्य उससे भी दुष्कर है, उन्हें तो हजरत मूसा (Moses) की तरह चट्टान तोड़कर उसके गर्भ से काव्य-स्रोत प्रस्फुटित करना है। इस प्रसग में 'जान मेसफील्ड' (John Masefield) इंगलैण्ड के राष्ट्र-कवि, का वह मार्मिक उद्‌गार ध्यान में आता है जो 'काँसीक्रेशन (Consecration) नामक उनकी 'प्रसिद्ध कविता में शब्द-बद्ध है। उनके कथन का सार यह है कि और कवि राजा-महाराजाओं तथा तुंदिल धन-कुबेरों का यश-गान करना चाहें तो करें, परन्तु मेरे लिए तो समाज के वह अभिशप्त लोगही काव्य-विषय होंगे जिनकी झुकी हुई पीठ पर दारिद्र्य का बोझ है और हृदय में संताप के फफोले और जो समाज में पथ की धूलि तथा जल की काई के समान ही तिरस्कृत हैं।

काव्य-विकास के स्वर्णयुग प्रायः राष्ट्र के इतिहास में ऐसे काल होते हैं जब कि लोकभाषा काव्य-तत्वों से संयुक्त तथा साहित्यिक भाषा के अति निकट होती है और बिना प्रयास ही काव्य-क्षेत्र में प्रवेश करती है। ऐसा समय महारानी एलिजाबेथ प्रथम का राज्य-काल था जिसमें शेक्सपियर से लेकर साधारण से साधारण लेखकों ने बोल-चाल की भाषा का चमत्कार विविध रूपेण प्रकट किया। हमारी राष्ट्रभाषा भी इसी तरह के स्वर्णयुग से गुजरी है जब सूर तथा तुलसी ने इसे गौरवान्वित किया। तुलसी का 'मानस' तो लोक-भाषा की शक्ति तथा

क्षमता का एक सजीव तथा विशाल प्रमाण है। एक दो उदाहरण ही इस कथन की पुष्टि के लिए पर्याप्त होंगेः—

वालि कबहुँ अस गाल न मारा, मिलि तपसिन तैं भयसि लवारा।
तौ परनारि लिलार गोंसाई, तजिय चौथ चंदा की नाईं।
हमहुँ कहब अब ठकुर सोहाती, 'भामिनि भयेउ दूध की माँखी'

इत्यादि। इस तरह की असंख्य पक्तियाँ हैं जिनका साहित्यिक भाषा में अनुवाद करने का प्रयत्न उतना ही घातक सिद्ध होगा जितना कि डॉ० जॉन्सन का 'बाइबिल' के सरल किन्तु सबल उपदेशों को साहित्य-कलेवर देने का दुस्साहसः— 'Go to the ant thou sluggard! learn her ways and be wise ete.

काव्य-भाषा के बदलते हुए रूप की झांकी अंग्रेजी साहित्य के कतिपय उदाहरणों द्वारा प्रस्तुत की जा रही हैः—

महाकवि शेक्सपियर ने स्त्री की पूर्णता विवाह तथा संतानोत्पत्ति में मानकर इस आशय का कथन किया है—'The flower that is distilled is better than the flower that blooms and dies on its thorn'. इसी तथ्य को डब्ल्यू० बी० ईट्स (W. B. Yeats) के एक स्त्री-पात्र ने सीधे तथा रूपक परिधान से रहित भाषा में अभिव्यक्त किया है—'We are never whole or sole (soul) unless we are torn'। आत्मा-परमात्मा का संबंध प्रेमी-प्रेमिका तथा वर-वधू का रूपक लेकर प्रकट किया जाता है, परन्तु जान डन (Donne) ने आत्मा के अतृप्त प्रेम के लिए divine dropsy का प्रयोग किया है और अपने प्रेमी से प्रार्थना की है—'Batter my heart thou three-personed God! ravish it to makeit pureand perfect'। पोप (Pope) ने 'फैशन-परस्त' महिलाओं के प्रदर्शन प्रेमी हृदय की उपमा 'moving toy-shop' से दी है, परन्तु ईट्स (Yeats) ने इसी तथ्य के लिये 'rags and bone.shop of the heart' ऐसे निम्न-कोटि के शब्दों का प्रयोग किया है और अपनी वृद्धावस्था के प्रति घृणा प्रकट करते हुए लिखा है 'which is tied to me like the tail of a dog'। इसो तरह 'पाउण्ड' (Pound) ने आज की सभ्यता को 'old bitch of a civilization' कहा है तथा इलियट (Eliot) ने युद्ध-जर्जर सभ्यता का चित्र प्रस्तुत करते हुए खंड़हर की काली दिवालों को जिसपर कि चमगादड़ रेंग रहे हैं—उद्दीपन अनुभाव बनाया है। इलियट की कविताओं में हमारी विज्ञान-युगीन शब्दावली का भी प्रभावपूर्ण प्रयोग उपलब्ध है। सांयकाल का वर्णन करता हुआ उनका एक सहज-भीरू पात्र कहता है 'When the evening is

spreadout in the sky like a patient etherised on a table.' इसी तरह का अन्य पात्र अपनी निरर्थक दिनचर्या का परिचय देते हुए निवेदन करता है—'I have measured out my life with a Coffee-spoon'. अपने प्रसिद्ध-काव्य 'द वेस्ट लैंड' (The Waste Land) में एक स्थल पर उन्होंने इस मशीन-युग के यन्त्रवत् व्यापारों तथा मानव-संबंधों का उपयुक्त उपादानों द्वारा एक मार्मिक चित्र उपस्थित किया है। एक युवती जो टाइपिस्ट है, दिन भर मशीन की तरह 'पीसने' के बाद दफ्तर के बन्द होने की आशा में सीधी बैठकर अपेक्षित क्षण के लिए उत्सुक हो जाती है—when the human engine waits, like taxi, waiting, throbbing.' इसके पश्चात् अपने घर पर चाय पीकर वह कुछ शान्ति का अनुभव करती है और निर्दिष्ट समय पर उसका प्रेमी आता है, जो निम्न-वर्ग का व्यक्ति है, परन्तु आत्म-विश्वास तथा गौरव की 'नकाव' चेहरे पर लगाये रहता है:—

One of the low on whom assurance sits/Like a silk hat on Bredford millionaire.

'Silk hat' चोर वाजार से पोषित धन-कुबेरों का वैभवसूचक होते हुए इस गूढ़ भाव की व्यञ्जना करता है कि मनुष्य अपने धन से शिष्ट परिधान तो प्राप्त कर सकता है, परन्तु उसको सहज रूप से धारण करने के लिए तो शिष्टाचार-परम्परा का होना आवश्यक है और वह एक रात में नहीं प्राप्त हो सकती। इन दोनों प्रेमियों का मिलन भी यन्त्रवत् है। इस आशय को भी उपयुक्त शब्दों द्वारा लक्षित किया गया है:—

When a lovely woman stoops to folly
And walks about in her room again
She smooths her hair with *automatic* hand
And puts a record on the *gramophone*'.

इन उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि शब्द-शक्ति भावसंवेगों से प्रखर तथा गतिशील होती है; शब्द तथा भाव का संयोग ही काव्य-भाषा का प्राण है। अन्तर यही है कि प्राकृतिक पदार्थों तथा मूल्यवान उपकरणों में इस तरह का संघात (association) परम्परागत हो चुका है, परन्तु मशीन तथा रेडियो और वायुयानों के ऊपर अभी भाव-तन्तुओं की जाली तैयार करनी है; तभी उनमें प्राण-प्रतिष्ठा संभव होगी।

उक्ति-वैशिष्ट्य की खोज

काव्य-शास्त्र का मुख्य उद्देश्य है काव्य-स्वरूप का निर्णय तथा निरूपण और उसके विशिष्ट गुणों का अनुसंधान तथा विश्लेषण। हमारे काव्य-शास्त्र में यह

अनुसंधान काव्य-शरीर से आरंभ होकर काव्यात्मा की गहराई में विश्रान्त होता है। हमारे अलंकारवादियों के लिए काव्य की सजावट ही उसकी विशिष्ट शोभा की उत्पादिका थी यद्यपि दण्डी आदि विचारकों ने अलंकार के व्यापक अर्थ का भी स्पष्ट निर्देश किया है—'काव्यशोभाकरान्धर्मानलंकारान् प्रयच्छते'। परन्तु बहुतों के लिये अलंकारों की संख्या बढ़ते-बढ़ते शतक को अतिक्रान्त कर गई। परवर्ती विचारकों ने अलंकार को अनित्य मानते हुए भी उसका पल्ला नहीं छोड़ा और वाक्-वक्रता के अन्तर्गत उसका समावेश करके उसको काव्य का मुख्य अंग बना दिया यद्यपि विशेष आग्रह उसके औचित्य तथा प्रच्छन्नता पर ही केन्द्रित हुआ।

अलंकृतमपि प्रीत्यै न काव्यं निर्गुणं भवेत्।
वपुष्यललिते स्त्रीणां हारो भारायते परम्॥

यूरोप में भी समीक्षा-शास्त्र का उदय Figures of speech की महत्ता के साथ होता है और उनकी संख्या भी मध्यकालीन युग तक पहुँचते-पहुँचते शतक के ऊपर पहुँच जाती है परन्तु उसके पश्चात् धीरे-धीरे उनका प्रभाव घटने लगता है और अन्त में उनका महत्व प्रायः नगण्य ही हो जाता है। वहाँ भी अरस्तू तथा लॉजिनस जैसे मनीषियों ने अलंकार को साध्य नहीं, अपितु साधन ही माना और कला का अंग होते हुए भी उसकी सार्थकता का रहस्य उसकी गोपनीयता में ही समझा।

वामन का रीति-मार्ग इस अनुसन्धान का दूसरा चरण है, जिसकी परिभाषा 'विशिष्ट पदरचना' है और पदरचना की विशेषता का नाम 'गुण' है:—

काव्यशोभायाः कर्त्तारो धर्मा गुणाः तदतिशयहेतवस्त्वलङ्काराः।

इस तरह 'गुण' पदरचना के नित्य अंग हुए और अलंकार उसके साधन-मात्र अनित्य अंग हुए। पदरचना-'गुण' से रीतियों का वर्गीकरण हुआ और दण्डी की दो मुख्य रीतियाँ वामन की 'त्रिवेणी'—गौड़ी, वैदर्भी, पांचाली—के रूप में प्रकट हुई और यह रूप प्रायः परवर्ती समीक्षकों को भी मान्य रहा। अन्तर केवल इतनाही हुआ कि कालान्तर में 'रीति' का विचार कवि-प्रतिभा को दृष्टि में रखते हुए अधिक संतुलित होने लगा। दण्डी ने पहले ही यह संकेत किया था कि कवि अनन्त तथा कविवाणी अनन्ता है, परन्तु कवि-प्रतिभा को केन्द्रस्थान में रखने का श्रेय आचार्यकुन्तक को है—

विधिवैदग्ध्यनिष्पन्न निर्माणातिशयोपमः।
यत् किञ्चापि वैचित्र्यं तत्सर्वं प्रतिभोद्भवम्॥

परन्तु कवि-स्वाभाव का तीन विभाग—अर्थात् सुकुमार, विचित्र तथा मध्यम करके अन्त में वह रीति-त्रिवेणी में ही अवगाहन करने लगे और उनकी मौलिकता का क्रम परम्परा में लुप्त हो गया। इस दृष्टि से दण्डी का कथन अधिक तथ्यपूर्ण तथा तर्क-संगत मालूम पड़ता है।

इक्षुक्षीरगुडादीनां माधुर्यस्यान्तरं महत्।
तथापि न तदाख्यातुं सरस्वत्यापि शक्यते॥

अर्थात् मधुर वस्तुओं की मधुरता में भी अन्तर होता है, परन्तु उसकी व्याख्या तो स्वयं सरस्वती भी नहीं कर सकतीं। इसी गुण को होरेस (Horace)इत्यादि पाश्चात्य काव्य-शास्त्रियों ने 'grace' कहा है—अर्थात् पदरचना का वह सौंदर्य जो नियम तथा कला-पद्धति के परे है और भगवत्प्रसाद का ही लक्षण है।

यूरोप में शास्त्रीय रीति-विवेचन प्रायः इसी तरह से आरंभ हुआ और अरस्तू के तीन प्रकार के व्याख्यानों का वर्णन, डिमेट्रियस का चतुर्वर्गीय शैली-विभाजन तथा क्विन्टीलियन की ऐटिक (Attic), एशियाटिक (Asiatic) तथा रोडियन (Rhodian) रीतियाँ भारतीय विचारों से बहुत साम्य रखती हैं और इस साम्य का काफी विश्लेषण भी हो चुका है। इसलिए इसपर अधिक कहना संगत नहीं प्रतीत होता, परन्तु यह स्मरणीय है कि कवि के केन्द्र में आते ही पश्चिम में शैली का वर्गीकरण प्रायः समाप्त हो गया। यदि 'शैली' लेखक के व्यक्तित्व की प्रतिकृति है तो उसका रूप बहुरंगी होगा और परिवर्तनशील भी। इसलिए 'पेटर' इत्यादि समीक्षकों का शैली-विवेचन उनके अपने आदर्शों तथा प्रयोगों से अभिप्रेरित है और जिसको वे वैज्ञानिक विश्लेषण समझते हैं वह वास्तव में व्यक्तिगत पद्धति तथा प्रवृत्ति की ही व्याख्या है। यूरोप का समीक्षक आज प्रायः शैली के बदलते हुए रूप का अध्ययन करता है क्योंकि कवि-प्रतिभा एक गतिशील तत्त्व है जिसकी छाया कवि की शैली पर स्पष्ट अंकित रहती है और ज्योंही प्रतिभा की प्रगति स्थिर हो जाती है उसकी शैली भी स्फूर्तिहीन होने लगती है। 'वर्ड्सवर्थ' तथा 'स्विनबर्न' के विषय में कहा गया है कि बहुत पहले ही उनका मस्तिष्क-विकास स्थिर हो गया और इसके फलस्वरूप उनके शब्द-विन्यास तथा बिम्ब अपने वैविध्य से रहित होने लगे और भाषा अपनी भाव-भंगी को भूलकर स्थूल तथा स्पन्दनहीन रूप धारण करने लगी। इसके विपरीत कीट्स तथा शेक्सपियर शब्द तथा अलंकार-बाहुल्य से आरंभ करते हैं, परन्तु कालान्तर में भाव की परिपक्वता के साथ ही उनकी भाषा गंभीर होने लगती है, वाक्य में चुस्ती तथा पदों में घनत्व आने लगता है और भाषा तो चाक की मिट्टी के समान उनके

बदलते हुए भावों तथा विचारों की छाप अंकित करने का एक 'लचीला' (pliant) उपादान सिद्ध होती है। सारांश यह है कि हम काव्य-शैली के तत्त्वों—शब्दों, पदों, वाक्यविन्यासों, उनके समन्वय तथा संयोजन, गति और ध्वनि, भावसंवेगों का संघर्ष तथा उसके अनुसार गति-परिवर्तन, शैली के बौद्धिक तथा भावात्मक तत्त्वों इत्यादि—की व्याख्या कर सकते हैं। परन्तु हम यह कभी नहीं कह सकते कि काव्य-शैली तीन या चार प्रकार ही की होगी और इसमें कुछ निश्चित गुणों तथा वृत्यों का ही समावेश होना चाहिये। शैली जो कवि-प्रतिभा की प्रतीक है स्वभावतः उन्मुक्त तथा निर्बाध है।

इसके पश्चात् कुन्तक की वक्रोक्ति तथा विश्वेश्वर के चमत्कारवाद पर थोड़ा सा विचार कर लेना चाहिये। वक्रोक्ति की परिभाषा करते हुए कुन्तक ने इसे 'वैदग्ध्यभङ्गीभणिति' कहा है—अर्थात् वाक्‌वैदग्ध्यपूर्ण विचित्र उक्ति। इसतरह यह चमत्कारवाद के बिल्कुल निकट आ जाती है और इसका निर्देश भी परिभाषा में स्पष्ट है—'लोकोत्तर-चमत्कारकारि-वैचित्र्यसिद्धये। दोनों वादों का अवसान रस में होता है और अन्त में दोनों अपने व्यापक रूप में काव्य के सभी अंगों को समेटने के प्रयत्न में स्वयं 'ध्वनि-रस' सिद्धान्त में विलीन हो जाते हैं।

गुणं रीति रसं वृत्तिं पाकं श्यामलं कृतम्।
सप्तैतानि चमत्कारकारणं ब्रुवते बुधः॥

वास्तव में इनकी विशिष्टता अपने सकुंचित रूप ही में अधिक प्रखर प्रतीत होती है और हम इनकी संयुक्त व्याख्या कुछ उदाहरणों द्वारा इसी रूप में करेंगे। वक्रता और चमत्कार साररूप में अंग्रेजी के 'विट्' (Wit) में विद्यमान हैं और 'Wit' का रूप, कलेवर भी वैविध्यपूर्ण ही रहा है। उक्ति-विदग्धता, शब्दरूप, अर्थरूप, तथा उभयरूप में पाई जा सकती है जिनका अन्तर उदाहरणों द्वारा ही स्पष्ट हो सकता है। शब्दविदग्धता में कोई साधारण अथवा परिचित वस्तु अनूठे शब्दों में चित्रित की जाती है—जैसे सूरदास का श्री राधिका जी के शरीर का वर्णन—

अद्भुत एक अनूपम बाग।
जुगल कमल पर गज क्रीडत है तापर सिंह करत अनुराग। आदि

इसका समानान्तर हम एलिजाबेथ-युगीन काव्य में पाते हैं जहाँ कवि तथा 'सानेट' लेखक अपने प्रेयसी की रूप-सज्जा प्रस्तुत करने के लिए तमाम प्रकृति तथा रत्न-भाण्डारों को रिक्त-प्राय कर देते थे। इसीका वैज्ञानिक अथवा शास्त्रीय रूप 'जान डन' (John Donne) की मेटाफिजिकल विट (Metaphysical wit) के रूप में विद्यमान है, जिसमें प्रकृति-क्षेत्र छोड़कर विज्ञान, गणित,

चिकित्सा-शास्त्र तथा भूगोल इत्यादि अकाव्यात्मक क्षेत्रों से उपकरण एकत्र करके प्रेम तथा प्रेमिका के लिए अलंकार प्रस्तुत किये गये हैं। हमारे यहाँ यह वक्रता अथवा चमत्कार शास्त्र-कवियों में भरा पड़ा है। अंग्रेजी में आगे चलकर १८ वीं शताब्दी की विट् (wit) के दर्शन होते हैं जिसका वर्णन सभी विचारकों ने किया हैं, परन्तु भिन्न-भिन्न रूप में। Addison ने ट्रू विट (True wit) तथा फाल्स विट (False wit) का अन्तर दिखलाते हुए इस तथ्य का विस्तृत विवेचन किया है। उनके मतानुसार वास्तविक विट (wit) में दो वस्तुओं का साम्य इस प्रकार लक्षित किया जाता है कि उसमें चमत्कार ध्वनि पैदा होती है। जैसे कोई सन्तप्त प्रेमी कहता है कि उसकी प्रेयसी हिम के समान धवल है और आह ! हिम के समान ही शीत-हृदया (Cold) भी है। फाल्सविट को उन्होंने कल्पना का विलास ही माना है जिसमें प्रेमी प्रेम के प्रतिमेय, अग्नि, के अभिधार्थ को ग्रहण करके विरहज्वाला में जलता है जिसको उसकी आहें प्रज्वलित करती हैं और आँसुओं की झड़ी भी शमन करने में असमर्थ रहती है, इत्यादि।

इस तरह का वाक्-चमत्कार अथवा कल्पना-विलास तो प्रेमसाहित्य का सर्वदेशीय अंग ही हो गया है। हमारे रीतिकालीन कवियों की नायिका तो उसासों के हिंड़ोले पर झूलती ही रहती है और संस्कृत कवि की विरहिणी नायिका भी सूखकर इतनी हल्की हो गई है कि उसकी सखी उसके उड़ जाने के भय से पलक भी गिराना श्रेयस्कर नहीं समझती।

उद्धूयेत् नतभ्रूपक्ष्मनिपातोद्भवैः पवनैः।
इति निर्निमेषमस्या विरहवयस्या विलोकते वदनम्॥

उर्दू के 'आशिके नामुराद' का तो कुछ कहना ही नहीं है, वह तो हिज्र के गम में घुल-घुलकर बिस्तर के जूं हो जाते हैं और चश्मा लगाने पर भी उनका पता नहीं चलता।

इन्तहाये लाग़री से जब नज़र आया न मैं
हँस के वे कहने लगे बिस्तर को झाड़ा चाहिये।

प्रेम-काव्य के बाहर भी कल्पना—नटी अपना कौतुक दिखलाती ही रहती है और वर्ड्सवर्थ की 'Poems of Fancy' इसके सबल प्रमाण हैं। इस क्षेत्र में प्रायः अर्थ-भङ्गी ही चमत्कारिक होती है और किसी परिचित तथ्य की अनूठी व्याख्या की जाती है—जैसे एक संस्कृत कवि ने शिव के पास अन्नपूर्णा की उपस्थिति की अनिवार्यता की व्याख्या करते हुए कहा है।

स्वयं पञ्चमुखः पुत्रौ गजाननषडाननौ।
दिगम्बरः कथं जीवेत् अन्नपूर्णा न स्यात् गृहे॥

कामदेव (Cupid) की नेत्रहीनता का शेक्सपियर की एक नायिका ने इस तरह समाधान किया है 'Love looks not with eyes but with the mind, hence is young Cupid painted blind. गोस्वामी जी ने सीता जी के अनुपम सौंदर्य का एक चमत्कार-पूर्ण तर्क द्वारा प्रतिपादन किया है:—

जन्मसिंधु पुनि बन्धु विष दिन मलीन सकलंक ।
सिय मुख समता पाव किमि चन्द्र वापुरो रंक ।।

सीधे शब्दों में अर्थ वक्रता का एक सुन्दर उदाहरण जार्ज हरबर्ट की 'Creation' नामक कविता में है; जहाँ मनुष्य के निर्माण-काल का चित्र है। ईश्वर मनुष्य की रचना कर रहे हैं और संसार की सभी विभूतियाँ एक बड़े ग्लास में रक्खीं है जिसको वे नव-निर्मित जीव के ऊपर ढाल देना चाहते हैं। अन्त में केवल 'शान्ति' पेंदे में रह जाती है और ईश्वर रुक कर सोचते हैं—"यदि इस प्राणी को शान्ति भी दे दी जाय तब तो वह अपने भौतिक वैभवों से सन्तुष्ट होकर अपने कर्ता को एकदम भूल ही जायगा, इसलिए उसके वैभव के साथ अशान्ति का संयोजन ही उसके लिए श्रेयस्कर होगा; क्योंकि यदि अपनी इच्छा से वह अपने ईश्वर का ध्यान करने के लिए उत्सुक न भी होगा, तो भी संसार–सुखों से ऊब-कर तो भगवत्शरण में उसका दौड़ते हुए आना नितान्त संभाव्य है।"

परन्तु डॉ० जॉन्सन ने ठीक ही कहा है कि वक्रोक्ति अथवा 'wit' की विशेषता यही है कि वह स्वाभाविक होते हुए भी नई जान पड़े और उसको सुननेवाला आश्चर्यमय आनन्द से प्रेरित होने पर भी यह सोचने के लिए बाध्य हो कि उसको इस तरह का विचार अब तक कैसे अप्राप्य अथवा ध्यानागोचर रहा।[६०]

इस तरह की उक्ति विद्युत के प्रकाश के समान नया भावोन्मेष पैदा करती है और आनन्द के साथ ही साथ तथ्य के किसी नये पहलू का बोध भी कराती है। इस कोटि में रीतिकालीन प्रसिद्ध दोहा आ सकता है:—

अमिय हलाहल मदभरे श्वेत श्याम रतनार
जियत मरत झुकि झुकि परत जेहि चितवत इक बार।

इसी तरह शेक्सपियर की उन्माद कारिणी नायिका, 'क्लयोपैट्रा' (Cleopatra) कहती है Eternity was in our lips and eyes' और मरणासन्न अवस्था में भी नागिन के विषाक्त दन्त-प्रहारों का वर्णन करते हुए अपने स्वभाव के सारभूत तथ्य का अनोखा उदाहरण प्रस्तुत करती है:—

---

६० Wit—which is at once natural and new, that which, though not obvious, is acknowledged to be just...which he that never found it wonders how he missed it.

The stroke of death is like the lover's pinch
Which hurts and is desired.

परन्तु इस बात को सदैव स्मरण रखना चाहिये कि इस प्रकार की वक्रता या विदग्धता का काव्य-पाक में चटनी के समान ही रहना उपयुक्त है, इसको व्यंजन समझ कर इससे पेट भरने की इच्छा करने का अर्थ है उन रसिको की श्रेणी में नाम लिखाना जो 'करि फुलेलको आचमन मीठो कहत सराहि ।'

ध्वनिवाद

काव्योक्ति की विशिष्टता का अन्वेषण ध्वनिवाद में ध्येय-सिद्धि प्राप्त करता है; क्योंकि शब्दार्थ-रसध्वनि ही कवि-विदग्धता की पराकाष्ठा है। यह एक मौलिक तथ्य है जिसको पूर्व तथा पश्चिम के सभी मर्मज्ञों द्वारा मान्यता प्राप्त है[६१] अन्तर केवल इतना ही है कि पूर्व के वैज्ञानिक विचारकों ने इसके भेदोपभेदों का उल्लेख करके इसे भी सीमाबद्ध करना चाहा है, परन्तु पश्चिम के समीक्षकों ने इसे केवल व्यञ्जित करना ही उचित समझा है। इस प्रसंग में डा० दासगुप्त का एक कथन स्मरण होता है, "हमारे यहाँ संस्कृत आलंकारिक······नायक-नायिका के स्वरूप, नट-नटी के कार्य-व्यवहार, छन्द-विधान, विदूषक का कर्तव्य, दोष या गुण-गणना और इसकी अवस्थिति के संवंध में निश्चित सूची देकर हीनप्रतिभा वाले अनेक कवियों के मुँह पर ताले लगा दिये हैं।[६२]"

इस संबंध में उन्होंने 'प्लेटो' तथा 'कोलरिज' के तद्विरोधी कथनों का भी निर्देश किया है। कोलरिज ने ठीक ही कहा है कि काव्य-संबंधी कोई भी ऐसा नियम नहीं है जो पाठक तथा कवि के लिए बंधन का काम न करे, यदि काव्य

[६१] The poet speaks to us of one thing but in this one thing there seems to lurk the secret of all. He said what he meant, but his meaning seems to beckon away beyond itself, or rather to expand into something boundless which is only focussed in it; something also which we feel would satisfy not only the imagination but the whole of us; that something within us and without ... This all—embracing perfection cannot be expressed in poetic words or words of any kind...but the suggestion of it is in much poetry, if not all, and poetry has in this suggestion, this meaning, a great part of its value,
Bradley : *Oxford Lectures*. Page 26-27.

[६२]. देखिये—'सौन्दर्य-तत्त्व'। पृष्ठ १५०-१५१।

के ऊपर बाहर से नियम का आरोप किया जाता है तो कविता अपनी सत्ता खोकर एक मशीनी कला-मात्र रह जाती है।[६३] डा० डे ने भी ठीक कहा है कि संस्कृत काव्य-शास्त्री वैज्ञानिकों के समान ही निश्चित नियम बनाकर काव्य-रूपों का स्पष्टीकरण करना चाहते थे।[६४] प्राचीन यूनानी किंवदन्ती है कि प्रेम की देवी वीनस (Venus) के स्वामी ने उसके सौंदर्य तथा सतीत्व को सुरक्षित रखने के लिए सूक्ष्म लौहतन्तुओं का एक जाल तैयार किया था जिससे उसके रूप-सुधा के लोलुप-प्रेमी उसीमें फँसकर रह जायँ और उसके शरीर का स्पर्श भी न कर पावें। ध्वनिवाद के सबल तथा प्रमुख स्तम्भ आनन्दवर्धन तथा उनके लब्ध-प्रतिष्ठ टीकाकार अभिनव गुप्त हैं और इस 'वाद' की विशद व्याख्या तथा व्यापक और स्थायी प्रसिद्धि का श्रेय इन्हीं को है। ध्वनिवाद का मूल सिद्धान्त इस तथ्य पर आश्रित है कि कवि के भावों की समुचित अभिव्यक्ति केवल अभिधा और लक्षणा के द्वारा ही संभव नहीं है, उनसे तीव्रतर शक्ति की अपेक्षा है जो शब्दों की प्रकाशन-क्रिया का अभिवर्द्धन करके भावों को यथासंभव प्रखर तथा आस्वाद्य बना सके। कवि अकथनीय भावों का रूपाभास कराना चाहता है और उसको शब्दों की अलौकिक तथा रहस्यमयी शक्ति का आश्रय वांछनीय तथा अत्यावश्यक है।

काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवेः पुरा।
क्रौञ्चद्वन्द्ववियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः॥

'ध्वन्यालोक'कार ने वाच्यार्थ से ध्वनित अर्थ को प्रतीयमान अथवा व्यंग्यार्थ की संज्ञा प्रदान की है और इसको काव्यात्मा मानकर अंलकार, रीति इत्यादि को काव्य-शरीर माना है जिनके स्वाभाविक सौष्ठव प्रतीयमानरूपी लावण्य के साधक होते हैं और उस लावण्य से रहित होने पर निरर्थक सिद्ध होते हैं:—

प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्।
यत्तत्प्रसिद्धा वयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवाङ्गनासु॥
यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ।
व्यङ्क्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरभिः कथितः॥

---

६३ 'What rule is there which does not leave the reader at the poet's mercy and the poet at his own ? Could a rule be given from without, poetry would cease to be poetry and sink into a mechanical art.

६४ That the art of poetry can be systematised, after the method of positive sciences, formed one of the fundamental postulates of Sanskrit Poetics from the very beginning.

S. K. De : *Op. Cit* – Introduction – page 4.

इस अर्थ-ध्वनि के तीन स्थूल रूप हैं—वस्तुध्वनि, अंलकारध्वनि, रसध्वनि।

अब हमें परम्परागत ध्वनि-विवेचन की पद्धति छोड़कर स्वतंत्ररूप से कवि की इस अलौकिक शक्ति की व्याख्या करनी पड़ेगी; इससे 'पिष्टपेषण' के दोष से मुक्ति प्राप्त होगी और व्यञ्जना-व्यापार का अधिक स्पष्टीकरण होगा।

(१) हमारा विवेचन शब्दों से आरंभ होगा जिनमें ध्वनि का साधारणतम रूप उनकी दो मुखी अर्थ-शक्ति है अर्थात् एक शब्द के दो या अधिक अर्थ हो सकते हैं, जिससे वक्ता उनका एक अर्थ लेता है, परन्तु श्रोता दूसरा अर्थ और इस तरह कथापकथन में रमणीयता आती है। हिन्दी में इसका सर्व-प्रसिद्ध उदाहरण कृष्ण राधिका संलाप है—'खोलो जी किवाँर तुम को हौ एतीवार'। अंग्रेजी में इसे 'पन' (pun) या क्विबलिङ्ग (Quibbling) कहते हैं और इसके असंख्य उदाहरण शेक्सपियर में उपलब्ध हैं और उनकी बहुत सी कृतियों में इसका गम्भीर रूप भी प्राप्त है—जैसे जूलियस सीजर में 'सिसरो' (Cicero) के संबंध में कहा गया है—'His silver hair will purchase us good opinion। आगे चलकर मार्क ऐन्टनी सीजर के शव पर विलाप करते हुए कहता है कि संसार एक महान कानन था जिसमें तुम hart (deer) (or heart) हृदय के समान थे। इसका प्रयोग अनेक रूपों में हो सकता है और कभी-कभी चमत्कार के साथ ही गम्भीर तथ्य की अभिव्यक्ति' होती है। इलियट' की पंक्तियों पर विचार कीजिये:—

The Word without a word, the Word within
The world and for the world;
Against the world the unstilled world still whirled
About the centre of the silent Word.

इसका जटिलतर रूप 'Ambiguity' अथवा अर्थ-भंगिमा कहलाती है जिसका विशुद्ध और जटिल विवरण 'एम्पसन' (Empson) की *Seven Types of Ambiguity*' तथा '*Structure of Complex Words*' आदि कृतियों में द्रष्टव्य है।

एक अर्थ के सूचक कई शब्दों में से कवि जब सबसे उपयुक्त शब्द का चयन कर पाता है तो उसमें 'ध्वनि' शक्ति प्रतिष्ठित हो जाती है जैसे *Breathes* there the man with soul so dead या Absent thee from felicity a while and in this harsh world *draw thy breath* to tell my story' अर्थात् 'स श्वसन्नपि न जीवति। इसी तरह वर्ड्सवर्थ का 'A *poet* could not but be gay' ध्वनित करता है कि सौन्दर्य तथा आनन्द से हर्षाकुल होना कवि का मुख्य धर्म है।

(२) शब्द का व्यंग्यार्थ प्रायः सन्दर्भसापेक्ष होता है—अर्थात् एक ही शब्द कई सन्दर्भों में प्रयुक्त हो सकता है, एक ही काव्य में, अथवा कवि के अन्य काव्यों में अथवा अन्य कवियों के काव्यों में। जैसे, रामचरितमानस में भरत जी पिता-मरण के पश्चात् अयोध्यापुरी लौटते समय नाना अपशकुनों का सामना करते हैं और उनसे जनित भावों का अपने मनोविकार और व्याधि के रूप में वर्णन करते हैं। अन्त में जब राज्य करने का प्रस्ताव उनके समक्ष उपस्थित किया जाता है तो पुराने भावों का पुनरावर्तन प्रायः उन्हीं शब्दों में होता है :—

ग्रह ग्रहीत पुनि वात बस तेहि पुनि बीछी मार
ताहि पिआइ वारुनी कहहु काह उपचार।

अथवा

'बिनु देखे न होय परतीती बिनु परतीति होय नहिं प्रीति।
तो—'बालिबधन कर भइ परतीती मिटा विषाद बढ़ी उरप्रीती॥

अंग्रेजी में 'जॉन कीट्स' (John Ketas) की प्रसिद्ध पंक्तियों पर विचार कीजिये :—

My heart *aches* and a drowsy numbness pains/My sense, as though of Hemlock I had drunk. यहाँ 'aches' की ध्वनि वर्ड्सवर्थ के 'aching joys and giddy raptures' तक पहुँचती है और वर्ड्सवर्थ के पीछे मिल्टन (Milton) का 'Laughter holding both his sides' है। इस तरह, आनन्द की चरम सीमा में निहित शरीर-पीड़ा का भाव परिलक्षित होता है। ऐसे ही हेमलॉक (Hemlock) का संबंध सुकरात की मृत्यु से है जिसके पीने के पश्चात् मृत्यु का प्रसार धीरे-धीरे पैर से आरंभ होकर शिर तक पहुँचा और यह क्रम निद्रा के आगमन के समय प्रायः अनुभव किया जाता है। इसलिए निद्रा को मृत्यु की सहोदरा कहते हैं। मिल्टन (Milton) इत्यादि विद्वान कवियों के हर शब्द के पीछे इस तरह की ध्वनि है और इसीलए उनकी कविता का पूर्ण आस्वादन परिपक्व विद्वत्ता का अन्तिम फल माना गया है। 'इलियट' इत्यादि आधुनिक कवियों में तो इसकी चरम सीमा दिखाई पड़ती है और इसलिये उनकी कविताओं में जटिलता आगई है।

इस ध्वनि की जटिलता उस समय बढ़ती है जब कवि संदर्भगत शब्दों का रूप-परिवर्तन करके उन्हें नया रूप देता है और इस तरह उनमें पुराने अर्थ के साथ-साथ नये अर्थ का पुट आ जाता है। इसके उदाहरण स्वरूप हम 'इलियट की प्रसिद्ध पक्तियाँ ले सकते हैं:—

Keep the Dog far hence, that is friend to man or with his nails he will dig it up again' जो वेबस्टर (Webster) की एक विशिष्ट पंक्ति का रूपान्तर है—'Keep the wolf far hence that is enemy to man'.

(३) शब्दार्थ व्यंग से हम वाक्यार्थ ध्वनि पर आते हैं जिसमें वस्तु तथा अलंकार दोनों सम्मिलित किये जा सकते हैं और जो लौकिक तथा अलौकिक, अविचित्र तथा विचित्र दोनों प्रकार की हो सकती है।

(अ) साधारण शब्दों का अभिधार्थ भी वक्ता की मनोदशा या भाव के वशीभूत मुख्यार्थ के अतिरिक्त व्यंग्यार्थ का उत्पादन कर सकता है। इसका सबसे प्रभावशाली उदाहरण जूलियस सीजर (Julius Caesar) में एन्टनी(Antony) का भाषण है जिसमें आरंभ के प्रत्येक वाक्य साधारण होते हुए भी व्यंग्यार्थ से परिपूर्ण हैं और Brutus is an honourable man' श्रोताओं के बदलते हुए भावों का 'थरमामीटर' है।

(अ) परन्तु प्राय: शब्दार्थ अभिधा को छोड़कर विलक्षण अर्थ का द्योतन करते हैं और इस तरह 'विचित्र ध्वनि' का आविर्भाव होता है। जैसे:—
For he on *honey-dew* hath fed and drunk the *milk of paradise*
यहाँ टेढ़े शब्दों का अभिधार्थ निरर्थक है परन्तु इनका विचित्र अर्थ दैवी प्रेरणा का द्योतक है जो कवि को जादूगर बनाती है। इसी तरह कभी-कभी शब्द किसी ऐसे संदर्भ में प्रयुक्त होते हैं जो उनके अभिधार्थ का विरोधक है और इस विरोध से एक नया भाव अभिव्यञ्जित होता है। उदाहरण के लिए Dryden के प्रसिद्ध व्यंग को ले लीजिये:—

Shadwell never *deviates* into sense
His *genuine* midnight admits no ray,

(ब) अलंकार ध्वनि के अन्तर्गत 'Irony' 'Insinuation' इत्यादि आते हैं। इसीमें पोर्शिया (Portia) का प्रसिद्ध कथन भी सम्मिलित है :—

Let me give you light but let me not be light
For a light wife makes a heavy husband.

इसीमें 'अन्डरस्टेटमेंट' (Uuderstatement) भी आता है जिसमें साधारण शब्दो में गूढ़तम भाव व्यंजित किये जाते हैं—जैसे 'इत्यादि' का कलात्मक प्रयोग या पोप (Pope) का 'Talking laughing, ogling and *all that.* पोप का एन्टी-क्लाइमेक्स (anti-climax) भी इसी के अन्तर्गत है क्योंकि

इसमें कभी-कभीदो विरोधी भावार्थक शब्दों द्वारा उत्तम तथा निम्न कोटि की वस्तुओं का समीकरण करके किसी गम्भीरार्थ का संकेत किया जाता है जैसे :—

Either the nymph will break Diana's law
Or a frail China jar receive a flaw
Lose her heart or necklace; stain her honour or silk-brocade. यहाँ विशिष्ट समीकरण विलासी स्त्रियों की नैतिक मूल्यों के प्रति उदासीनता का द्योतक है। इसीके विशिष्ट रूप में वक्ता की वाक्य-अपूर्णता भी सामिल है। जैसे शेक्सपियर के Othello में नायिका का पिता खलनायक इयागो (Iago) को धूर्त इत्यादि शब्दों से संबोधित करता है। इसके उत्तर में इयागो कहता है 'you are——a senator' वाक्य की यह रूपभंगी तिरस्कारात्मक भाव व्यंजित करती है। इसी तरह 'कारलाइल' (Carlyle) ने अपने प्रसिद्ध लेक्चर 'हीरो ऐज ए मैन आव् लेटर्स *Hero as a Man of Letters* का अन्तिम वाक्य अधूरा छोड़ दिया है। उन्होंने साहित्यकार की समता जावा के उन बड़े आकार के जुगुनुओं से की है जिन्हें वहाँ के धनिक लोग लोहे की कीलों से विद्ध करके दीपक का रूप देते हैं। 'कारलाइल' कहते हैं—उन प्रकाशमय प्राणियों की जय हो जो इतनी यातना सहकार भी प्रकाश देते हैं परन्तु——— आशय यह है 'परन्तु निर्दय धनिकों का कुकृत्य किन शब्दों में वर्णन करें।

(४) व्यंग्यार्थ का आभास पूरे पद्यखंड अथवा काव्य या निबंध में व्याप्त हो सकता है, जहाँ पर दो अर्थ, प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष, समानान्तर चलते हैं। हमारे यहाँ इसके असंख्य उदाहरण हैं। जैसे एक भिक्षुक सड़क पर यह विलाप करता हुआ चल रहा है:—

या पाणिग्रहलालिता सुसरला तन्वी सुवंशोद्भवा
गौरी स्पर्शसुखावहा गुणवती नित्यं मनोहारिणी।
सा केनापि हृता तया विरहिता गन्तुं न शक्नोम्यहम्

इस पर एक व्यक्ति पूछ बैठता है—किं भिक्षोः ! तव कामिनी ? तब भिक्षुक उत्तर देता है 'नहि-नहि प्राणप्रिया यष्टिका' ।। यहाँ पद के समस्त विशेषण 'स्त्री' तथा 'छड़ी' दोनों के लिए उपयुक्त हैं।

अंग्रेजी में इस तरह के उदाहरण अपेक्षाकृत कम हैं यद्यपि एक दूसरे रूप में इनका बाहुल्य भी है। तत्सम कविताओं के रूप में हम 'टेनिसन्' (Tennyson) का 'क्रासिग द बार' (Crossing the Bar) तथा 'ब्राउनिंग' (Browning) का प्रास्पिके (Prospice) ले सकते हैं। दोनों का विषय है 'मृत्यु' और कवियों की तद्विपयक प्रतिक्रिया। टेनिसन का आशय है कि जब मेरा पोत अपनी अन्तिम

यात्रा पर अपने जन्मस्थान की ओर रवाना हो उस समय संध्या की पूजा की घंटिया वज रही हों, समुद्र शांत, नीरव, स्निग्ध हो, तूफान की आशंका न हो ओर न विदाई के समय का क्लेश। दूसरा कवि वीर सैनिक है और कहता है कि अपने पर्वतारोहण के अन्तिम चरण में जब हिमपात आरंभ होगा और घने अंधकार में कुहरे के कारण कण्ठ अवरुद्धहोने लगेगा उस समय भी मुझे भय का अनुभव कदापि न होगा। रास्ते के अन्तिम छोर पर भयंकर प्रतिद्वन्द्वी, कराल काल, साकार खड़ा होगा, परन्तु क्या परवाह, समस्त जीवन तो युद्ध ही में बीता है, एक संग्राम और सही-अन्तिम और गुरुतम! ध्यान युद्ध की भीषणता पर नहीं, इसके पुरस्कार पर होना चाहिये—एक ही मिनट में अंधकार का विलयन तथा झंझावात का पलायन होता है, फिर तो शान्ति और प्रकाश तथा प्रिय के दिवंगत आत्मा से आत्मा का सम्मिलन।

प्रतीकवाद (Symbolism)

यूरोपीय साहित्य तथा समीक्षा में 'ध्वनि' के एक विशिष्ट प्रकार के सम्बन्ध में जिसकी कि संज्ञा प्रतीकवाद है, बहुत कुछ कहा और लिखा गया है और उसका एक संक्षिप्त विवेचन इस प्रसंग में अनुपयुक्त नहीं होगा। वैसे तो प्रतीक-ध्वनि काव्य, दर्शन तथा धर्म का सदैव एक परिचित अंग रही है, परन्तु इसका अलग से विवेचन करके एक 'वाद' का रूप देने और इसको काव्यशैली का एक मुख्य अंग वनाने का श्रेय १९ वीं शताव्दी के कतिपय फ्रांसीसी कवियों को है जिनका प्रभाव आज के साहित्य में प्रायः सार्वभौमिक सिद्ध हुआ है। प्रतीकवाद का मूल सिद्धांत Correspondence या अनुरूपता पर अवलंबित है जिसके अनुसार संसार की भौतिक वस्तुएँ आध्यात्मिक तथा अकथनीय विचारों अथवा भावों का माध्यम हो सकती हैं और इसी प्रकार हमारे आत्मिक अनुभवों की अभिव्यक्ति परिचित वस्तुओं के माध्यम से संभव है। जैसे हमारे यहाँ रसतत्त्व को ही लें लीजिये जिसकी अभिव्यंजना के लिए पाक-शास्त्र का आश्रय लेना पड़ा और व्यंजन-रस इसका प्रतीक हुआ।

रहस्यवादियों ने ब्रह्मास्वाद का निर्देश करने के लिए प्रेमी-प्रेमिका अथवा पति-पत्नी के प्रणय तथा काम-केलि का ही अवलम्बन लिया जहाँ पर उस परमानन्द का एक क्षणिक आभास हो जाता है। इसलिए गोस्वामी जी को कहना पड़ा :—

कामिहिं नारि पियारि जिमि लोभिहिं जिमि प्रिय दाम।
तिमि रघुनाथ निरन्तर प्रिय लागहु मोहिं राम॥

देखने में तो प्रतीकवाद उपमा तथा रूपक ही का एक विशिष्ट अंग है, परन्तु इसमें द्वैतभाव बिलकुल लुप्त हो जाता है और वस्तु ही सामने रहती है, परन्तु

उसके चतुर्दिक अर्थ-ध्वनि की सूक्ष्म तरंगें भी विद्यमान रहती है। जैसे 'बिन्दु में सिन्धु समान को अचरज कासों कहौं' यहाँ 'बिन्दु' और 'सिन्धु' आत्मा तथा परमात्मा के प्रतीक हैं। मनुष्य-जीवन से सम्बन्धित वस्तुएँ धीरे-धीरे उसके भावों से समन्वित हो जाती हैं और बिना किसी कठिनाई के उसकी अनुभूतियों का अंग हो जाती हैं, इसलिए उन्हीं को आश्रय मानकर गूढ़तम अनुभवों का अभिव्यञ्जन होता है। जैसे मनुष्य अपने जीवन में एक दृश्य निरन्तर देखता आया है, वह है आकाश का पृथ्वी के ऊपर झुका रहना तथा अपने प्रकाश, उष्णता तथा जल से उसको उर्वर बनाना और अन्त में उसके गर्भ से वनस्पतियों तथा औषधियों का उद्भव कराना। फलतः मनुष्य ने सहज ही आकाश और पृथ्वी पर पितृत्व तथा मातृत्व की भावना आरोपित कर दी। यही बात हवा, पानी, अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, चट्टान, वृक्ष इत्यादि सभी वस्तुओं के सम्बन्ध में भी घटित हुई और सभी उसके भावों के प्रतीक हो गये।

परन्तु प्रतीक एक परिचित वस्तु होने के कारण केवल एक गुण का द्योतक नहीं माना जा सकता, क्योंकि एक वस्तु में कई विरोधी व्यापारों का समन्वय हो सकता है! जैसे पानी है, जो शुद्ध भी करता है और मनुष्य तथा उसके उपकरणों को नष्ट भी कर सकता है, इसलिए भिन्न संदर्भों में उसका भिन्न अर्थ होगा। यही बात अग्नि, चट्टान और पदार्थों के सम्बन्ध में भी लागू हो सकती है।

इस तरह प्रतीकों का उपयोग काव्य तथा धार्मिक क्षेत्रों में दीर्घकाल से होने के कारण उनका परम्परा बद्ध हो जाना संभव हुआ और उस परम्परा से परिचित व्यक्तियों के लिए उनका व्यंजित अर्थ भी बोधगम्य हुआ। परन्तु १८ वीं शताब्दी के कवियों ने इस परिचित परम्परा को नया मोड़ दिया। कांट (Kant) तथा अन्य आदर्शवादी दार्शनिकों तथा कवियों के लिए वस्तुओं की सत्यता मानव-मन की ही देन थी और इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए 'कोलरिज' ने यह दावा किया कि प्रकृति तो मानव-विचारों का प्रतीक मात्र हैं।[६५]

१९वीं शताब्दी के मध्य तक कवियों तथा साहित्य-मर्मज्ञों को यह भली-भाँति ज्ञात हो गया कि आज की वैज्ञानिक तथा व्यावसायिक सभ्यता कवि तथा उसकी कला के लिए घातक है और आज के पशु-तुल्य जन-समूह का मनोरंजन करने का अर्थ है कला की हत्या करना। उन्होंने अपनी कला का रूप शुद्ध रखने

---

६५ All that meets the bodily sense I deem
Symbolic, one mighty alphabet.
We receive but what we give
And in our life alone does nature live.

के लिए तथा अरसिक जन-समुदाय के प्रति अपनी उदासीनता प्रकट करने हेतु एक ऐसी पद्धति का निर्माण करने का संकल्प किया जो उनके आन्तरिक उच्च भावों का अभिव्यंजन करते हुए एक ऐसी कलात्मक सृष्टि की रचना करे जिसमें समाज-तिरस्कृत कलाकार आत्म-संतोष तथा आत्म-गौरव का पूर्ण अनुभव कर सके। यह प्रयत्न विज्ञान के भौतिकतावाद, आज की दूषित भाषा तथा हृदयहीन जनता के प्रति कलाकार का विद्रोह था। अपने यहाँ के ध्वनिवादियों ने भी चित्र-काव्य को निम्न तथा ध्वनिकाव्य को उच्च माना है; इसी तरह फ्रांस का प्रतीकवाद 'पारनैसियन' (Parnassian) पद्धति के विरुद्ध रहा; क्योंकि उसमें वस्तु के बाह्य रूप का ही चित्रण होता था। यही पद्धति आगे चलकर 'ह्यूम' (Hulme) के बिंबवाद (Imagism) के रूप में प्रकट हुई जिसका मुख्य आग्रह था कि काव्य का प्रत्येक शब्द वस्तुविशेष का सही-सही रूप अंकित करने का प्रयास करे, प्रत्येक शब्द किसी वस्तु का बिंब हो। परन्तु प्रतीकवादियों की धारणा थी कि कवि का काम है वस्तु की आत्मा का अभिव्यंजन करना जो कलाकार के अन्तर्दृष्टि की उपलब्धि है। प्रतीकवाद के प्रथम स्तम्भ 'बोदेलेयर' (Baudelaire) माने जाते हैं जो बाह्य जीवन से कुण्ठित होकर आभ्यन्तरिक जीवन में शरण लेने के लिए बाध्य हुए थे और जिन्होंने मुक्तकण्ठ से घोषित किया कि प्रकृति की सभी वस्तुएँ आध्यात्मिक तथ्यों की प्रतीक मात्र हैं और इस रहस्यमय तारतम्य का अनुसन्धान करने के लिए कवि को ध्यानावस्थित होकर अन्तश्चक्षु की प्रकाश-क्रिया का आश्रय लेना आवश्यक है। अपने काव्यों में उन्होंने तुच्छातितुच्छ वस्तुओं के दृढ़ बाह्यस्तर को भेदकर उनकी विशिष्ट रूपभंगिमा का साक्षात्कार किया है और इसके लिए आज के कवि उनका आभार मानते हैं। आन्तरिक शक्ति का उन्मीलन करने के लिए संगीत का आश्रय आवश्यक हुआ और इन्द्रियों को परम्परा की परिचित लीक से निकालकर नवीनता की ओर अग्रसर करने के लिए उनके स्वाभाविक व्यापारों को भी परिवर्तित करना वांछनीय हुआ। इस तरह से दृष्टि-शक्ति का आरोप श्रवण पर तथा श्रवण का घ्राणेन्द्रिय पर सम्पन्न करना तथा मादक वस्तुओं के सेवन से चेतन-स्तर के नीचे अवचेतन में अवतरण करना तथा स्वप्निल अवस्था का जान-बूझकर उद्दीपन करना इत्यादि परवर्ती प्रतीकवादियों का मुख्य कर्तव्य हो गया। वह तो शब्दों की परम्परागत अभिधा शक्ति को ही निर्मूल कर देना चाहते थे; क्योंकि शब्दों के नवीनीकरण के लिए यह आवश्यक था। 'स्टेफन मलार्मे (Stephane Mallarme) ने अपना समस्त जीवन ही शब्दों के मनन-चिन्तन में समर्पित कर दिया। उनके लिए तो शब्द उस देवमूर्ति के समान थे जिसका आश्रय लेकर साधक अपनी साधना में अग्रसर होता है। इस तरह से काव्य का

सुगठित रूप ही नये अनुभवों का एकमात्र साधन हो गया। ऐसी दशा में भावों को सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप से परिलक्षित कराने के लिए उपयुक्त प्रतीकों का प्रयोग कवि का मुख्य कर्तव्य माना गया, जैसा कि ईट्स (Yeats) ने कहा है :—

God loves dim ways of glint and gleam
To please him well my rhyme must be
A dyed and figured mystery
Thought hid in thought, dream hid in dream.

परन्तु इन कवियों के लिए परम्परागत प्रतीक भी दूषित हो चुके थे। इसलिए उन्होंने व्यक्तिगत प्रतीकों का निर्माण करना आरम्भकर दिया जिनकी कुँजी उन्हीं के हाथ में थी और जिनका कोई एक निश्चित अर्थ भी नहीं था क्योंकि भिन्न-भिन्न संदर्भों में अर्थ-परिवर्तन होता रहता था। इसके लिए उन्होंने सभी उपलब्ध साधनों का प्रयोग किया और विज्ञान, दर्शन, तंत्रशास्त्र तथा मनोविज्ञान के ऐसे पारिभाषिक शब्दों तक का उन्होंने प्रयोग किया है जिनके अर्थ उनके विशेषज्ञ ही समझ सकते हैं। 'ईट्स' (W. B Yeats) ने अपनी निजी वस्तुओं जैसे Tower तथा जापान से प्राप्त Sword को भी बहुमुखी प्रतीकों के रूप में उपयुक्त किया है और पूर्व तथा पश्चिम के अधिकांश रहस्यवादी तथा तान्त्रिक शास्त्रों के प्रतीक ही से संतुष्ट न होकर उन्होंने अपनी एक नई प्रणाली (System) ही खड़ी कर दी और उससे संबंधित प्रतीकों का समावेश बहुत सी कविताओं में किया जिसमें 'Falcon', 'Falconer', ' Full Moon' इत्यादि साधारण उपकरण भी एक विशिष्ट प्रतीक के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। इस तरह प्रतीकवादी कवियों ने काव्य का एक अनोखा भवन खड़ा कर दिया, जिसमें न कोई दरवाजा है और न कोई खिड़की, और जिसका प्रवेश-मार्ग एकदम गुप्त है और उसके उद्घाटन के लिए विशेष प्रयास अपेक्षित है।

हमारे ध्वनिवादी समीक्षक भी इतना मानते थे कि व्यंग्यार्थ तो विशेष प्रतिभाशाली व्यक्ति ही समझ सकते हैं—'पामरप्रभृतयोऽपि वाच्यमर्थमनायासादवबुध्यन्ते; व्यंग्यसंवेदनवैदग्ध्ये तु कतिचिदेवाधिकारिणः।' मम्मट ने ध्वनि की परिभाषा में इसी तथ्य का निर्देश किया है :—

प्रज्ञा वैमल्यवैदग्ध्यप्रस्तावादिविधायुजः।
अभिधालक्षणायोगी व्यंग्योऽर्थः प्रथितो ध्वनेः॥

परन्तु उन्होंने व्यंग्यार्थ को मर्यादा की सीमा के अन्दर ही रखने का उचित आदेश दिया है—मर्यादा है अर्ध-स्फुटित तथा अर्ध-निगूढ़। इसकी व्याख्या एक रसिक काव्य-शास्त्री ने इस प्रकार की है:—

नान्ध्रीपयोधर इवातितरां प्रकाशो
नो गुर्जरीस्तन इवातितरां निगूढः।
अर्थो गिरामपिहितः पिहितश्च कश्चित्
सौभाग्यमेति मरहट्टवधूकुचाभः॥

(४) इस विषयान्तर के पश्चात् हम रस-ध्वनि पर पहुँचते हैं जो कवि-प्रतिभा का विशेष चमत्कार मानी जाती है। इसका अर्थ है उचित शब्दों तथा चित्रों द्वारा रस-संचार कराना। इसकी व्याख्या हम विभावपक्षीय उदाहरणों द्वारा ही करना उचित समझते हैं।

(अ) रसव्यंजना बाह्य प्रकृति अथवा पात्र सम्बन्धी वस्तुओं के सार्थक चित्र-चित्रण द्वारा कलात्मक रीति से संपन्न की जा सकती है। इसका एक उत्तम उदाहरण 'टेनिसन' की Mariana नामक कविता है। इसमें एक पति-परित्यक्ता स्त्री के मृत्यु-तुल्य जीवन का लाक्षणिक वर्णन उपस्थित किया गया है। स्त्री का वर्णन न करके कवि उसके परिवेश का वर्णन करता है। वह एक महल के कमरे में रहती है जहाँ सभी वस्तुओं पर मृत्यु की छाया पड़ी है; सामानों के ऊपर धूल की मोटी तहें हैं; दरवाजे के मूल्यवान् पर्दे रंगहीन पड़े हैं जो मालूम पड़ता है कि छूने मात्र से टूक-टूक होकर गिर पड़ेंगे; किवाड़ों को घुनों ने जर्जर कर दिया है और खुलते समय उनमें से 'चूं-चूं' का शब्द होता है जो चूहों की पग-ध्वनि से मिश्रित होकर जीवन-रव का उपहास करता हुआ प्रतीत होता है। जीवन के सभी व्यापार ठप से हो गये हैं और महल के चतुर्दिक् जो नहर है उसका जल भी गतिहीन है और काई की एक मोटी तह से इस प्रकार आच्छादित है कि किसी तरह भी उसका आभास संभव नहीं है। ऐसे प्रकृति-चित्रण को मनोवैज्ञानिक प्रकृति-दृश्य (Psychological landscape) कहते हैं; क्योंकि उसका प्रत्येक अंग पात्र की मनोदशा का प्रतीक है। आधुनिक काव्य-पद्धति का यह एक प्रसिद्ध अंग हो गया है और इसका विशद उदाहरण 'इलियट' के 'लव साँग आफ् प्रूफ्राक, (Love-Song of Prufrock) से लेकर 'वेस्ट लैंड (Waste Land) तक की सभी कविताओं में उपलब्ध है।

(ब) इसी तरह पात्र की शरीर-भंगिमा का वर्णन करके मनोभावों की अभिव्यंजना की जाती है और हमारे यहाँ नायक-नायिकाओं का वर्णन इसी माध्यम से हुआ है। वात्सल्य-प्रेमविह्वलता का चित्र महाकवि कालिदास ने कण्व के माध्यम से इस प्रकार प्रस्तुत किया है:—

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया
कण्ठः स्तम्भितबाष्प-वृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम्।

वैक्लव्यं मम तावदीदृशमहो स्नेहादरण्यौकसः
जीवन्ते गृहिणः कथं नु तनया विश्लेषदुखैर्नवैः ॥

परन्तु इससे तीव्रतर रस-व्यंजना उस समय होती है जब कवि केवल एक या दो शब्दों ही में मनोदशा का प्रवल प्रभाव पाठकों के मन पर डालकर उन्हें भाव की गरिमा का पूर्ण अनुभव करने के लिए अभिप्रेरित करता है। तुलसी के विदेह भी जानकी की बिदाई के अवसर पर व्याकुल हुए थे, परन्तु वह व्याकुलता केवल एक शब्द द्वारा अभिव्यंजित की गई है :—

सियहि विलोकि धीरता भागी।

जॉन कीट्स (John Keats) ने अपने प्रेम-संतप्त Knight-at-arms की प्रेम-ज्वाला का परिचय उसके मुख-चित्रण द्वारा ही कराया है:—

I see a lily on thy brow with anguish moist and fever-dew
And on thy cheek a faded rose fast withered too.

किसी समय उस मुख पर कुमुदिनी तथा गुलाब की रंगीली आभा रही होगी, परन्तु अब अन्तर्ज्वर के ताप से वह मुरझा कर फीकी पड़ गई है। अपने स्वप्न में वह उस छलनामयी सुन्दरी के अतृप्त प्रेमियों की आत्माओं का दर्शन पाता है, जो death-pale हैं और जिनके मुँह 'with horrid warning gaped wide' मानों उनकी अतृप्त इच्छा मृत्यु में भी समाप्त नहीं हुई और यही दशा स्वप्न देखनेवाले की भी हो सकती है। इसी तरह मानव-जीवन के सामान्य सन्तापों की मर्म-स्पर्शी व्यंजना केवल तीन-चार चित्रों द्वारा हुई है; यहाँ शब्दों की परिचित शक्तियाँ नितान्त अशक्य हैं:—

Here, where men sit and hear each other groan,
Where palsy shakes a few, sad, last grey hairs,
Where youth grows pale and spectre-thin and dies,
Where beauty cannot keep her lustrous eyes
Or new love pine at them beyond to-morrow
Where but to think is to be full of sorrow
And leaden-eyed despair.

'लैम्ब' (Lamb) ने अपने अभिन्न मित्र 'कोलरिज' (Coleridge) के बाल्य-कालीन आशामय रूप की झलक देते हुए उसकी परवर्ती नैराश्य-पीड़ा का इन थोड़े शब्दों में एक हृदय-स्पर्शी तथा वैदग्ध्य-पूर्ण चित्र प्रस्तुत किया है:—

Come unto memory as thou then wert in the day-spring of thy fancy with hope like a fiery column before thee, the

dark pillar not yet turned, Samuel Taylor Coleridge, Logician, Metaphysician and Bard !

'राजा लियर' (King Lear) के क्रोध तथा अभिमान की पराकाष्ठा केवल एक छोटे से वाक्य में निहित है—'Do not stand between the dragon and his wrath.' इसी तरह 'कारडेलिया' (Cordelia) के संचारी भावों का सुन्दर उदाहरण उस वर्णन में पाया जाता है जो उसकी वहनों द्वारा की गई दुर्दशा के फलस्वरूप उसके वृद्ध पिता के पागल हो जाने के समाचार से विक्षिप्त मनोदशा का परिचायक है। जुगुप्सा की तीव्रतम अनुभूति 'हैमलेट' (Hamlet) तथा उसकी विलासिनी माता के संवाद में पाया जाता है जहाँ हैमलेट के कथनानुसार शयन-स्थान ही pig sty तुल्य है और प्रेमोन्माद में विह्वल युगल कीचड़ में लोटते हुए शूकर-शूकरी के समान बतलाये गये हैं।

(स) इस प्रसंग को अधिक तूल न देकर हम इसके एक दूसरे अंग का विचार करना चाहते हैं—यह है शब्द-ध्वनि की रस-व्यंजना शक्ति। काव्य का अन्य ललित कलाओं से घनिष्ठ संबंध होता है, परन्तु संगीत तथा चित्र-कला से तो उसका अटूट संबंध है। इसलिए काव्य का संगीतमय होना एक सर्वमान्य सत्य है और इसकी विशद व्याख्या भी हुई है। यद्यपि पूर्व तथा पश्चिम के काव्य-शास्त्रियों ने इतना स्वीकार किया है कि गद्य भी काव्यात्मक होता है और केवल छन्द-बद्ध होने ही से कोई निबंध उत्तम काव्य की संज्ञा नहीं प्राप्त कर सकता; परन्तु इसके साथ ही साथ यह तथ्य भी स्मरणीय है कि गद्य में संगीत ध्वनि सुव्यवस्थित नहीं होती और न तो छन्द-नियमों के अनुशासन का उस पर कोई नियन्त्रण ही रहता है। जब गद्य-प्रबंध काव्य की संश्लिष्ट स्वर या गतिभंगी से सुसज्जित हो जाता है तो वह काव्य के अति निकट आकर उसी के रूप में विलीन हो जाता है।

कुछ लोगों की धारणा है कि संगीतमयी ध्वनि ही काव्य-चमत्कार की आत्मा है और शब्दार्थ की अनभिज्ञता में भी, इसी के द्वारा काव्यास्वादन हो सकता है। प्रसिद्ध फ्रांसीसी कवि 'मलार्मे' (Mallarme) ने इसीको incantation अथवा मन्त्रवत् चमत्कार की संज्ञा दी थी और उनकी धारणा का अनुमोदन पूर्व तथा पश्चिम के अनेक समीक्षकों ने किया है। आचार्य कुन्तक 'साहित्य' की प्रसिद्ध परिभाषा में इसी तथ्य का निर्देश करते हैं :—

अपर्यालोचितेऽप्यर्थे बन्धसौन्दर्यसम्पदा।
गीतवद् हृदयाह्लादं तद्विदां विदधाति यत्॥

परन्तु प्रो० 'बावरा' (Bowra) ने ठीक ही कहा है कि सर्वोत्तम संगीतमय

तथा व्यंजनापूर्ण ध्वनि भी गायक की प्रतिष्ठा का अपहरण नहीं कर सकती। बहुतों ने 'मलार्मे' (Mallarme) की इस धारणा का समर्थन करने का प्रयत्न किया है; परन्तु उनकी काव्य तथा संगीत के एकीकरण के प्रयत्न की विफलता ही इस अटल सिद्धान्त की सार्थकता की साक्षी है कि शब्द अपने अर्थ से कभी भी विच्छिन्न नहीं किये जा सकते (The unalterable truth that words cannot be divorced from their meanings.) इसी तथ्य को एक समीक्षक ने बड़े सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है जिसका एक अंश यहाँ नीचे उद्धृत है, परन्तु इसके साथ ही साथ काव्य-शास्त्रियों का यह पुराना आग्रह है कि काव्य में संगीत-मयी ध्वनि अर्थानुगामिनी तथा सुनियन्त्रित होनी चाहिये और उसकी तुलना वातावरण की उस रहस्यमयी स्वरलहरी से है जो निरन्तर आभासित होते हुए भी कभी प्रत्यक्ष नहीं होती है। 'मिल' (Mill) ने काव्य तथा वक्तृता का अन्तर बताते हुए ठीक ही कहा है कि वक्तृता स्थूल कानों द्वारा सुनी जाती है, परन्तु काव्य-संगीत तो आभ्यन्तरिक श्रवण-शक्ति से आस्वाद्य होती है।

आजकल इस तथ्य पर मनोवैज्ञानिकों ने काफी अनुसन्धान तथा प्रयोग किया है और उनकी मान्यता का सार यह है कि मानव-चेतना के दो मुख्य भाग हैं--(१) केन्द्रीय चेतना (focal consciousness) तथा (२) बहिरंग चेतना (Marginal consciousness)। जब बहिरंग चेतना किसी तरह एक ओर आकृष्ट करके निष्क्रिय कर दी जाती है तभी केन्द्रीय चेतना किसी विचार तथा भाव में एकाग्र हो सकती है। काव्यानुशीलन में बहिरंग चेतना को प्लावित करने का काम संगीतात्मक ध्वनि का है जिसके फलस्वरूप अन्तरंग चेतना भावार्थों के मर्म में तन्मय होने के लिए मुक्त रहती है। परन्तु इसके लिए यह अत्यावश्यक है कि संगीतमयी स्वरलहरी केवल बहिरंग भाग ही तक सीमित रहे ; क्योंकि उसका अंतरंग चेतना में प्रवेश तो चेतना के दर्पण को धुँधला करके उसकी स्फूर्ति का कुण्ठन कर देगा। अंग्रेजी में प्रसिद्ध-गीति-काव्यरचयिता 'स्विनबर्न (Swinburne) इस तथ्य के सजीव साक्षी हैं।

शब्द-ध्वनि के माध्यम से अर्थ परिलक्षित कराना (sound must seem an echo to the sense) काव्य-शैली का एक सर्वदेशीय तत्व है और पूर्व-पश्चिम के प्रायः सभी कवियों ने इसका किसी न किसी रूप में प्रयोग किया है। इसकी सफलता अक्षरों के मृदु अथवा कर्कश ध्वनियों का अर्थ के अनुसार समन्वय करने पर निर्भर रहती है। वर्णमाला के कुछ वर्ण जैसे ल, म, न, इत्यादि स्निग्ध स्वर के हैं और कुछ जैसे 'ड' 'ट' 'क' इत्यादि कर्कश ध्वनि

के। अतएव भाव के अनुसार उपयुक्त स्वरवाले वर्णों का सामंजस्य ही इस अलंकार का प्राण है।[६६] उदाहरण के लिए कालिदास तथा भवभूति की उद्धरणियों पर ध्यान दीजिये। कालिदास का यक्ष अपने सन्देशवाहक से कहता है—

मंदं मंदं नुदति पवनः सानुकूलो यथा त्वाम्।

परन्तु भवभूति ने युद्ध में भिन्न-भिन्न अस्त्रों के कर्ण-कटु घोष का इस तरह वर्णन किया है :—

झणज्झणितकङ्कणक्वणितकिङ्कणीकं धनु-
र्ध्वनद् गुरुगुणाटनीकृतकरालकोलाहलम्।
वितत्य किरतोः शरानविरतस्फुरच्चूडयो-
र्विचित्रमभिवर्धते भुवनभीममायोधनम्॥

परन्तु यह ध्वनि-चमत्कार मर्यादा के अन्दर ही उपयोगी हो सकता है। निरंकुश होने पर तो यह बिगड़ैल घोड़े के समान अश्वारोही को पथ-भ्रष्ट कराके गर्त में भी गिरा सकता है। इसका संयत उपयोग कवि-कौशल का परिचायक है।

इंगलैण्ड में 'स्पेंसर'(Spenser),'मिल्टन'(Milton) 'टेनिसन'(Tennyson), 'शेली' (Shelley), 'स्विनबर्न' (Swinburne) इस शैली के विशिष्ट प्रतिपादक माने जाते हैं, परन्तु हम केवल टेनसिन् से ही दो-एक उदाहरण देकर आगे बढ़ेंगे।

'Long lines of cliffs *breaking* have left a *chasm.*

यहाँ 'breaking' का ध्वनि-विस्फोट ही अर्थ की ओर बरबस आकृष्ट करता है। इसी तरह 'League-long roller *thundering* on the reef' लम्बी लहरों का मूँगों की दीवाल से टकराकर वज्रध्वनि करने का सुन्दर चित्र प्रस्तुत करता है। इसी उदाहरण से दीर्घ तथा ह्रस्व स्वरों का चमत्कार भी प्रकट होता है। 'वड् सवर्थ' का 'I gazed and gazed' दीर्घ 'a' ध्वनि द्वारा इस आशय को

---

[६६] The beauty of sound exists only in relation to meaning and emerges as an intensification of meanings or of relations among fused meanings. While it is not limited to poetry this element in literary craftsmanship is far more prominent in poetry or the poetical prose. Vernon Lee has rightly said, "It is only in verse that any large and active effects can be obtained by the arrangement of words with reference to their sounds,

Harold Osborne—*Op. Cit.* p. 277.

स्पष्ट करता है कि वह बहुत देर तक दृश्य का अवलोकन करते रहे। इसी तरह मैकबेथ (Macbeth) में शेक्सपियर ने इस आशय को अभिव्यञ्जित करने के लिए कि 'नायक का रक्तरंजित हाथ महासागर के नीले पानी को भी लाल कर देगा' उपयुक्त लम्बे स्वर वाले दीर्घ काव्य-शब्दों का अनोखा चयन किया है— 'multitudinous seas incarnadine'. यहाँ पर dynamic (गतिशील) ध्वनि का अच्छा नमूना मिलता है; क्योंकि ध्वनि की गति यह सूचित करती है कि रक्त की लाली धीरे-धीरे प्रसरित होती हुई अग्रसर हो रही है।

भावों की अभिव्यक्ति के लिए इस अलंकार का पूरे काव्य में सांगोपांग प्रयोग हो सकता है। 'स्पेंसर' का पूरा महाकाव्य, 'फेयरी क्वीन' आदि से अन्त तक ऐसे छन्द में लिखा गया है जिससे ध्वनियों के माध्यम से एक ऐसा संगीतमय वातावरण पैदा होता है जो पाठकों को अर्ध-स्वप्निल दशा में पहुँचा देता है। इसके विपरीत कवि शेली के 'West Wind' में भयंकर वायु-वेग का स्पष्ट अनुभव ध्वनि-प्रवाह से पैदा किया गया है और 'हापकिन्स' (Hopkins) के 'विन्ड होवर' (Windhover) में तो पक्षी के साथ-साथ शब्द भी उड़ते हुए प्रतीत होते है :

I caught this morning, morning's minion,
Kingdom of daylight's dauphin, dapple-dawndrawn Falcon.

इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए हमारे यहाँ वृत्ति-विचार तथा वृत्ति-निरूपण हुआ है और नाट्यशास्त्र में भरतमुनि ने 'सर्वेषामेव काव्यानां वृत्तयो मातृकाः स्मृताः' ऐसा कहकर इस पर अपनी स्वीकृति की मुहर लगा दी है। इनका वर्गीकरण भी मानव-मन की चार मुख्य अवस्थाओं के अनुसार ही हुआ है—

या विकासेऽथ विक्षेपे संकोचे विस्तरे तथा।
चेतसो वर्तयित्री स्यात् सा वृत्तिः······॥

—अभिनवगुप्त

इस तरह विशिष्ट गुणवाली चार वृत्तियों का उदय हुआ—भारती, सात्वती, कैशिकी, आरभटी।

इस विषय में दो बातें विचारणीय हैं—एक तो यह है कि किसी विशिष्ट भाव में भी तीव्रता का न्यूनाधिक विलास अवश्यंभावी है और इस परिवर्तन का प्रतिबिंब वृत्ति के गतिपरिवर्तन में स्पष्ट होना चाहिए जिससे एकरसता (Monotony) का विपर्यय संभव हो सके, क्योंकि एकरसता तो जीवन तथा काव्य में एक समान अरुचिकर सिद्ध होती है—यद्यपि यह भावपरिवर्तन 'आवर्तबुद्बुदतरंगवत्' रहते हुए रस-भंग दोष से सदैव मुक्त होने चाहिए। दूसरी बात यह है कि

कवि की प्रतिभा परम्परागत वृत्तियों के प्रयोग में भी अपनी विशिष्टता का परिचय देती है। अंग्रेजी में 'स्पेंसर' के प्रसिद्ध छन्द (Stanza) का अनेक कवियों ने प्रयोग किया है और प्रायः सभी प्रसिद्ध कवियों ने अपने व्यक्तित्व-गरिमा से नवीनता का पुट देकर उस छन्द की अवर्णनीय शक्ति-संपन्नता का परिचय दिया है। चारों वृत्तियों के अन्तर्गत ही अनेक छन्द-रूपों का आविष्कार संभव है और नये छंदों का आविष्कार और सफल प्रयोग भी कवि-चातुर्य का एक सबल प्रमाण माना जा सकता है।

अंग्रेजी में स्वच्छन्दतावादी कवियों तथा 'टेनिसन' और 'ब्राउनिंग' ने अनेक नये छन्दों का प्रयोग करके अपने कौशल का परिचय दिया है और बीसवीं शताब्दी तो प्रयोगवाद का युग ही है। परन्तु इस प्रयोगवाद के मूल में एक निश्चित धारणा है जिसको 'इलियट' के शब्दों में हम कह सकते हैं कि इतिहास के विभिन्न युगों में संवेदना (Sensibility) का रूप बदलता रहता है और उसके अनुसार छन्द-रीति-परिवर्तन भी कवि-प्रतिभा का मुख्य गुण है।[६७] विज्ञान का युग भाव तथा विचार की जटिलता तथा अपूर्व वैषम्य का समय है जिसमें पुरानी संगीत-लहरी का स्थान मशीन की कर्कशता तथा जन-कोलाहल की बर्बरता ने ले लिया है और कवि का यह दुरूह कार्य है कि इस गतिभंगी का आभास कराते हुए एक नवीन संगीत का आविर्भाव करे।

इन उग्र प्रयोगवादी कवियों ने काव्य के परम्परागत साँचों को तोड़-मरोड़ कर कला की स्वतंत्रता का प्रदर्शन किया है; परन्तु विवेकी कवियों, जैसे 'इलियट', 'आडेन', 'स्पेन्डर', 'ईट्स' आदि ने नवीन, जटिल तथा गतिशील वृत्तियों का प्रयोग करते हुए भी स्वतंत्र पद्य-वाद (Free verse movement) का अनुमोदन नहीं किया। 'पाउन्ड' इत्यादि ने तो पूर्व तथा पश्चिम के प्राचीन छन्दों का शोध करके उन्हें बीसवीं शताब्दी की बहुरंगी विचारधारा का उपयुक्त माध्यम बनाया है।

औचित्यवाद

रस ही काव्य की आत्मा है और शैली, गुण, शब्द, अर्थ, पात्र, भाव, विभाव, अनुभाव, ध्वनि इत्यादि इसके बाह्य रूप के विभिन्न अवयव हैं। इसलिए यह अति आवश्यक है कि काव्य के ये सब बाह्य अंग संयुक्त रूप से एक सुन्दर शरीर के समान हों और यह सुन्दर शरीर उपयुक्त रस से प्राणान्वित हो। इस तरह

[६७] Sensibility alters from generation to generation whether we will or no, but expression is only altered by a man of genius.

औचित्य अर्थात् बाह्याङ्गों का अवयव-अवयवी एकत्व तथा समस्त निबंध की रसानुकूलता काव्य-सौष्ठव की आधारशिला है—

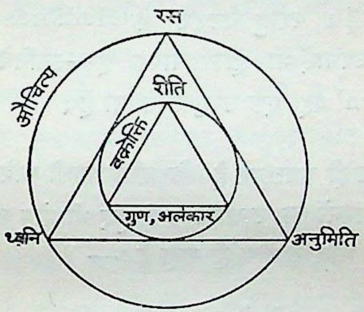
'औचित्यं रससिद्धस्य स्थिरं काव्यस्य जीवितम्।

—क्षेमेन्द्र

इस प्रसंग में महामहोपाध्याय कुप्पुस्वामी का प्रसिद्ध श्लोक तथा तद्विषयक 'ग्राफ' प्रायः उद्धृत किया गया है और हम भी इसकी पुनरावृत्ति उपयुक्त समझते हैं :—

औचितीमनुधावन्ति सर्वे ध्वनिरसोन्नयाः।
गुणालंकृतिरीतीनां नयाश्चानृजुवाङ्मया ॥

इस श्लोक की व्याख्या के रूप में निम्नाङ्कित 'ग्राफ' है :—



कवि के शब्द, अर्थ, गुण, अलंकार, औचित्य के अनुसार ही सफल तथा प्रभावशाली सिद्ध होते हैं। औचित्य-च्युत होने पर तो गुण भी दोष हो जाता है। औचित्य काव्य का सर्वाङ्गीण गुण है और इसकी महत्ता को नाट्यशास्त्र के जनक भरतमुनि ने साग्रह प्रतिपादित किया है :—

वयोऽनुरूपः प्रथमस्तु वेषो
वेषानुरूपश्च गति-प्रचारः।
गतिप्रचारानुगतं च पाठ्यं
पाठ्यानुरूपोऽभिनयश्च कार्यः ॥

अलंकारवादियों ने भी काव्यालंकृति को औचित्य से नियन्त्रित कर दिया है—अलंकार उचित स्थान पर ही रहते हुए शोभाकार्य संपन्न कर सकते हैं, अन्यथा रूप-भंगी का हास्यास्पद कारण होते हैं। इसके लिए सर्व-परिचित कथन निम्न-श्लोक में है :—

कण्ठे मेखलया नितम्ब-फलके तारेण हारेण वा,
पाणौ नूपुरबन्धनेन चरणे केयूरपाशेन वा।

शौर्येण प्रणते रिपौ करुणया नायन्ति के हास्यताम्,
औचित्येन विना रुचिं प्रतनुते नालंकृतिर्नो गुणाः ॥

पश्चिम के समीक्षकों ने अलंकार के औचित्य के अतिरिक्त दो अन्य बातों का भी विचार किया है—पहला यह है कि अलंकार कृत्रिमता से मुक्त हों और यथा-शक्ति प्रत्यक्ष न रहकर प्रच्छन्न ही रहें तो हितकर होगा। दूसरे, अलंकार भी भावों या विचारों—उत्तम, मध्यम, निम्न—के अनुसार ही रूप-परिवर्तनशील हों। जैसे शेक्सपियर के 'हैमलेट' में अशान्तिपूर्ण रात्रि के बाद प्रातः की लालिमा विशेष सुखकर प्रतित होती है, इसलिये 'Look the morn in russet mantle clad walks over the dew of yon eastern hills' इस विश्रान्ति का उपयुक्त प्रतीक हैं। परन्तु 'बटलर' के Hudibras का स्थायी हास्य होने के कारण उसकी उपमाएँ भी हास्योत्पादक हैं—इसलिये 'like a boiled lobster the morn' यहाँ एक उपयुक्त उपमा है।

यह औचित्य का ही चमत्कार है कि प्रतिभाशाली कवि व्याकरण तथा काव्य के परम्परा-विहित नियमों का उल्लंघन करते हुए भी दोष को गुण में वदलने का श्रेय प्राप्त करते हैं। भोज ने ठीक ही कहा है :—

विरोधः सकलेष्वेव कदाचित् कवि-कौशलात्।
उत्क्रम्य दोषगणनां गुणवीथिं विगाहते ॥
समुदायार्थशून्यं यत् अपार्थं च प्रवक्षते।
तन्मत्तोन्मत्तवालानां मुक्तेरन्यत्र दुष्यति ॥

जैसे कवि ईट्स (Yeats) की प्रसिद्ध उक्ति 'love has pitched its tent upon the place of excrement' देखने में अशिष्ट दोष के अन्तर्गत है; परन्तु उसकी भावानुकूलता इस दोष को गुणरूप में परिवर्तित कर देती है। भाव है जिस तरह कमल कीचड़ से पैदा होता है उसी तरह प्रेम का अलौकिक वितान 'कुअंगों' में आधारित है।

औचित्य तो व्याकरण के नियमों को भी कविभावानुगामी बना देता है और पश्चिम के कवियों ने तो प्रायः भाषा को स्वतंत्ररूप से पुनर्निमित करने का कार्य अपना जन्मसिद्ध अधिकार माना है। 'डन, ब्राउनिंग' 'होपकिंस' तथा प्रतीकवादी कवि-वृन्द इस तथ्य के सबल साक्षी हैं और 'इलियट' ने तो यहाँ तक कह दिया है

कि आज के संघर्षमय युग में जबकि मस्तिष्क जटिल तथा विरोधी भावों का आगार ही हो गया है कवि का भाषा पर बलात्कार न्याय-संगत है।[६८]

उदाहरण के लिए इलियट की ही कुछ पंक्तियों को ले लीजिये :—

And still she *sang*,
And still the world *pursues*,
Jug, Jug, to dirty ears,

यहाँ दो क्रियाएँ एक ही वाक्य का अंग रहते हुए भी विभिन्न कालों का बोध कराती हैं, एक भूत और दूसरी वर्तमान का। परन्तु यह व्याकरण-दोष औचित्य गुण में परिवर्तित हो जाता है जब हम समझ जाते हैं कि इस विचित्र योग से कवि भूत तथा वर्तमान की मौलिक एकता की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट कराता है।

औचित्यसिद्धान्त साहित्य का एक सामान्य सिद्धान्त है और इसकी विस्तृत व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं है। परन्तु एक भ्रम-संशोधन के लिए इसपर कुछ अधिक विवेचन उपयुक्त प्रतीत होता है। आचार्य बलदेव प्रसाद उपाध्याय ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'भारतीय साहित्य शास्त्र' के दूसरे भाग (पृ० १२८ व १३०) में औचित्य का विस्तृत तुलनात्मक अध्ययन करने के पश्चात् लिखा है, ''पाश्चात्य साहित्य-संसार में 'औचित्य' बहिरंग आलोचना (Formal criticism) के ही अन्तर्गत बतलाया गया है, परन्तु जैसा हमने इस परिच्छेद में सप्रमाण दिखलाया है, औचित्य भारतीय साहित्य-शास्त्र का अतीव हृद्य अन्तरंग काव्यतत्त्व है। यह काव्य के आत्म-भूत रस के साथ सम्बद्ध रहता है।'' पाश्चात्य साहित्य-शास्त्र का कोई भी विद्यार्थी इस धारणा का अनुमोदन नहीं करेगा; क्योंकि यह तथ्य के प्रतिकूल है। वास्तव में 'प्लेटो' से लेकर आजतक के प्रायः सभी समीक्षकों ने बाह्यरूप की सार्थकता का मुख्य लक्षण काव्य की आत्मानुरूपता ही को माना है यद्यपि कुछ दिनों तक काव्योपदेश की प्रधानता मानते हुए एकाध ने भावात्मक पक्ष को गौण समझ लिया। औचित्य की चर्चा 'प्लेटो' के प्रसिद्ध कथन से आरंभ होती है कि प्रबंध का रूप एक जीवित शरीर के समान होना चाहिये, जिसके विभिन्न अवयव एक दूसरे से संयुक्त हों और अपने स्थान पर संतुलित रूप से रहते हुए समस्त शरीर का सौष्ठव परिपोषित

---

६८ The poet must become more and more comprehensive more allusive, more indirect, doing violence to the syntax, in order to force, to dislocate, if necessary, language into his meaning.

करें। परन्तु 'प्लेटो के लिए तो भावोद्रेक ही काव्य का मुख्य उद्देश्य था और इसीलिये उन्होंने भावुक कवियों को अपने आदर्श राज्य से बहिष्कृत करने का विधान भी बनाया। यही धारणा कालान्तर में वाग्मिता-शास्त्र का एक मुख्य अलंकार, विषय-विस्तार (ऐम्प्लीफिकेशन Amplification) के रूप में प्रसिद्ध हुई जिसको 'लाँजिनस' ने वह शरीर माना है जिसमें औदात्य (Sublimity) स्फूर्तिमय आत्मा के समान है। इसीको अरस्तू ने अपने 'काव्य-शास्त्र' में मुख्य सिद्धान्त मानकर 'ट्रेजेडी' के कथानक का निरूपण किया जिसके प्रत्येक भाग अङ्गाङ्गि-न्याय से संबद्ध होते हैं। परन्तु यहाँ भी कथानक, पात्र, नायक तथा विचार और शैली, करुणा तथा भय के ही आश्रित हैं; क्योंकि येही भाव 'ट्रेजेडी' की आत्मा हैं। बाद को डा० जॉन्सन ऐसे समालोचक भी, जो काव्य में नैतिकता के समर्थक थे, काव्य के आत्मा-रूप भाव (emotion) की अवहेलना न कर सके। 'ड्राइडन' ने फ्रांसीसी नाटकों का उल्लेख करते हुए स्पष्ट कह दिया कि ये संगमरमर की प्रतिमा के समान हैं जिनमें भावों की उष्णता नहीं है—नाटक तो मानव-स्वभाव—उसके भावों तथा प्रवृत्तियों—का एक नवनिर्मित रूप है।[६९] इसी प्रकार डा० ज्ञान्सन ने 'एडिसन' के Cato के संबंध में कहा है कि इसमें शिल्पचातुर्य तो है, परन्तु जीवन-तत्त्व (भाव) नहीं है।

स्वच्छन्दतावादी युग में तो भाव तथा कल्पना ही काव्य के मुख्य अंग हुए और इसीलिए गीति-काव्य की प्रधानता सर्वमान्य हुई और यह तथ्य भी सर्वमान्य है कि ऐसे काव्यों (Lyrics) में कोई भावावेग ही केन्द्र होता है जिसके चतुर्दिक् विभिन्न अंगों का विकास होता है। इस तरह से आभ्यन्तरिक एकत्व (Organic unity) समीक्षा का मूल सिद्धान्त हुआ और कोलरिज ने साग्रह घोषित किया कि कविता एक वृक्ष के समान अपने अन्तरंगी नियम के अनुसार ही विकसित होती है, बाहर से आरोपित एकता तो यांत्रिक (Mechanical) है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए जर्मन तथा अँग्रेजी साहित्य-मर्मज्ञों ने शेक्सपियर के नाटकों का अध्ययन किया और यह सिद्ध किया कि यद्यपि उसने अन्विति-त्रय—(स्थान, समय, कार्य की Unity)—की अवहेलना की है तथापि उसके प्रसिद्ध दुःखान्त और सुखान्त नाटकों में आन्तरिक एकत्व है—कोई स्थायीभाव या विचार जो बाहर के बिखरे हुए तत्वों को अनुस्यूत करता है और पात्रों, अलंकारों तथा बिम्बों और प्रतीकों में

---

[६९] A play is a just and lively image of human nature, representing its passions and humours, and the changes of fortune to which it is subject, for the delight and instruction of mankind. 'Essay of Dramatic Poesy'.

एक प्राणरूप में विद्यमान रहता है। [७०] 'कोलरिज' के कथन का आज के सभी मान्य समालोचकों ने समर्थन किया है। 'इलियट' के विचारों का उल्लेख हम दूसरे अध्याय में कर चुके हैं। उन्होंने स्पष्ट कहा है कि कवि एक लौकिक भाव से अभिप्रेरित होता है और उसे वह साहित्य के अलौकिक रूप में परिणत करना चाहता है। इस बात के लिए उसका मुख्य कर्तव्य यह है कि वह एक उपयुक्त वाह्य रूप या ऑब्जेक्टिव कोरिलेटिव (Objective Correlative) अर्थात् एक विशिष्ट पदार्थ-समुच्चय, संदर्भ अथवा सुनियोजित घटना-क्रम का निर्माण करे जो उसके भाव का उपयुक्त माध्यम होकर उसकी अभिव्यक्ति कर सके। 'हेरोल्ड आसबॉर्न' ने इस तथ्य का और विस्तृत स्पष्टीकरण किया है। उनका कहना है कि साहित्य-प्रबंध की अन्विति वास्तव में उस भाव या अनुभव से उद्‌भूत होती है जिसकी अभिव्यक्ति उसके माध्यम से होती है। इस पूर्ण अनुभव के विभिन्न अंग किसी बाह्य सूत्र से नहीं, अपितु आभ्यन्तरिक अवयव-अवयवीभाव से एक दूसरे को प्रभावित करते हुए अपनी सजीवता का परिचय देते रहते हैं; प्रत्येक का विशिष्ट रूप अन्य अंगों के क्रिया-प्रक्रिया-व्यापार से विकसित होता है और उनकी स्फूर्ति का स्रोत उस पूर्ण प्रबंध में निहित है जिसके कि वे मुख्य अंग हैं।......इस तरह काव्यानुशीलन की सार्थकता इस बात पर निर्भर होती है कि समस्त प्रवन्ध एक इकाई के समान पाठक के मन में विद्यमान हो, जिसके प्रत्येक अंग अपनी विशेषता तथा स्वतंत्र गौरव रखते हैं। यद्यपि यह गौरव काव्य के अन्तर्गत ही है और उससे अलग उसकी सत्ता नहीं है। कविता की विशेषता इस बात में है कि उसके शब्दों का तात्पर्य उनके पारस्परिक घनिष्ठ संवन्ध से एकत्व प्राप्त करता है न कि किसी एक अंग की अलग सत्ता के प्रताप से। [७१] इस प्रकार पश्चिम के काव्य-शास्त्री भी उसी आदर्श

---

७० In poetry it is the blending of passion with order that constitutes perfection. (p. 448). They (images) become proofs of original genius only as far as they are modified by a predominant passion; or by associated thoughts and images awakened by that passion; or when they have the effect of reducing multitude to unity...(p. 272).

Selected Poetry and Prose of Coleridge, D. A. Stauffer.

७१ The unity of a work of Literary art originates in the unity of the experience which the work of art presents. The components of the total experience are not externally linked but interact organically, react and respond by mutual influence, are each determined for what they are by the interplay

की ओर उन्मुख रहे हैं जो हमारे यहाँ का चरम-लक्ष्य है। कुन्तक ने साहित्य का यही रूप निर्दिष्ट किया है:—

मार्गानुगुण्यसुभगः माधुर्यादिगुणोदयः।
अलंकरणविन्यासः वक्रतातिशयान्वितः॥
वृत्त्यौचित्यमनोहारि रसानां परिपोषणम्।
स्पर्धया विद्यते यत्र यथास्वमुभयोरपि॥
सा काऽप्यवस्थितिस्तद् विदानन्दस्पन्दसुंदरा।
पदादिवाक्परिस्पन्दसारः साहित्यमुच्यते॥

अर्थात् 'साहित्य' शब्दार्थ का एक सुन्दर तथा हृदय-स्पर्शी समन्वय है जिसमें विभिन्न तत्त्व—जैसे, उपयुक्त शैली, माधुर्यादि गुण, अलंकारों का सुन्दर विन्यास, वक्रोक्ति का चमत्कार तथा वृत्तियों का औचित्य परस्पर स्पर्धा करते हुए विद्यमान रहते हैं तथा रस का परिपोषण करते हैं।

यही आशय पाश्चात्य साहित्य-शास्त्र के 'ऑरगेनिक' यूनिटी में अभिव्यक्त है जिसके आदि-प्रवर्तक 'प्लेटो' हैं और जिस पर उनके परवर्ती अनेक प्रमुख आलोचकों ने न्यूनाधिक रूप में बल दिया है। 'कोलरिज' के अनुसार कारयित्री-प्रतिभा (Creative Imagination) जो कि काव्य का प्राण है, अपना विशिष्ट चमत्कार विरोधी तत्त्वों के संयोजन तथा समन्वय में दिखलाती है और 'काव्य' का भेदक गुण इसी क्रिया का परिणाम है; क्योंकि काव्य तभी सार्थक होता है जब कि उसके विभिन्न अंग अपनी विशेषता रखते हुए समस्त 'शरीर' के सौंदर्य या चारुत्व का पोषण करते हैं और उसमें निहित भावात्मा का, जिससे कि वे अनुप्राणित हैं, पोषण तथा अभिव्यक्ति करते हैं।

---

of all the other parts and by the whole of which they are parts and which they together compose......

It must be seen as a single unified whole and each separable part can only be seen as it is when it is seen within the whole as a part of the whole. Appreciation of the whole and of the parts can only be achieved when the whole is before the mind as a whole composed of parts each with its proper plan and prominence...... (p. 288)

For the excellence of a poem consists in the compactness with which its word-meanings are moulded into an organic unity and not in any quality which belongs to the individual constituents of its material when they are taken in isolation after the organization has been disrupted. (p. 287) *Op. Cit.*

अध्याय ४

रस-निरूपण

काव्यस्यात्मा रसः

रस-सिद्धान्त न केवल ध्वनिवाद का ही चरम-लक्ष्य है, अपितु एक प्रकार से भारतीय काव्य-शास्त्र के आदि, मध्य तथा अन्त को संयुक्त करनेवाला एक स्थायी तत्त्व है। हमारी साहित्य-समीक्षा तथा विवेचन की यही विशिष्ट उपलब्धि है जिसके निरूपण में कला, दर्शन, मनोविज्ञान का अनूठा समन्वय प्रतीत होता है। वैसे तो रस-सिद्धान्त भरतमुनि से भी प्राचीन है, परन्तु इसके वे ही प्रथम विवेचक हैं और उनका 'नाट्य-शास्त्र' इस विषय का प्रथम आधिकारिक ग्रन्थ है। भरतमुनि का ध्यान नाटक के उद्देश्य तथा तत्संबंधी समस्याओं पर था, इसलिए उन्होंने इसका दार्शनिक अथवा आध्यात्मिक विवेचन नहीं किया, परन्तु उनके टीकाकार लोग पण्डित तथा दार्शनिक थे इसलिए भरत के रस-सूत्र की व्याख्या में उन्होंने अपने दार्शनिक दृष्टिकोणों का स्पष्ट पुट देकर काव्यानन्द को ब्रह्मानन्द का प्रायः पर्यायवाची बना दिया। रस-सिद्धान्त का विकास परस्पर विरोधी व्याख्याओं से परिपूर्ण है और पश्चिम के मनोविज्ञान की प्रसिद्धि के साथ-साथ इसकी महत्ता की पुष्टि हो रही है, जिसके परिणामस्वरूप गत पचीस-तीस वर्षों में इस पर बहुत-कुछ लिखा गया है और इससे संबंधित साहित्य का एक विशाल भण्डार तैयार हो गया है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि एक अध्याय में तो हम केवल इसकी रूप-रेखा ही प्रस्तुत कर सकते हैं और इसका विशद विवेचन न तो हमारा उद्देश्य ही है और न इस तुलनात्मक अध्ययन के अन्तर्गत वह वांछनीय ही है।

भरत ने इसको नाटच-गुण बतलाया है और रस-निष्पत्ति ही अभिनय का अन्तिम उद्देश्य विहित किया है। उनके 'रस इति कः पदार्थः' ? प्रश्न के उत्तर में रस की व्युत्पत्ति निहित है। भरत का कथन है—''यथा नानाव्यंजनसंस्कृत-मन्नं भुंजाना रसानास्वादयन्ति सुमनसः पुरुषाः हर्षादींश्चाधिगच्छन्ति, तथा नानाभावाभिनयव्यंजितान् वागंगसत्त्वोपेतान् स्थायिभावान् आस्वादयन्ति प्रेक्षकाः हर्षादींश्चाधिगच्छन्ति, तस्मात् नाट्यरसा इति अभिव्याख्याताः'। इसका अर्थ है कि नाट्य-रस एक अनिर्वचनीय अनुभव है जिससे एक प्रकार का मानसिक आस्वादन होकर आनन्द-प्राप्ति होती है। जिस प्रकार विविध अन्नों तथा भिन्न स्वाद-

वाले पदार्थों से मिलकर एक सुस्वादु व्यंजन तैयार होता है जो सुरुचिपूर्ण जनों को चर्वण-व्यापार द्वारा एक विशेष हर्ष का अनुभव कराता है उसी तरह भावानुभावों इत्यादि का उत्तम तथा सर्वाङ्गीण अभिनय करके नाटककार स्थायीभाव को आस्वाद्य बनाकर प्रेक्षकों को आनन्दमग्न करता है। व्यंजन तथा नाटक के साम्य के विविध अंग श्री गणेश त्र्यंबक-देशपांडे (भारतीय साहित्य शास्त्र, पृष्ठ ३३२) की दी हुई तालिका से स्पष्ट है :—

भोग्य	भोक्ता	फल	व्यापार
व्यंजनसंस्कृतअन्न	सुमनस् अर्थात् समाहितचित्त पुरुष	हर्ष तृप्ति	रसना (आस्वादन)
विभावव्यञ्जितस्थायी	सुमनस् अर्थात् एकाग्र तथा निर्मल हृदय रसिक	हर्ष तृप्ति	निर्विघ्नसंविद् (आस्वादन)

इस तालिका को पूर्ण करने के लिए हम यह कह सकते हैं कि इस व्यंजन का पाचक कवि है जो स्वयं रसिक होते हुए सहृदयों के रसिकत्व का पारखी है और इस व्यंजन को परोसनेवाले नट हैं जो इसे रोचक बनाकर भोक्ताओं को रसाभिमुख करते हैं। इस तरह कवि, नाटक, अभिनय तथा प्रेक्षक रस के मुख्य घटक हुए। इस संबंध में भरत का एक मुख्य वाक्य विचारणीय है—

यथा बीजात् भवेद् वृक्षो वृक्षात् पुष्पं फलं यथा।
तथा मूलं रसाः सर्वे तेभ्यो भावा व्यवस्थिताः॥

'अभिनव भारती' में इसकी व्याख्या करते हुए अभिनव गुप्त ने कहा है कि यहाँ बीज का अर्थ है कविगत रस, वृक्ष उसका काव्य है, पुष्पइत्यादि अभिनय संबंधी रस-व्यापार, तथा फल है सामाजिकों का रसास्वाद। इस प्रकार समस्त संसार रसमय होता है। हमारा विवेचन इन्हीं अंगों की व्याख्या से हो जायगा। रस का मूल कवि ही है और यह रसिकत्व ही कवि तथा सहृदय प्रेक्षक का सामान्य गुण है। यहाँ आनन्दवर्धन का प्रसिद्ध कथन निर्दिष्ट है:—

शृङ्गारी चेत् कविः काव्ये जातं रसमयं जगत्।
स एव वीतरागश्चेन्नीरसं सर्वमेव तत्॥

कवि की रसधार ही उच्छलित होकर काव्य को प्राणान्वित करती है। यहाँ पर 'वर्ड्सवर्थ' के एक प्रसिद्ध कथन का उल्लेख इस तथ्य की पुष्टि करेगा—कवि एक मानव है; परन्तु अन्य मानवों की अपेक्षा उसमें हर्षोत्फुल्ल होने की प्रवृत्ति अधिक तीव्र है। वह अपने आभ्यन्तरिक भावों तथा इच्छाओं के व्यापार में हर्षानुभव

करता है और बाह्य प्रकृति की स्वतंत्र क्रियाओं में भी उतनी ही हर्ष-मिश्रित रुचि रखता है और जहाँ भी हर्ष की मात्रा में कमी देखता है वहाँ अपने मन से उसका सृजन करता है·········परन्तु कवि की विशेषताएँ उसकी मूलभूत मानवता को निर्बल नहीं बनातीं— कवि तथा अन्य मनुष्यों का अन्तर आंशिक है, मौलिक नहीं।[७२] इस प्रकार नाटक कवि के हृदयगत रस को प्रेक्षकों तक पहुँचाने का एक प्रभावपूर्ण माध्यम है, यही इसका सामाजिक रूप है और इसीसे कवि का स्वान्तःसुख सहृदयों द्वारा आस्वाद्य होता है। टाल्सटाय ने ठीक ही कहा है—"अपने हृदय में उन भावों को जागृत करना जो अनुभवगम्य हैं और उनको जागृत करके फिर उपयुक्त कार्यों, चिन्हों, रंगों तथा रूपों द्वारा जो कि शब्दों में निहित हैं, उन भावों का इस प्रकार संप्रेषण करना कि दूसरे लोग भी उन भावों को हृदयंगम कर सकें यही कला का मुख्य काम है और इसी से वह मानव-समूह में भावात्मक एकता सम्पन्न करती है।"[७३] भरत ने भी कहा है—

'कवेरन्तर्गतं भावं भावयन् भावमुच्यते।'

परन्तु यहाँ प्रश्न है 'संप्रेषण' शब्द का क्या अर्थ है ? क्योंकि भाव तो कोई ठोस पदार्थ है नहीं जो स्थानांतरित किया जा सके। इसका समाधान यह है कि भाव की किसी माध्यम द्वारा अभिव्यंजना करना जिससे पाठक या श्रोता में भी उस भावास्वाद के अनुकूल मनोदशा तैयार हो जाय। इस संबंध में 'Paul Valery' की यह उक्ति स्मरणीय है—'काव्य का ध्येय यह कदापि नहीं है कि जो वस्तु

---

७२ The poet is a man, pleased with his own passions and volitions and who rejoices more than other men, in the spirit of life that is in him ! delighting to contemplate similar volitions and passions as are manifested in the goings on of the world and habitually impelled to create them where he does not find them......and among the qualities principally conducing to form a Poet is implied nothing differing in kind from other men but only in degree.

७३ To evoke in oneself the feeling one has experienced and having evoked it in oneself, then, by means of movements, lines, colours, sounds or forms expressed in words, so to transmit that feeling that others may experience the same feeling this is the activity of art...it is a means of union among men, joining them together in the same feelings.

एक हृदय में घटित होती है उसका प्रेषण करके दूसरे के लिए उसे बोधगम्य करना। इसका काम है दूसरे व्यक्ति में भी ऐसी मनोदशा की उत्पत्ति करना जो कि कवि की उस मनोदशा के अनुकूल हो जो अभिव्यक्ति द्वारा बहिर्मुख की जाती है।'[७४] वह माध्यम जिसके द्वारा कवि का भाव श्रोता के लिए आस्वाद्य होता है नाटक अथवा काव्य ही है। इसलिए भरत ने कहा है :—

'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगात् रसनिष्पत्तिः।

ये विभावानुभाव इत्यादि लोकस्वभाव तथा प्रवृत्ति के कलात्मक रूपान्तर हैं। इसको समझने के लिए भरतकृत लोकधर्मी तथा नाट्यधर्मी का अन्तर समझना नितान्त आवश्यक है। नाटक क्या है ? इसके उत्तर में भरत ने कहा है:—

योऽयं स्वभावः लोकस्य सुखदुःखसमन्वितः।
अङ्गाद्यभिनयोपेतो नाट्यमित्यभिधीयते ॥
त्रैलोकस्य हि सर्वस्य नाट्यम् भावानुकीर्तनम्।

इस तरह नाटक लोक के स्वभाव तथा नानावस्था और व्यापार का अनुकीर्तन अथवा 'अनुकरण' है। यह अनुकीर्तन नाटककार तथा नट दोनों के लिए प्रयुक्त है। कवि अपने भावाभिव्यक्ति के लिए जो माध्यम अथवा Objective Correlative तैयार करता है उसका मूल स्रोत लोक-व्यवहार ही है, चाहे वह उसको निरीक्षण द्वारा प्राप्त हो अथवा साहित्य-अनुशीलन तथा परम्परागत अनुभव से उपलब्ध हुआ हो।

परन्तु अनुकरण का अर्थ यह कदापि नहीं है कि केवल बाह्य रूपों तथा व्यापारों की प्रतिकृति प्रस्तुत की जाय। कवि-पक्ष से इसका अर्थ है लोकधर्मी व्यापारों को नाट्यधर्मी रूप देना। जीवन में भी परिस्थिति-विशेष के कारण स्त्री-पुरुष में प्रेम होता है और अनुकूल कारणों से उसका उद्दीपन होता है और उसके विकास के साथ-साथ प्रेमियों में क्षणिक भावों जैसे सुख, दुःख, ईर्ष्या इत्यादि का उद्भव होता है और बदलती हुई मनोदशा का अभिव्यंजन इंगित, चेष्टा तथा अंगभंगी, जैसे कटाक्ष, मूर्च्छा, रंग-परिवर्तन इत्यादि से होता है—यद्यपि इन सभी व्यापारों का मूलभूत स्थायीभाव प्रेम ही रहता है। परन्तु वास्तविक जीवन में

---

[७४] Poetry is not concerned with transmitting to another what happens in one that is comprehensible by the intellect. It is concerned with creating in him a state, the expression of which (in him) will be precisely the same as that which communicates the state to him.

यह दशा व्यक्तिनिष्ठ होती है; देश, काल तथा समाज से संबंधित तथा कार्य-कारण नियम से आबद्ध रहती है। इन अवस्थाओं को नाट्यधर्मी बनाने का अर्थ है इनको उन सब नियमों से मुक्त करके सामान्य रूप प्रदान करना जिससे उनमें रस-संचार संभव हो सके। इसी अन्तर को प्रदर्शित करने के लिए भरत ने इन लोकव्यवहारों का नवीन नामकरण करके भाव, अनुभाव, संचारीभाव इत्यादि ४८ प्रकारों का समुच्चय प्रस्तुत किया है। इस तरह लोकधर्मी नाट्यधर्मी का आश्रय है और नाट्यधर्मी लोकधर्मी को सुन्दर तथा रसमय करनेवाला माध्यम है। इसलिए कवि का अनुकरण वास्तव में पुर्नानिर्माण है, क्योंकि लोक के उपादानों का आश्रय लेकर वह एक ऐसी सृष्टि करता है जिससे समस्त मानव-समुदाय को आनन्दानुभव का अवसर मिलता है। इसके लिए कवि को स्वयं आत्मनिरपेक्ष होना चाहिये। उसको व्यक्ति, काल, देश इत्यादि की संकीर्ण परिधि के ऊपर उठकर समस्त मानव-जाति के वासना तथा संस्कार-जनित सामान्य भावों का अपनी कृति में समावेश करना चाहिये। इस तरह उसके अन्तर्गत भाव सामान्य रूप धारण करके ही दूसरों के लिए ग्राह्य होंगे। इसलिए प्रायः प्रचलित परम्परागत कथाओं का ही नाटक में प्राधान्य है और यही तथ्य अरस्तू ने अपने काव्य-शास्त्र में प्रतिपादित किया है। परन्तु प्राचीन पौराणिक कथाओं का भी कवि द्वारा पुर्नानिर्माण होता है जिससे वे कथानक-रूप में परिवर्तित होकर कवि के मुख्य भाव का रूपक (Metaphor) हो सकें। इस तरह लौकिक वस्तु को अलौकिक रूप देकर कवि अपने भाव का एक ठोस रूप प्रस्तुत करता है जिसके सभी अंग जीवित; किन्तु एक दूसरे के अनुरूप हैं। इस स्फूर्तिमय शरीर का प्राण कोई स्थायी-भाव होना चाहिये, जिसके आलम्बन नायिका-नायक होंगे और सभी कार्य-व्यापार, मनोवेग इत्यादि इसी की अभिव्यक्ति अथवा अभिप्रेरक होंगे। समस्त शरीर में व्याप्त प्राण-वायु के समान यह स्थायीभाव कथानक के पाँच विशिष्ट अंगों के क्रम से, जो सीढ़ी के पाँच डंडों के समान है, विकसित होता है और अन्त तक पहुँचते ही इसके पूर्ण स्वरूप का विस्फोट होता है और रस-व्यञ्जना का काम पूर्णता को प्राप्त करता है।

परन्तु इस नाटक के अन्तर्गत अर्थ को सजीव करनेवाले हैं नट, और भरत के मतानुसार अभिनय ही रसव्यंजना का मुख्य साधन है और इसीलिए नाट्यशास्त्र में अभिनय की सिद्धि पर विशेष आग्रह है।

नानाद्रव्यैर्बहुविधैर्व्यञ्जनं भाव्यते यथा।
एवं भावा भावयन्ति रसानभिनयैः सह॥

अभिनय भी लोकस्वभाव, प्रवृत्ति तथा चित्तवृत्ति का अनुकरण है और इसमें

भी लोकधर्मी तथा नाट्यधर्मी का सुखद सामञ्जस्य आवश्यक है। नट का प्रथम कर्तव्य है मानवभावों, अवस्थाओं तथा चित्तवृत्तियों का वास्तविक प्रदर्शन। इसीलिए शेक्सपियर का भी कथन है कि अभिनय का नित्यधर्म है जीवन की झाँकी के लिए एक भव्य दर्पण प्रस्तुत करना जिसमें मानव-स्वभाव, गुण, अवगुण तथा सारे समाज का सहज रूप प्रतिबिंबित है। प्रतिबिंब का अर्थ केवल यही है कि वह रूप अभिनय द्वारा परिवर्तित होकर अलौकिक हो जाता है। इसके साथ ही साथ अभिनय नाट्यधर्मी होता है और अपने विशिष्ट प्रयोगों द्वारा अलौकिक रूप में सौंदर्य तथा रस का संचार करता है। रस नाटक ही में उपलब्ध है, जीवन में उसका आस्वादन इस रूप में असंभव है। इसलिए :—

नाट्यधर्मी प्रवृत्तं हि सदा नाट्यं प्रयोजयेत्।
न ह्यंगाभिनयात् किंचित् ऋते रागः प्रवर्तते॥
सर्वस्य सहजो भावः सर्वो ह्यभिनयोऽर्थतः।
अंगालंकारचेष्टा तु नाट्यधर्मी प्रकीर्तिता॥

अभिनय की सफलता तभी होगी जब नट पात्रों की मनोदशा का पूर्ण अनुभव करके उसे सात्विक, वाचिक, आंगिक व्यापारों द्वारा सहृदयों का भावोत्कर्ष करने में समर्थ हो। इसीलिए कवि के समान उसे भी साधारणीकरण मान्य होना चाहिए।

इस प्रकार अभिनय के विभिन्न अंगों के द्वारा लौकिक कार्य-कारण इत्यादि विभाव तथा अनुभाव का रूप धारण करते हैं और कवि के भाव का भावन होता है। भरतमुनि की व्याख्या में यह तथ्य स्पष्ट है "विभावः इति कस्मात् ?" उत्तर है "विभावो नाम विज्ञानार्थः, विभाव्यन्तेऽनेन वागंगसत्त्वाभिनयाः इति विभावः।" इसी तरह अनुभाव की व्याख्या है, 'अनुभाव्यतेऽनेन वागंगकृतोऽभिनयः इति'। इसलिए ये नाट्यधर्मी हैं, यद्यपि इनका आधार लोक-व्यवहार तथा लोक-प्रवृत्ति ही है-

'लोकस्वभावसंसिद्धा लोकयात्रानुगामिनः।
अनुभावा विभावाश्च ज्ञेयास्त्वभिनये बुधैः॥

भाव, विभाव अनुभाव के संयुक्त माध्यम ही से रस-निष्पत्ति संभव है। भरत ने उनका अन्योन्याश्रित संबंध स्थापित किया है। स्थायीभाव, विभाव तथा अनुभाव पर ही आश्रित है, वही उसकी प्रखरता के साधन हैं और विभाव अनुभाव के अभिनय द्वारा अनुकृत होने ही पर रसास्वाद संभव होता है :—

विभावैराहृतो योऽर्थः ह्यनुभावैस्तु गम्यते।
वागंगसत्त्वाभिनयैः स भाव इति संज्ञितः॥

वागंगमुखरागेण सत्त्वेनाभिनयेन च।
कवेरन्तर्गतं भावं भावयन् भाव उच्यते ॥[७५]

भाव, अनुभाव, विभाव रस-चर्वणा के माध्यम हैं और उनके सुखद संमिश्रण से रसोत्पत्ति होती है जो उनसे बिल्कुल विलक्षण है। इसको समझाने के लिए मुनि षाडव रस की उपमा देते हैं :—

'लोकप्रसिद्धेभ्यः परस्परविविक्तेभ्यः मधुरतिक्ताम्ललवणकटुकषायेभ्यो मिश्रेभ्यश्च विलक्षणः षाडवशब्दवाच्यः। तत्प्रधाना बहुतरा रसनयोग्या क्रियन्ते।

अर्थात् जिस प्रकार मधुर, लवण, कषाय इत्यादि ६ रसों के मेल से षाडव रस की उत्पत्ति होती है जो अपने कारणभूत उपकरणों से भिन्न है, उसी प्रकार विभावादि के अभिनीत होने पर स्थायीभाव रसत्व को प्राप्त होते हैं, अर्थात् स्थायीभाव ही रस नहीं है, अपितु रस का माध्यम है।

---

७५ अभिनवभारतीकार का वक्तव्य है कि पहले श्लोक द्वारा जो व्युत्पत्ति स्थापित की गई है, वह कवि एवं नट को शिक्षा देने की दृष्टि से, परन्तु बादवाले श्लोकों द्वारा सामाजिक की दृष्टि से उसी 'भाव' का अर्थ बताया जा रहा है।

'वाचिक, आङ्गिक, मुखरागात्मक एवं सात्त्विक अभिनय के द्वारा उस भाव का भावन करनेवाली सामाजिक की चित्तवृत्ति-विशेष को भाव कहा जाता है जो वर्णना-निपुण कवि के अन्तर्गत अनादि एवं प्राक्तन संस्कार प्रतिभानमय राग के रूप में है—जिसकी सर्वसाधारणीभावेन आस्वाद-योग्यता है।'

नानाभिनयसंबद्धान् भावयन्ति रसानिमान्।
यस्मात्तस्मादमी भावा विज्ञेया नाट्ययोक्तृभिः॥

"सामाजिक की वह चित्तवृत्ति भाव है जो चतुर्विध अभिनयों द्वारा संबद्ध सामाजिक द्वारा चर्व्यमाण 'रस' का 'भावन' करती हो।" इन श्लोकों की व्याख्या करते हुए धनिक ने कहा है :—

"रस का भावन करनेवाला तत्त्व भाव है या कवि के अन्तर्गत स्थित 'भाव' को भावन करनेवाला तत्त्व भाव है—ये दोनों व्युत्पत्तियाँ अभिनय एवं काव्य में व्यवहृत 'भाव' शब्द की है"।

देखिये : रस-विमर्श : डा० राममूर्ति त्रिपाठी, पृ० २२५.

अभिनय के द्वारा ही प्रेक्षक भी अपनी तटस्थता को छोड़कर नाटक में प्रविष्ट होता है और उसका एक मुख्य अंग होकर रसभोक्ता बनता है। प्रेक्षक की परिभाषा ही इस बात को सिद्ध करती है—

एवं भावानुकरणे यो यस्मिन् प्रविशेन्नरः।
स तत्र प्रेक्षको ज्ञेयः गुणैरेतैरलंकृतः॥

इसलिए प्रेक्षक में विशिष्ट गुणों का होना आवश्यक है। बिना इनके वह सहृदय नहीं हो सकता और असहृदय के लिए तो अभिनय, नृत्य, संगीतादि उतने ही निरर्थक हैं जितने कि वे रंगमंच की ईंटों तथा दीवालों के लिए हैं। प्रेक्षक के गुणों की नाट्यशास्त्र में एक लम्बी सूची है और उसीमें से कुछ मुख्य गुणों का चयन तथा विवेचन किया जा सकता है—

चारित्राभिजनोपेताः शान्तिवृत्तश्रुतान्विताः।
षडङ्गनाट्यकुशलाः प्रबुद्धाः शुचयः समाः॥
चतुरातोद्यकुशला नेपथ्यज्ञाः (कलाशिल्प) विचक्षणाः।
चतुराभिनयज्ञाश्च सूक्ष्मज्ञा रसभावयोः॥
शब्दच्छन्दोविधानज्ञाः नानाशास्त्रविचक्षणाः।

अर्थात् वह नाना शास्त्र, कला तथा विद्या का ज्ञाता हो, शुच, स्थिर-मन, चरित्र तथा शिष्टाचार से युक्त नाट्यप्रेमी तथा रस-मर्मज्ञ, कुशाग्र बुद्धिवाला तथा कल्पना एवं भावातिरेक में नायक से तादात्म्य स्थापित करने में कुशल व्यक्ति हो।

इस तरह भरत ने प्रेक्षक का सम्बन्ध अभिनय से स्थापित कर दिया है; परन्तु उनके विवेचन का विशेष अंग 'रस-निष्पत्ति' ही है। उन्होंने भाव के 'भावन' पक्ष ही पर विशेष ध्यान दिया है, परन्तु 'वासन' पक्ष की ओर केवल संकेत मात्र कर दिया है। 'वासन' का अर्थ है रस की सहृदय में व्याप्ति, जैसे कस्तूरी की सुगन्धि वस्त्र में व्याप्त होती है। इसलिए भरत के टीकाकारों ने इसी अधूरे अंग को ही अपने विवेचन का मुख्य अंग बनाया। इस क्षेत्र में सबसे बड़ा काम काश्मीरी पण्डितों ने किया जिनमें श्री शंकुक, भट्टतोत तथा भट्टनायक के नाम उल्लेखनीय हैं और इस परम्परा का चरमोत्कर्ष अभिनवगुप्त की प्रसिद्ध टीका, 'अभिनवभारती' में पाया जाता है। अभिनवगुप्त ने सभी मतों का खण्डन करके अपने विशिष्ट मत का प्रतिपादन किया और उनका मत इतना प्रबल तथा साधिकार सिद्ध हुआ कि उसका सफल विरोध करने में कोई भी परवर्ती विवेचक

समर्थ नहीं हुआ। इसी तथ्य का निर्देश माणिक्यचन्द्र का प्रसिद्ध श्लोक अपनी भाषा में करता है :

न वेत्ति यस्य गांभीर्यं गिरितुङ्गोऽपि लोल्लटः।
तत् तस्य रसपाथोधेः कथं जानातु शङ्कुकः॥
भोगे रत्यादिभावानां भोगं स्वस्योचितं ब्रुवन्।
सर्वथा रससर्वस्वमभाङ्क्षीत् भट्टनायकः॥
स्वादयन्तु रसं सर्वे यथाकामं कथंचन।
सर्वस्वं तु रसस्यात्र गुप्तपादा हि जानते॥

अभिनवगुप्त के पूर्ववर्ती टीकाकारों में सबसे महत्वपूर्ण स्थान ध्वनिवाद के प्रवल विरोधक तथा 'हृदय दर्पण' के लेखक भट्टनायक का है जिनका रसविवेचन दोषपूर्ण होते हुए भी तथ्यहीन नहीं है और उसमें दार्शनिक औदात्य का उचित सामंजस्य भी है।

उन्होंने ठीक ही कहा है कि अभिनय द्वारा प्रेक्षक के व्यक्तिगत भावों का उद्रेक नहीं होता है; क्योंकि ऐसी दशा में शोक का अभिनय उसके दुःख का ही उत्पादक होगा। नाटकगत भाव का आस्वादन करने के लिए प्रेक्षक के दृष्टिकोण का भी साधारणीकरण उतना ही आवश्यक है, जितना कि कवि तथा नट में अपेक्षित है। रंगमंच पर राम और सीता के प्रेम को देखकर उसे अपने व्यक्तिगत अनुभवों का स्मरण नहीं होता, अपितु सामान्य प्रेम का ही उद्रेक होता है। सामान्य भाव तथा सामान्य भावक के समन्वय से ही रसप्रतीति होती है। इससे जनित मनोदशा सत्त्व गुण से परिपूर्ण तथा रजस् तथा तमस् से रहित होने के कारण संसार के राग, द्वेष तथा बंधन से मुक्त होती है और आत्मा अपने में ही शान्त तथा सन्तुष्ट होती है। इसके लिए उन्होंने शब्दों में अभिधा के अतिरिक्त 'भावकत्व' तथा 'भोजकत्व' दो नई शक्तियों की सत्ता स्वीकार की है। काव्य-भाषा की इन्हीं दो शक्तियों से सत्त्व का उद्भव तथा उत्कर्ष होता है और आत्मा अलौकिक आनन्द की ओर अग्रसर होती है। यह अनुभव न तो लौकिक है और न ब्रह्मानन्द का पर्याय। यह एक क्षणिक अलौकिक आनन्द है, यद्यपि इसमें हम अपने बन्धनों से मुक्त हो जाते हैं। इस तरह "रसभोग का अपना विशिष्ट रूप है⋯⋯ ⋯ वह हृदय की एक अवस्था है जिसका स्वरूप है दृति, विस्तार और विकास⋯⋯यही भोग की अवस्था है (यदा हि रजसो गुणस्य दृतिः, तमसो विस्तारः सत्त्वस्य विकासः, तदा भोगस्वरूपं लभते)⋯⋯इस सत्त्वमयी अवस्था में रसिक का आत्मचैतन्य रूप लोकोत्तरआनन्दप्रकाशित होता है तथा इस आनन्द में रसिक विश्रान्त होता है⋯⋯रस का भोग आत्मानन्द के स्वरूप का

होता है, अतएव इसे 'परब्रह्मस्वादसविध' अर्थात् ब्रह्मानंद के समान कहा गया है''।[७६]

अभिनवगुप्त ने भट्टनायक की दो नवीन शब्दशक्तियों का तो खंडन किया है, परन्तु प्रेक्षक में साधारणीकृत भावना का अनुमोदन किया है। व्यक्ति-निरपेक्ष होने से सभी दर्शकों की विभिन्नता विगलित होती है और उनमें एकत्व की व्याप्ति होती है और इसी एकत्व के द्वारा रस की निर्विघ्न अभिव्यक्ति से ही चमत्कार का उद्भव होता है जो अलौकिक तथा विलक्षण होता है। यह मानस प्रतीति है जो लौकिक प्रतीति से भिन्न है, यह भाव-प्रतीति है जो अनुभवगम्य होते हुए भी अनिर्वचनीय है। 'सर्वथा रसनात्मकवीतविघ्नप्रतीतिग्राह्यो भाव एव रसः'। इस सफल प्रतीति में काव्य-कर्ता तथा काव्य-श्रोता का 'हृदय-संवाद' होता है; क्योंकि श्रोता कवि-व्यापार-क्रम के प्रतिकूल भावक व्यापार-क्रम का अनुगमन करके अन्त में उस बिन्दु पर पहुँचता है जहाँ से कवि-कार्य आरम्भ हुआ था। कवि का क्रम है रस, फिर उसका सामान्यी या साधारणीकरण, शब्दों तथा अभिनय द्वारा रस-व्यंजना अथवा अभिव्यक्ति, तथा श्रोता का क्रम है अभिनय द्वारा साधारणीकरण, तादात्म्य द्वारा स्थायी का साक्षात्कार और अन्त में 'झटिति' रसानुभव और तज्जनित आनन्द। काव्य-रसास्वादन के लिए कवि तथा सामाजिक का आवश्यक तादात्म्य तो एक सार्वभौमिक सत्य हो गया है। राबर्ट ग्रेव्हस (Graves) ने कहा है कि भावक को भी काव्य का मर्म हृदयंगम करने के लिए उसी समाधिस्थ अवस्था (Trance) में पहुँचना पड़ेगा जिसके द्वारा कवि ने काव्य का सृजन किया था और मैरिटेन (Maritain) ने इस तथ्य की पुष्टि करते हुए लिखा है, जिस प्रकार कवि तथा वस्तुविशिष्ट की तादात्म्यता से कवि के भाव का उदय हुआ था, उसी प्रकार कलानन्द का अनुभव भी उसी क्रम की पुनरावृत्ति है और भावक तथा काव्य के तादात्म्य से उत्पन्न होता है।[७७] इस प्रकार कलाकृति का गौरव इसीमें है कि वह अपने स्रष्टा की सृष्टि करती है और यह सृष्टि सहृदय पाठक के मन में होती है। 'सहृदय' का अर्थ ही है 'तत्सम हृदय'।

---

[७६] देखिये : गणेश त्र्यंबक देशपाण्डेकृत 'भारतीय साहित्यशास्त्र' पृष्ठ २९३।

[७७] 'Just as the original intuition arose from a self-identification of the artist with the appointed theme, so aesthetic experience, reproduction, arises from the self-identification of the spectator with the presented matter'.

इसीलिए अभिनवगुप्त ने सात प्रकार के मुख्य रस-विघ्नों का उल्लेख किया है जिनका निवारण रस-सिद्धि के लिए अनिवार्य है :—

संभावना-विरह—पाठक में कल्पनादारिद्र्य जिसके कारण तादात्म्य असंभव है और नाट्यरस अनुभवगम्य नहीं हो सकता।

स्वपरगत देशकाल विशेषावशेष—यह साधारणीकरण में असमर्थता का सूचक है, जब प्रेक्षक अपनी व्यक्तिगत उलझनों तथा समस्याओं को लेकर अभिनय देखने जाता है और अपने अन्तर्गत नरक से बाहर नहीं हो सकता। इसी से संबंधित तीसरा दोष है जिसे अभिवनगुप्त ने '**निजसुखादिविवशीभाव**' कहा है जिसका शमन हृदय-नैर्मल्य के लिए आवश्यक है।

प्रतीत्युपायवैकल्य—यह प्रबंध-दोष है जिसका अर्थ है विभावानुभाव की शिथिलता अथवा असामंजस्य जिससे रसोत्पत्ति संभव ही नहीं होती। यदि भावानुभावों की स्पष्ट अभिव्यक्ति नहीं हुई तो **स्फुटत्वाभाव** दोष उत्पन्न होगा। यह दोष कवि तथा नट दोनों के कौशल-शैथिल्य का परिचायक तथा रसास्वादन का बाधक होता है। **अप्रधानता** तथा **संशययोग** भी कवि के कला-संबंधी दोष हैं जिनके कारण प्रधानरस या तो गौणरूप में प्रकट होता है अथवा उसके विभावादि के संबंध में संशय होता है। इस तरह नाटकसिद्धि तथा रसनिष्पत्ति के लिए कवि-कौशल, नट-कौशल तथा प्रेक्षक की उपयुक्त मनोदशा एवं रसिकोचित गुणों का संयोग अपेक्षित होता है। इसीलिए अभिनवगुप्त ने प्रेक्षकों के विभिन्न गुणों पर विशेष जोर दिया है—'येषां काव्यानुशीलनाभ्यासवशाद्विशदीभूते मनोमुकुरे वर्णनीय तन्मयीभवनयोग्यता ते हृदयसंवादभाजः सहृदयाः।'

योऽर्थो हृदयसंवादी तस्य भावो रसोद्भवः।
शरीरं व्याप्यते तेन शुष्कं काष्ठमिवाग्निना॥

रसिकत्व—वह नैसर्गिक शक्ति जो मनुष्य में कला-सौन्दर्य-परख के आधाररूपेण स्थित रहती है।

सहृदयत्व—वह भावात्मक शक्ति जो प्रेम इत्यादि रागात्मक व्यापारों के प्रत्यक्ष अनुभव अथवा साहित्य-सेवन से विकसित होती है। ऐसे अनुभव संस्काररूप में प्रेक्षक-हृदय में निहित होते हैं और उसके मन को भावुक बनाते हैं जिससे रंगमंच पर नायक के व्यापारों तथा प्रवृत्तियों का अभिनय होते ही उसका मन तन्मयी स्थिति के उपयुक्त हो जाता है। यह भावुकता नाटक के निरन्तर अध्ययन तथा अभिनय के रुचिपूर्ण अवलोकन से पोषित होती है। इसीसे संबंधित है प्रेक्षक

की प्रतिभा जो व्यंग्यार्थ को ग्रहण करके अलौकिक व्यंजित भाव को हृदयंगम कराती है :—'अपूर्ववस्तुनिर्माणक्षमत्वम्' की तदनुरूपा शक्ति ।

मनन-शक्ति—यह सहृदय की वह शक्ति है जिसके द्वारा वह विभावानुभावादि से प्रभावित होकर अपने पूर्व संस्कारों तथा अनुभवों को जागृत करके उनका उसी प्रकार चर्वण करता है जैसे गाय जुगाली करके अपने खाये हुए पदार्थों का—'काव्यतत्त्वभूतो योऽर्थस्तस्य भावना वाच्यातिरेकेणानवरतचर्वणा' ।

उपयुक्त अवस्था तथा मनोदशा—रसास्वादन के लिए अनुकूल अवस्था तथा मनोदशा का होना अत्यावश्यक है—जैसे शृङ्गार का आस्वादन वृद्ध तथा विरक्त लोग नहीं कर सकते, और शोकसंतप्त व्यक्ति नाचरंग में रुचि रखने में असमर्थ सिद्ध होते हैं ।

इन सब उपकरणों के संयुक्त होने पर सहृदय प्रेक्षक धीरे-धीरे अपने व्यक्तिगत बन्धनों से मुक्त होकर तन्मय होता है और अन्त में ऐसी अवस्था में पहुँचता है जहाँ रसाभिव्यक्ति एवं तज्जनित आनन्द सुलभ हो जाते हैं । इस तरह रस कोई बाह्य वस्तु नहीं है अपितु एक विशिष्ट मनोदशा है । इस व्याख्या का सार अभिनवगुप्त के प्रसिद्ध कथन में विद्यमान है—

'अलौकिकविभावादिव्यपदेशभाग्भिः प्राच्यकारणादिरूपसंस्कारोपजीवनाख्यापनाय विभावादिनानानामव्यपदेश्यैः गुणप्रधानतात्पर्येण सामाजिकधियि योगं (संयोगं) संबन्धम् ऐकाग्रं वा आसादितवद्भिः, अलौकिकनिर्विघ्नसंवेदनात्मकचर्वणगोचरतां नीतोऽर्थः चर्व्यमाणतैकसारः न तु सिद्धस्वभावः, तात्कालिक एव न तु चर्वणातिरिक्तकालावलम्बी, स्थायिविलक्षण एव रसः ।' इसका आशय है कि स्थायीभाव तथा विभावादि की एकता की निर्विघ्न प्रतीति ही से तन्मय सहृदय में जो अलौकिक अर्थ अभिव्यक्त होता है वही चर्वणा का विषय होता है, वह अलौकिक है, तात्कालिक तथा तर्कनिरपेक्ष है और विभावादि पर ही आश्रित है, इसलिए उनकी अनुपस्थिति में इसका अनुभव असंभव है ।

आजकल के रसविवेचकों तथा काव्य-शास्त्रियों की यह धारणा है कि अपने पूर्ववर्ती तथा समसामयिक शास्त्रियों की तरह अभिनव गुप्त ने भी काव्यानन्द का विवेचन एक विशिष्ट दार्शनिक तथा आध्यात्मिक योग-पद्धति को ध्यान में रख करके ही किया है और इस तरह योगी तथा सहृदय की मानसिक क्रियाओं का साम्य इसमें अभिव्यंजित है । अभिनवगुप्त शैवाद्वैतवादी थे और उनके ऊपर उत्पलाचार्य के आभासवाद का काफी प्रभाव पड़ा था । यह 'वाद' वेदान्त के अद्वैतवाद से

कुछ भिन्न है यद्यपि उससे प्रभावित भी है। इसके आदि तत्त्व की संज्ञा है 'महेश्वर' जो समस्त विश्व का बीज अथवा 'अण्ड' रूप है और कई शक्तियों का पुंज है— ये हैं आत्म-प्रकाश, आत्म-ज्ञान, तथा आत्मेच्छा। समस्त विश्व इसी बीज का आभास है और उसकी शक्तियाँ उसी प्रकार प्रस्फुटित होती हैं जैसे सूर्य से किरणें निकलती हैं। आभास के पहले क्रम में 'शिव' तथा 'शक्ति' का प्रादुर्भाव होता है जो 'विमर्श' अथवा 'आनन्द' रूप हैं जिसमें आत्मा अपने ही 'प्रकाश' अथवा 'सत्ता' पर आरूढ़ रहती है। जीवात्माएँ भी इसी महातत्त्व के आभास हैं; परन्तु माया तथा सत्व, रजस् तथा तमस् गुणों से आवेष्ठित होने के कारण वे वासना-जनित सुख, दुःख इत्यादि के संकुचित बन्धन में जकड़ी रहती हैं और आत्मस्वरूप-प्रतीति-जन्य आनन्द या 'विमर्श' से वंचित रहती हैं। जीवात्मा को संकुचित करनेवाले पाँच मुख्य बन्धन हैं—कला, विद्या, राग, नियति तथा काल। जब आत्मा यौगिक क्रियाओं तथा उपायों द्वारा इन माया के सांसारिक बन्धनों का परि-त्याग करके सत्व, रजस् और तमस् के ऊपर उठती है तो 'शिव' अवस्था में पहुँचती है और अपने निर्मल शुद्ध रूप का साक्षात्कार करके 'विमर्श' अथवा आनन्द या 'महायोग' अथवा 'चमत्कार' का आस्वादन करती है। यह आनन्द आत्म-ज्ञान तथा आत्म-साक्षात्कार की ही अभिव्यक्ति है।

अब देखना यह है कि सहृदय पाठक या प्रेक्षक किस क्रम से इस अवस्था तक पहुँचता है। डा० कान्तिचन्द्र पाण्डे ने अपने 'कम्पेरेटिव एस्थेटिक्स', भाग १—'इन्डियन एस्थेटिक्स' में इस क्रम की व्याख्या इस प्रकार की है।[७८] इन्द्रियगत स्थिति, स्वतंत्र कल्पना, भावोन्मेष, शुद्धिकरण, अलौकिक रस-चर्वण तथा आनन्द। सहृदय की मनोदशा का यह क्रम इस प्रकार आरंभ तथा विकासोन्मुख होता है:— सहृदय नाटक देखने के लिए यह सोचकर चलता है कि उसको कुछ क्षण कला के अलौकिक संसार में बिताने हैं जहाँ वह लौकिक कार्य-कारण इत्यादि के वैयक्तिक बन्धनों से मुक्त होकर सौन्दर्य का अवलोकन तथा आस्वादन करेगा। इस उद्देश्य से अभिनय देखने की इच्छा से बैठे हुए सहृदय के ऊपर पहला प्रभाव पड़ता है संगीत का जिससे उसका मन अपनी वास्तविक परिस्थितियों से अन्यत्राकृष्ट होने लगता है और इस नये क्रम की परिपोषक होती है सूत्रधार की प्रस्तावना। इसके पश्चात् अभिनय का आरंभ होता है। नायक के व्यापार तथा स्थायीभावादि का प्रत्यक्ष अनुकरण जो प्रेक्षक की साधारणीकृत मनोदशा में सामान्य तथा अलौकिक प्रतीत होते हैं, जिससे उसके संस्कारजन्य भावों का उद्बोध होता है और वह

[७८] देखिये, पृष्ठ १५४-१७०।

नायक के साथ तादात्म्य स्थापित करने लगता है, परन्तु यह तादात्म्य एक विशिष्ट प्रकार का होता है; क्योंकि इसमें प्रेक्षक स्व-चेतना का निःशेष विलयन नहीं कर पाता। इसके साथ ही साथ यह निर्विवाद तथ्य है कि इस प्रकार की तन्मयता दर्शक को अलौकिक संसार में प्रविष्ट कराती है जहाँ कल्पना सक्रिय होकर उसे केन्द्र ही में प्रतिष्ठापित कर देती है और वह नायक के भावानुभावों से संवेदनात्मक संबंध स्थापित करके उसके सुख में सुखी और दुःख में दुःखी होने लगता है। इस तरह उसकी आत्मा तथा स्थायीभाव का संयोग होता है और चेतना व्यक्तिगत बन्धनों से मुक्त हो जाती है। यह मुक्त चेतना ही रस-चर्वण के योग्य होती है और रसानुभूति आत्मानुभूति का फल है।[७९] यही 'विमर्श' अथवा आनन्द की दशा है जिसमें भावानुभावादि में निहित अलौकिक स्थायीभाव अन्तःकरण में विलीन हो जाता है, जैसे साधक के सामने उपस्थित देवमूर्ति अमूर्तभाव में विलीन हो जाती है। इसलिए रसानुभव लौकिक अनुभवों से विलक्षण है और स्थायीभाव से भी विलक्षण है तथा ब्रह्मानन्द से भी विलक्षण है; क्योंकि ब्रह्मानन्द में आत्मा का स्वय विलयन हो जाता है। परन्तु इस चर्वणा में आत्मा की सत्ता मुख्य तत्व है और विभावादि का संयुक्त रूप भी, क्योंकि वही रसाभिव्यक्ति के साधन हैं। इस तरह सहृदय अन्त में उसी रसमय अवस्था में पहुँचता है जो काव्य-सृष्टि की बीज मानी गई है। अभिनव गुप्त के अनुसार रस एक ही है, परन्तु विभावादि के भिन्न हो जाने से उसकी भिन्न रूपों में अभिव्यक्ति होती है। इस तरह वह भवभूति के मत से सहमत हैं कि जैसे समुद्र के आवर्त, बुद्बुद, तरंग आदि विकारमात्र हैं उसी तरह रस के प्रकार वास्तव में एकही रस के बाह्य विकार हैं। दूसरी बात है सर्व रसों की आनन्दरूपता **'स्वसंविच्चर्वणरूपस्य एकघनस्य प्रकाशस्य आनन्द-सारत्वात्। अन्तरायशून्यविश्रान्तिशरीरत्वात् सुखस्य'**। यद्यपि यह तथ्य प्रायः सर्वमान्य है कि दुःख तथा करुणा भी आनन्द ही के पोषक होते हैं; क्योंकि अलौकिक रूप में साधारणीकृत होने पर शोक के आँसू हर्ष की चरमसीमा के द्योतक होते हैं, तथापि संस्कृत काव्यशास्त्र में इसकी विरोधी परम्परा भी बहुत पुरानी है जिसके अनुसार रस स्थायीभाव की ही अभिव्यक्ति है इसलिए करुणा से दुःख ही उत्पन्न होगा। वामन ने एक पुराना श्लोक उधृत किया है :—

---

[७९] आनन्दो ह्ययं न लौकिकसुखान्तर-साधारणः। अनन्तःकरणवृत्ति-रूपत्वात्।

रसगंगाधर

विभावादिचर्वणमहिम्ना सहृदयस्य निजसहृदयतावशोन्मिषितेन तत् स्थाय्युपहितस्वस्वरूपरूपानन्दाकारा समाधाविव योगिनश्चित्तवृत्तिरुपजायते, तन्मयीभवनमिति यावत्।

करुणप्रेक्षणीयेषु संप्लवः सुखदुःखयोः।
यथानुभवतः सिद्धः तथैवोजःप्रसादयोः॥

इसी तरह 'नाट्यदर्पण'कार रामचन्द्र तथा गुणचन्द्र ने रस को सुख-दुःखात्मक माना है और भोज ने 'रसा हि सुःखदुखावस्थारूपा' कहकर इसका अनुमोदन किया है। इस विवाद के संबंध में हम केवल इतना ही कहेंगे कि अभिनव गुप्त का आनन्द-वाद अनुभव तथा तर्क के अनुकूल होने से अधिक तथ्यपूर्ण तथा ग्राह्य है।

इस प्रकार नाटक में कवि के प्रबंध के अतिरिक्त कुछ बाह्यसाधन भी उपलब्ध हैं जो 'रसनिष्पत्ति' में सहायक होते हैं, परन्तु श्रव्य-काव्य में उन साधनों का अभाव रहता है। संभव है इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए नाटक को ही रस माना गया है और काव्य में इसको सर्वोत्तम स्थान भी प्राप्त हुआ—'काव्यं तावन्मुख्यतो दशरूपकात्मकमेव'। नाट्य का गौरव अभिनय की सफलता पर निर्भर करता है अथवा साहित्यिक या कलात्मक वैशिष्टय के आश्रित है? यह एक विवाद-ग्रस्त प्रश्न है जिसपर यहाँ विवेचन का कोई प्रयोजन नहीं प्रतीत होता है। हम केवल इतना ही कहेंगे कि संसार के सर्वोत्तम नाटकों के पढ़ने पर भी उतनाही आनन्द मिलता है जितना कि रंगमंच पर उनका अभिनय देखने पर और असंख्य ऐसे नाटक हैं जो अभिनय की उत्कृष्टता से लोक-प्रिय हुए, परन्तु थोड़े ही समय में उनका सौंदर्य बर्तन पर सुनहले मुलम्मे के समान सारहीन सिद्ध हुआ और उनकी प्रसिद्धि भी क्षणिक रही। इंगलैण्ड में लैम्ब (Lamb) ऐसे नाटक और अभिनय-प्रेमियों की तो यह दृढ़ धारणा थी कि 'शेक्सपियर' के महान् नाटकों का रहस्य रंगमंच पर अवलोकन से नहीं, अपितु अध्ययन-कक्ष के निरन्तर मनन ही से आस्वाद्य हो सकता है। अभिनय तो हृदय की मूक भाषा को भी सार्वजनिक सम्पति समझ बैठता है।

इसका आशय यह है कि श्रव्य-काव्य में जहाँ कि अभिनय इत्यादि बाह्य साधन प्रस्तुत नहीं हैं, सहृदय पाठक को अधिक जागरूक रहना पड़ता है और उसकी चित्त-एकाग्रता, चिंतनशीलता तथा तन्मयी भावना ही रस-सिद्धि के सबल साधन होते हैं। काव्य के सतत अनुशीलन तथा आस्वादन से उसमें रसिकत्व विकसित होता है जिसके फलस्वरूप नये काव्य का सौंदर्य-रहस्य उसकी पैनी दृष्टि के सामने स्वतः प्रकट हो जाता है। उसे काव्य के विभिन्न अंगों के विश्लेषण के पश्चात् उसके एकत्व पर ही ध्यान केन्द्रित करना पड़ता है और इसी एकाग्रता के बल से वह ध्यानमग्न साधक के समान उस चैतन्यावस्था में पहुँचता है जहाँ काव्यानन्द परमानन्द के बहुत निकट आ जाता है। परन्तु 'इयं च परमब्रह्मास्वादात्

समाधेर्विलक्षणा। विभावादिविषयसंवलितचिदानंदालम्बनत्वात्'। इसके अतिरिक्त ब्रह्मानन्द से रसानन्द इसलिए भी विलक्षण है कि इसमें सभी सहृदयों की एकता का आग्रह रहता है अर्थात् रसिक यह अनुभव करता है कि उसके साथ बैठे हुए 'सामाजिक' भी उसी आनन्द का आस्वादन कर रहे हैं—इस सहकारिता में उसे किसी प्रकार का द्वेष-भाव नहीं होता है।

रस-विवेचन किसी भी दर्शन अथवा भक्ति-मार्ग का आश्रय लेकर क्यों न किया जाय इसके स्वरूप के संबंध में विशेष मत-भेद का स्थान नहीं है। यह सर्वमान्य सत्य है कि काव्यानन्द अलौकिक तथा विलक्षण है और इसकी तुलना किसी अन्य प्रकार के लौकिक सुख से नहीं की जा सकती है; क्योंकि यह आनन्द (अ) व्यक्तिनिरपेक्ष है और स्वतंत्र रूप से सभी सहृदयों के चर्वणा-योग्य है; (ब) यह स्वार्थ, उपादेयता, लाभ-हानि इत्यादि की भावना से मुक्त है और साधन नहीं, अपितु साध्य है, विषय-वासना से निर्लिप्त; (स) यह आनन्द अतीन्द्रिय है तथा मन की उच्च चैतन्यावस्था ही में इसका उद्रेक संभव है। यह निष्काम साधना का फल है; (द) इसका अनुभव क्षणिक होता है परन्तु इसके साधन अर्थात् कला-वस्तु, काव्य या नाटक और उसके विभिन्न अवयवों से संयुक्त रूप हमारे समक्ष विद्यमान रहते हैं और अनुकूल मनःस्थिति तथा एकाग्र चिन्तन से उस अनुभव की पुनरावृति होती रहती है। इसका परिणाम यह होता है कि यह आनन्द कस्तूरी की सुगन्धि के समान पाठक के मन में 'वासित' रहता है।[८०] फूल मुरझा जाता है, परन्तु उसकी सुगन्धि एक अमिट संस्कार छोड़ जाती है; (य) मनोवैज्ञानिकों ने इस अनुभव को 'हिपनोसिस' (hypnosis) की अवस्था से भिन्न बतलाया है; क्योंकि 'हिपनोसिस' में मन की एकाग्रता चेतना को सक्रिय नहीं कर सकती, परन्तु काव्य का अनुभव पूर्ण तुष्टि-प्राप्त जागरूक चेतना का फल है। यहाँ पर कला-वस्तु चेतना की गुरुतम अथवा गहनतम क्रिया का सबल आधार रहती है और अन्त में चेतना स्वयं निश्चेष्ट हो जाती है; क्योंकि अब कोई वस्तु चेतना द्वारा पूर्णतया आत्मसात् कर ली जाती है तो उस पर और चिंतन

---

८० It is the quality of the experience which is lived through in appreciative commerce with the aesthetic object, the whole experience in all its aspects, its richness, its uniqueness, its reverberating profundity, and not merely its pleasure-index, which interests the critics when they assess the worth and beauty of a work of art.

H. Osborne– op. cit. p. 118,

अनावश्यक हो जाता है। इस आत्म-चैतन्य के स्थगन से उस वस्तु से तादात्म्य संभव होता है और जब यह तादात्म्य निर्विघ्न तथा अक्षुण्ण होता है तभी कलात्मक परमानन्द अनुभवगम्य होता है।[८१]

रस की यह व्याख्या बहुत-सी समस्याओं का समाधान आसानी से प्रस्तुत कर देती है। उदाहरण के लिए पाश्चात्य सौंदर्य-शास्त्रियों में यह विवादग्रस्त प्रश्न रहा है कि सौन्दर्य वस्तुनिष्ठ (objective) है अथवा व्यक्तिनिष्ठ (Subjective)। परन्तु रस-विवेचन से यह स्पष्ट है कि काव्य-सौंदर्य जो आनन्द का साधन है वास्तव में उभयनिष्ठ है। कला-कृति की उत्कृष्टता उसके शरीर तथा आत्मा की समन्वित श्रेष्ठता में है। उसमें अर्थ की गरिमा, भावों की उष्णिमा तथा अनुभवों की विविधता तथा अपूर्वता उपयुक्त शब्दों, अलंकारों, प्रतीकों द्वारा अभिव्यंजित होनी चाहिये। उसके साधारण शब्द भी 'गागर में सागर' के समान होने चाहिये जिससे उन पर जितना ही चिंतन किया जाय उतना ही चमत्कार (भाषा तथा भाव दोनों का) प्रस्फुटित हो। इसके साथ ही उसके सभी तत्वों में एक घनिष्ठ, सजीव संबंध हो। इस प्रकार पूरा प्रबंध औचित्य की छटा से आलोकित हो, परन्तु एक-एक अंग रेशम के गोले (skein of silk) के समान हो जिसके उधेड़ने से असंख्य तन्तु प्रकट होते रहें। इस प्रकार की कला-कृति में सौन्दर्य-तत्त्व एक शाश्वत किन्तु प्रच्छन्न शक्ति के समान निहित रहता है, परन्तु इसको अनुप्राणित तथा सजीव करने का काम सुशिक्षित साहित्य-सेवी सहृदय भावक का है। इसलिए भावक का काम सृजन नहीं, बल्कि पुनर्सृजन है। उसी की सक्रिय चेतना सुषुप्त

---

[८१] This experience differs from lapse of consciousness in hypnosis because the latter is caused by concentration upon an object inadequate to activate the faculty of awareness; while the former is a final result of a completely satisfied activation. (p. 154). Here the object is adequate to support intense activation of the whole attention upon it; consciousness lapses because when the object is completely known in awareness there can he no further discrimination or discovery, and since awareness of the self is in abeyance, the awareness which has been attained with the object leads to emotional identification. When such identity is complete and uninterrupted, we have the mystical or aesthetic ecstasy, *Ibid* : p. 153-54.

सौंदर्य को उद्बुद्ध करती है।[८२] भावक अपनी साधना से उस शक्ति को जागृत करके परमानन्द का आस्वादन करता है। तत्पश्चात् दूसरों को भी उससे परिचित कराने का प्रयास करता है। इसीलिए कवि 'शेली' ने कहा है कि काव्य की महान् कृति 'शिव तथा सुन्दर' का एक शाश्वत स्रोत है जो समाज की विभिन्न पीढ़ियों के आनन्द तथा कल्याण के लिए प्रवाहित होता रहता है। इसमें इतनी शक्ति रहती है कि विभिन्न परिस्थितियों से उद्भूत लोगों की बहुरंगी मानसिक आवश्यकताओं की पूर्ति उससे होती रहती है। इसका अर्थ है एक काव्य के अनेक पहलू तथा अर्थ हो सकते हैं जो साधक के स्वभाव तथा आवश्यकता के सानुरूप होते हैं। इसप्रकार काव्य, सौंदर्य का अक्षय भंडार है, परन्तु उसका आविष्कार तथा आस्वादन तो भावक की साधना पर ही निर्भर करता है—'यहि सर आवत अति कठिनाई, राम कृपा विनु आई न जाई'।

दूसरी विचारणीय बात यह है कि कवि का अर्थ भाषा में अभिव्यक्त होते ही तरकश से निकले हुए तीर के समान उसके नियन्त्रण के बाहर हो जाता है और बाहर होते ही उसके नये-नये पहलू स्पष्ट होने लगते हैं। इस तरह एक ही काव्य भिन्न-भिन्न व्यक्तियों को भिन्न-भिन्न अर्थ प्रदान करता है अथवा एक ही व्यक्ति विभिन्न मनोदशाओं में विभिन्न पहलुओं की ओर आकृष्ट होता है, जैसे चन्द्रमा कभी सुखदाई एवं शीतल प्रतीत होता है और कभी हिमांशु होते हुए भी तप्तांशु का फल देता है। इसीलिए यह विधान है कि काव्यानन्द के लिए यह आवश्यक है कि पाठक अपने व्यक्तिगत समस्याओं तथा वासनाओं से ऊपर उठकर स्थिर मन से मनन आरंभ करते हुए उस ऊँचाई पर पहुँचे जहाँ से काव्यगत भावों का पूरा दिग्दर्शन संभव हो और संसार के अन्य पदार्थ एकदम चेतना से विगलित हो जायँ। यही कवि तथा पाठक का हृदय-संवाद है और गंगा-यमुना का संगम, यही वह आध्यात्मिक अवगाहन है जिसमें आत्मा की शुद्धि होती है और सुखद साक्षात्कार।

दूसरा विवादग्रस्त प्रश्न यह है कि काव्य में भाव-पक्ष प्रधान है अथवा उक्ति-पक्ष। प्रश्न के दो रूप हैं; पहला है—भाव या भाषा का अनूठापन और दूसरा है वस्तु (Subject) और शैली का सापेक्षिक (relative) महत्व। काव्य की

---

८२ A work of art is a permanent possibility which is actualized from time to time for this or that person or group of persons.........is actualized when any competent person reads the construct of words which is that work of art. H. Osborne : *Theory of Beauty*—p. 95.

महत्ता भावों के अनोखेपन (novelty) पर निर्भर करती है अथवा उक्ति-वैशिष्ट्य पर ? इस संबंध में अंग्रेजी के प्रसिद्ध विद्वान कीलर-कूच 'Q' का एक सुन्दर विवेचन उल्लेखनीय है। उन्होंने कवि के लोकविदित रूप (Popular conception) पर असहमति प्रकट करते हुए कहा है कि लोग प्रायः यह समझते हैं कि उच्च कोटि का कवि महान् तथा असामान्य भावों को भाषा में अभिव्यक्त करना चाहता है, परन्तु भाषा भाव-बोझिल होने से अटपटी हो जाती है और भाव भी पाठकों की बुद्धि के परे होने के कारण किसी प्रकार की प्रसिद्धि नहीं पाते। परिणाम यह होता है कि उच्चकोटि का मौलिक कवि समाज में तिरस्कृत रहता है। वह रोटी माँगता है; परन्तु पाता है पत्थर और कभी-कभी तो देश से निर्वासित होकर अन्यत्र ही अपनी जीवन-लीला समाप्त करता है। परन्तु कालान्तर में जन-चेतना के विकास के साथ उसके विचार बोध-गम्य होने लगते हैं और शब्दो में नई शक्ति तथा स्फूर्ति प्रस्फुटित होती हैं और इस तरह कब्र में पड़ा हुआ कवि लोगों के उत्साह तथा महत्वाकांक्षाओं का प्रेरक होकर उनके जीवन का एक विशिष्ट अंग बन जाता है।

इसके आगे उन्होंने कहा है कि इस मापदण्ड को मन में रखकर यदि हम यूरोप के ख्याति-प्राप्त कवियों पर विचार करें तो हमें ज्ञात होगा कि 'होमर', 'दान्ते तथा 'शेक्सपियर' ऐसे सार्वभौमिक कवि अपने अनूठे भाव के लिए विख्यात नहीं हुए हैं; क्योंकि उनके भाव तो मानव-जाति के विचारों तथा अनुभूतियों के ही विशुद्ध रूप हैं और उनकी महत्ता इसीमें है कि उन्होंने उन भावों को ऐसी भाषा में अभिव्यक्त किया जो उनका नैसर्गिक अंग हो गई और पाठकों को अनुभव हुआ कि वे भाव उन्हीं शब्दों में व्यंजित किये जा सकते हैं और उनका रूपान्तर असंभव है।

इसी प्रकार हम कह सकते हैं कि कवि का विषय कितना ही महान् क्यों न हो, जब तक उसके उपयुक्त शैली नहीं होगी तब तक उसका रसात्मक रूप संभव नहीं होगा। इस तरह भाव तथा भाषा, वस्तु तथा शैली का अन्योन्याश्रित संबंध होता है और इस विषय में विवाद का कोई अवकाश नहीं है। परन्तु इसके साथ ही साथ यह भी विचारणीय है कि उच्चकोटि के काव्य में भावों का वैविध्य, विचारों की उदारता तथा अनुभूतियों की गहराई संश्लिष्ट होती है और तदनुसार भाषा में घनत्व, विचारों में गरिमा तथा उक्ति में स्फूर्ति आती है और पाठक उन पर निरन्तर मनन करने के लिए बाध्य होता है। ऐसे काव्यों में एक महान् आत्मा का साक्षात्कार होता है जो हमको संकुचित क्षेत्र से ऊपर उठाकर एक ऊँचाई पर

लें जाती है और चेतना का पूर्ण विकास कर के उसे रस-प्लावित करती है। इस विषय में 'वाल्टर पेटर' का कथन स्मरणीय है। उनके लिए कला की पराकाष्ठा संगीत में थी; क्योंकि संगीत में बाह्यरूप तथा आन्तरिक भाव अभेद्य होते हैं और उनका विभाजन असंभव है। ऐसे काव्य को उन्होंने सुन्दर कलाकृति की संज्ञा प्रदान की है। परन्तु इससे भिन्न एक महान् कलाकृति होती है जिसमें मानव-जीवन के सार्वभौमिक तथ्यों का समावेश होता है और लोक-कल्याण तथा सार्वजनिक प्रेम की भावना निहित होती है।[८३] इसी तथ्य का निरूपण करते हुए 'जान रस्किन' ने भी कहा है कि उत्तम कला वही है जिसमें अधिक से अधिक उदार विचारों की अभिव्यञ्जना हुई हो और विचार की उदारता का अर्थ है वह विचार जो पाठक के मस्तिष्क की उच्चतर शक्ति द्वारा ग्राह्य हों और उसको पूर्णरूपेण प्रभावित करते हुए उसे अनुप्राणित करके विकासोन्मुख करे।[८४]

काव्यसौंदर्य, 'चारुत्व' अथवा 'चमत्कार' विकसित शरीर तथा महान् आत्मा का सुखद समन्वय है। इसके लिए यह आवश्यक है कि काव्य का प्रत्येक अंग स्वतःसुन्दर हो; परन्तु वह सुन्दरता अन्य अंगों के अनुरूप हो और सर्वाङ्गीण सुन्दरता का एक उपयुक्त अवयव; परन्तु इस सुन्दर शरीर को सजीव तथा गति-

---

[८३] The distinction between the good art and the great art depends not on its form, but on the matter; if it be devoted to the increase of men's happiness, to the redemption of the oppressed, or the enlargement of our sympathies with each other, or to such presentment of new or old truths about ourselves and our relation to the world as may ennoble and fortify us in our sojourn here...it will also be great art, if over and above those qualities I summed up as mind and soul, that colour and mystic perfume, and that reasonable structure, it has something of the soul of humanity in it, and finds its logical, its architectural place in the great structure of human life.

[८४] But I say that the art is greatest which conveys to the mind of the spectator the greatest number of greatest ideas; and I call that idea great in proportion as it is received by a higher faculty of the mind, and as it more fully occupies and in occupying exercises and exalts, the faculty by which it is received.

शील बनानेवाला भाव ही इस चारुत्व का सार है। इसके न रहने पर तो काव्य-चारुत्व उस स्थिर प्रकाश के समान है जो कभी-कभी मृतक व्यक्ति के मुख पर प्रतीत होता है। इसीलिए हमारे वैदिक ऋषियों ने ईश्वर को ही रस, सौन्दर्य तथा काव्य-शक्ति का मूल स्त्रोत माना और समस्त प्रकृति में उसी सत्ता का विस्तार मानते हुए व्यापक प्रकृति को मधुमय घोपित किया। इसका अर्थ हुआ कि प्रकृति-सौन्दर्य ही परम सौन्दर्य तक पहुँचने के लिए एक सोपान हो गया और सांसारिक जीवन-यात्रा का अन्तिम चरण इसी प्रकृति-आत्मा से तादात्म्य स्थापित करके परमात्मा तक पहुँचने के प्रयास में व्यतीत होता रहा। 'प्लेटो' ने भी सांसारिक सौंदर्य को आदर्शसौंदर्य की एक प्रारंभिक कड़ी माना है और आध्यात्मिक विकास इसी कड़ी से आरंभ होकर दिव्य सौंदर्य की अनुभूति में अवसान प्राप्त करता है।

परन्तु प्रकृति-सौन्दर्य की उपासना द्वारा उसमें निहित आत्मा का दर्शन करानेवाली समाधिस्थ अवस्था के सर्वप्रसिद्ध समर्थक हैं १९ वीं शताब्दी के वरिष्ठ कवि 'वर्ड्सवर्थ', जिन्होंने इस अवस्था का स्पष्ट वर्णन अपने 'टिंटर्न एबे' (Tintern Abbey) नामक प्रसिद्ध काव्य में किया है। उनका कथन उनके व्यक्तिगत अनुभव से संबंधित है; क्योंकि ऐसा अनुभव प्रायः असामान्य ही होता है। उनका स्मरण-कक्ष प्रकृति के सुन्दर पदार्थों के मूर्तिमान् बिम्बों (Forms) से भरा था और लन्दन के घोर जन-कोलाहल से क्षुब्ध होकर वे इन्हीं बिम्बों पर मनन करते थे। इसके फलस्वरूप शान्ति की एक लहर शरीर, हृदय, मस्तिष्क तथा आत्मा में धीरे-धीरे व्याप्त हो जाती थी; संसार के रहस्यों तथा विरोधी तत्त्वों का बोझ भी हल्का हो जाता था; क्योंकि उस समय विश्व-व्यापक एकत्व तथा एक सुनिश्चित विधान (order) का अनुभव होता था। इससे आनन्द का उद्रेक होता था और धीरे-धीरे आत्मा शरीर के बंधन से मुक्त होकर अपनी अन्तर्दृष्टि उन्मीलित करती थी और प्रकृति के आत्मस्वरूप या आभ्यन्तरिक जीवनतत्व की प्रतीति के लिए समर्थ होती थी। उनकी व्याख्या समझने के लिए पूरे काव्य का अध्ययन आवश्यक है। केवल उद्धरण से विशेष लाभ संभव नहीं है।[८५] *

---

[८५] वर्ड्सवर्थ के लिए 'आँख' तथा 'कान' वे मुख्य साधन थे जो मानव-मन तथा प्रकृति में तारतम्य स्थापित करते थे और प्रकृति के आध्यात्मिक चिन्तन के यही मूल आश्रय भी थे। इसलिए दृष्टि-प्रत्यक्ष से आत्मिक-प्रतीति पूर्णरूपेण ग्रथित थी—इन्द्रियाँ अतीन्द्रिय अनुभूतियों की प्रेरक थीं। इसी से उन्होंने प्रकृति-सृष्टि को आँख और कान का महान् साम्राज्य (Mighty

सौंदर्य तथा काव्यानन्द : पाश्चात्य मत

पाश्चात्य समीक्षा-साहित्य तथा दर्शन में काव्यगत आनन्द पर स्वतंत्ररूप से विचार होता रहा है, परन्तु अपने यहाँ की रस-परंपरा के समान वहाँ कोई एक सुनिश्चित पद्धति नहीं रही जो आदि से अंत तक काव्य-विवेचन के मुख्य आधार के रूप में विषम विचारों का समन्वय कर सके। इसलिए भिन्न-भिन्न विचारकों ने व्यक्तिगत रूप से इसकी अभिव्यंजना अथवा व्याख्या की है और उन्हीं में से कुछ विशिष्ट विचारों का संक्षिप्त विवरण नीचे प्रस्तुत किया गया है:—

अरस्तू

यूरोप में काव्य-शास्त्र के वास्तविक प्रवर्तक अरस्तू माने जाते हैं, जिन्होंने अपने 'पोएटिक्स' (Poetics) में काव्य का वैज्ञानिक विधि से अध्ययन किया और बहुत से मौलिक सिद्धान्तों का उनके द्वारा प्रतिपादन हुआ। परन्तु उनका ग्रन्थ संक्षिप्त तथा अपूर्ण है और बहुत से सूत्रों की व्याख्या उसमें उपलब्ध नहीं है। उन्होंने इस मूल-भूत सिद्धान्त का साग्रह समर्थन किया है कि काव्य का मुख्य उद्देश्य आनन्द प्रदान करना है और यह आनन्द काव्य के विभिन्न प्रकारों (ट्रेजेडी, कॉमेडी, महाकाव्य इत्यादि) के सानुरूप होने के कारण अनेक रूप धारण करता है। ट्रेजेडी अथवा दुःखान्त नाटक के प्रसिद्ध विवेचन में उन्होंने कहा है कि इसके उपयुक्त आनन्द के लिए कुछ विशिष्ट बातों का होना आवश्यक है:—

---

world of eye and ear) कहा है। चिन्तन की अन्तिम अवस्था का वर्णन उन्होंने इस प्रकार किया है:—

That serene and blessed mood
In which the affections gently lead us on
Until the breath of this corporeal frame
And even the motion of our human blood
Almost suspended, we are laid asleep
In body, and become a living soul;
While with an eye made quiet by the power
Of harmony, and the deep power of joy,
We see into the life of things.

इस प्रकार द्रष्टा का चैतन्य मन सृष्टिनिहित सामान्य आत्मा का साक्षात्कार करके 'ब्रह्मानन्द सहोदर' का अनुभव कर सकता है। कवि ने इस अनुभव को अनिर्वचनीय तथा अस्थायी ही माना है।

(अ) गम्भीर तथा सुगठित कथानक जिसका अंग-प्रत्यंग एक दूसरे से संबद्ध होकर एक ऐसे सौष्ठव का आविर्भाव करे, जिसके विभिन्न अवयव स्पष्ट होते हुए भी उसकी पूर्णता तथा एकत्व का सहज ही बोध करावें।

(ब) नायक, जो महान् होते हुए भी दर्शकों के समान हो, जिससे उसके साथ तादात्म्य संभव हो सके और उसकी विपत्ति में उन्हें अपने जीवन में भी तत्सम संकट के आने की संभावना परिलक्षित हो।

(स) इसतरह 'करुणा' तथा 'भय' ट्रेजेडी के मुख्य भाव हैं, जो एक दूसरे से संपृक्त होने चाहिएँ क्योंकि यद्यपि नायक की विपत्ति उसके किसी दोष से उत्पन्न होती है, परन्तु उसकी प्रचंडता तथा नायक के अपराध में कोई अनुपात नहीं रहता।

(द) 'ट्रेजेडी' इन मनोभावों का उद्दीपन करके उनका शोधन (Catharsis) करती है।

अरस्तू ने स्वयं 'कैथारसिस' (Catharsis) की व्याख्या नहीं की है यद्यपि अपने 'पॉलिटिक्स' में धार्मिक-उन्माद के नृत्य तथा संगीत द्वारा निवारण की चर्चा करते हुए उन्होंने यह इंगित किया है कि ट्रेजेडी के दर्शक भी एक प्रकार की 'कैथारसिस' का अनुभव करते हैं जो इसी प्रकार की होती हुई भी उससे कुछ भिन्न

---

* रस-सिद्धान्त के विवेचन में हमने अभिनवगुप्त के ही मत का आश्रय लिया है जो कालान्तर में सर्वाधिक सम्मानित हुआ। परन्तु विवेचन की समाप्ति के पूर्व हम उस परिवर्तन की ओर भी संकेत कर देना उचित समझते हैं जो शंकराद्वैत के विकास तथा व्यापकत्व का परिणाम माना जाता है। इस परिवर्तन का आभास तो हमें विश्वनाथ में भी मिलता है, परन्तु इसका पूर्ण रूप पण्डितराज जगन्नाथ के 'रस-गंगाधर' में स्पष्ट होता है। अभिनवगुप्त तथा मम्मट के सिद्धान्त तथा अपने नव्य मत का अन्तर दर्शाते हुए उन्होंने स्वयं कहा है—इत्थं चाभिनवगुप्तमम्मटभट्टादिग्रन्थस्वारस्येन भग्नावरणचिद्विशिष्टो रत्यादि स्थायीभावो रस इति स्थितम्। वस्तुतस्तु वक्ष्यमाणश्रुतिसारस्वेन रत्याद्यवच्छिन्ना भग्नावरणचिदेव रसः'। इसका आशय (डा० नगेन्द्र के शब्दों में) है "अभिनवगुप्त तथा मम्मट आदि के ग्रन्थों के अनुसार 'अज्ञान रूप आवरण से मुक्त, शुद्ध चैतन्य का विषय बना हुआ रति आदि स्थायीभाव रस है' यह स्थिर हुआ। [किन्तु 'र सो वैसः' इत्यादि श्रुति के अनुरोध से] वास्तव में रति आदि स्थायीभाव जिसके विषय हों; ऐसे आवरणमुक्त शुद्ध चैतन्य को ही रस कहना चाहिये न कि चैतन्यविषयीभूत रत्यादि को'।

रस-सिद्धान्त, पृष्ठ १८१

है और इसका विवेचन 'पोएटिक्स' में किया जायगा। 'अरस्तू' का यह दुर्भाग्य है कि उनकी 'कैथारसिस' का विवेचन उनके टीकाकारों की कल्पना पर आश्रित हुआ और उनके नवजागरणकालीन इटालियन समीक्षकों ने इस शब्द को चिकित्सा-शास्त्र की विरेचन-क्रिया का रूपक माना और यह अर्थ निकाला कि जिस तरह शरीर का रोग विरेचन-क्रिया द्वारा दूर किया जाता है उसी प्रकार दर्शक का मानसिक विकार 'ट्रेजेडी' के अवलोकन से दूर होता है और मन की संतुलित अवस्था उत्पन्न होती है। यह एक ऐसा मोड़ था जो 'कैथारसिस' की प्रायः अधिकांश व्याख्याओं को रंजित करने में सफल हुआ और दूसरी व्याख्याएँ इसके सामने गौण हो गयीं। इस परम्परा के विरुद्ध कोई भी व्याख्या अनुपयुक्त ही प्रतीत होगी, परन्तु मेरा निवेदन यह है कि थोड़े से सहजज्ञान (Common-sense) की सहायता से 'अरस्तू' की कैथारसिस की ऐसी व्याख्या संभव है जो रस-सिद्धान्त से सामान्यतः मेल खा सकती है।

'अरस्तू' ने कथानक तथा नायक की सामान्यता पर बल दिया है जिससे दर्शक के लिए साधारणीकरण संभव हो सके। नायक ऐसा व्यक्ति हो जिसके साथ दर्शक का तादात्म्य सहज ही हो सके, क्योंकि अरस्तू ने स्पष्ट कहा है कि 'भय' का उत्पादन ऐसे व्यक्ति की विपत्ति से होता है जो हमारे समान है और 'करुणा' का उद्भव इस ज्ञान से होता है कि नायक का दुःख उसके अपराध से कहीं अधिक है (unmerited suffering)। इसलिए ट्रेजेडी के मुख्य भावसंवेग (passions) दर्शक-नायक के हृदय-संवाद ही पर निर्भर करते हैं और इस संवाद में दर्शक लोक के संकुचित क्षेत्र से ऊपर उठकर कला के विशाल क्षेत्र में पहुँचता है और उसके संस्कारगत 'भय' तथा 'करुणा' विशुद्ध होकर रसास्वादन के माध्यम होते हैं। अरस्तू ने अपने 'रेटरिक' में 'भय' तथा 'करुणा' को 'मिश्रित' भाव कहा है; क्योंकि वे लौकिक जीवन में दुःखतत्त्व से युक्त रहते हैं। परन्तु नाटक के अलौकिक क्षेत्र में उनका शोधन होता है (जैसा कि ट्रेजेडी की परिभाषा से स्पष्ट है) अर्थात् दुःख का मल उनमें से निकल जाता है और फलतः दुःखान्त नाटक भी आनन्द का सबल माध्यम होता है।

यह व्याख्या इतनी सीधी है कि इसकी सार्थकता में किसीको जल्दी विश्वास नहीं हो सकता, परन्तु बाइबिल का कथन है कि सत्य कभी-कभी बच्चों की साधारण वाणी से प्रकट होता है जबकि बड़े-बड़े विद्वान् तथा बुद्धिमान् उसके लिए अपने बुद्धि-जाल में भटकते रहते हैं। इस तरह अरस्तू का सिद्धान्त भरत के रस-सूत्र

से काफी साम्य रखता है यद्यपि यूनानी समीक्षक ने अभिनय का विशेष महत्व स्वीकार नहीं किया है और नाटक के साहित्यिक पक्ष का ही समर्थन किया है।

लाँजिनस (Longinus)

'अरस्तू' के लगभग चार सौ वर्ष पश्चात् रोम-राज्य के स्वर्णयुग में 'लाँजिनस' ने ग्रीक-भाषा में औदात्य के ऊपर अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'ऑन दी सब्लाइम' की रचना की, जिसका एक ही भाग उपलब्ध है और भाव-संवेगों (Passions) से सम्बन्धित अलग विवेचन का पता नहीं है। औदात्य की परिभाषा में उन्होंने कहा है कि यह प्रवन्ध का एक विशिष्ट गुण है जो श्रोताओं या पाठकों के मन को संकुचित दायरे के ऊपर चेतना के मुक्त संसार में पहुँचाकर परमानन्द (Transport or ecstasy) का अनुभव कराता है। इसका प्रभाव वज्रनाद (Thunder bolt) के समान 'झटिति' होता है और उसे कोई भी शक्ति रोक नहीं सकती। इस विशिष्ट आनन्द का कारण पाठक का एक महान् आत्मा से तादात्म्य है जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि वह ओज-पूर्ण कृति उसीकी प्रतिभा की उपज है। इसी कारण शुद्ध औदात्य की प्रतीति मात्र से हमारा मन-मयूर नाच उठता है। इस चमत्कार का कारण यह है कि मानव-मन सहज ही औदात्य-प्रेमी है और यही प्रेम उसके दिव्य (Divine) रूप का परिचायक है। ईश्वर ने मनुष्य की रचना करके उसे इस विशाल संसार में उच्चस्थान प्रदान किया है और उसके मन को इतना उदार बनाया है कि प्रकृति की विभूतियाँ उसकी आकांक्षाओं की तृप्ति नहीं कर सकतीं। इसीलिए मनुष्य स्वभावतः प्रकृति की महान् तथा अद्भुत् वस्तुओं का ही प्रेमी होता है। उसको खेत सींचनेवाली सुन्दर नदी से उतना प्रेम नहीं होता जितना कि विशाल समुद्र की अतल जल-राशि से; वह चूल्हे की अग्नि में कोई रोचकता नहीं पाता है; परन्तु उसका हृदय उल्लसित होता है ऐसे प्राकृतिक चमत्कारों से जैसे आकाश में प्रकटित विद्युत-प्रकाश-सरित (Sheet lightning) अथवा ज्वालामुखी के मुँह से निकली हुई भयंकर अग्निधारा जो एक क्षण में आसपास के पदार्थों को भस्मसात् कर देती है। इस तरह यह बिल्कुल स्पष्ट है कि इस प्रकार का परमानन्द चैतन्य-मन की एक विशिष्ट अवस्था का परिणाम है जिससे मनुष्य किसी महान् शक्ति की प्रेरणा से उद्बुद्ध होता है। इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि ऐसी अवस्था में हम एकदम निष्क्रिय अथवा परतंत्र हो जाते हैं; अपितु अपनी चिर-परिचित संकीर्णताओं से ऊपर उठकर अपनी दिव्य शक्ति का अनुभव करते हैं। जैसे देव-मन्दिर की पुजारिन दैवीप्रेरणा से देवत्व

को प्राप्त हो जाती है और एक क्षण के लिए मानव-इतिहास के भावी दृश्य उसके अन्तश्चक्षु के समक्ष नाच उठते हैं।

औदात्य के पाँच कारणों में दो सहज हैं, जैसे उदार विचार तथा प्रबल भाव और तीन उत्पाद्य हैं—जैसे अलंकारों का उपयुक्त प्रयोग, उचित शब्द-चयन तथा कलात्मक प्रबंध रचना।

उन्होंने ठीक ही कहा है कि उदार विचार महान् आत्मा की प्रतिध्वनि होते हैं और नैसर्गिक होते हुए भी इनका अनुशासित विकास संभव है। ऐसी आत्मा-वाले व्यक्ति को जीवन के तुच्छ कार्यों तथा प्रपंचों से अलग रहते हुए व्यापक दृष्टिकोण अपनाना चाहिये तथा 'काव्य-शास्त्रविनोदेन' कालयापन करना चाहिये। प्राचीन ख्यातिप्राप्त लेखकों का 'अनुकरण' भी लाभदायक होता है, परन्तु अनुकरण का अर्थ उनकी महानता को आत्मसात् करना और उनको प्रतिद्वन्द्वी मानकर क्रियात्मक स्पर्धा में व्यस्त रहना है। यह उत्तम संघर्ष प्रतिभा के उत्कर्ष के लिए अत्यावश्यक है और इसमें विजय तथा पराजय दोनों कल्याणकारी सिद्ध होते हैं। उच्च विचारों के साथ प्रबल भावों का सामंजस्य भी होना चाहिये; क्योंकि भावातिरेक से ही शब्दों में चमत्कार पैदा होता है और उनमें एक उन्मादकारी शक्ति प्रादुर्भूत होती है; परन्तु भाव स्फूर्तिमय होने चाहिएँ जो हमको सक्रिय बनावें। करुणा इत्यादि मृदुभाव तो हृदय में शिथिलता पैदा करते हैं तथा चेतना के उत्कर्ष में साधक नहीं, बाधक होते हैं।

भावावेगों की तीव्रता ही अलंकारों की कृत्रिमता को बहिष्कृत करके उन्हें हृदय की भाषा का एक सहज अंग बनाती है और प्रकृति तथा कला का भेद भी मिटा देती है। भावों की लहर में सैकड़ों अलंकार एक साथ ही तरंगवत् बहते रहते हैं। इस प्राणतत्व से रहित होने पर उदात्त प्रबंध तो वात-ग्रस्त शरीर के समान भद्दा तथा शुष्क प्रतीत होता है। विचारों तथा भावों के प्रकाशस्रोत तो शब्द ही हैं और इन्हीं के चयन तथा संयोजन पर कलाकार की सिद्धि तथा प्रसिद्धि निर्भर रहती है और ये ही उसकी प्रतिभा की कसौटी भी प्रस्तुत करते हैं।

परन्तु सबल तथा उपयुक्त शब्दों की शक्ति उनके संघात (Combination) ही में निहित है और पूरे प्रबंध का साफल्य लेखक के शिल्प-कौशल पर बहुत-कुछ आश्रित रहता है। प्रबंध के विभिन्न तत्व शरीर के अवयवों के समान हैं जो अलग-अलग तो महत्वहीन होते हैं परन्तु कौशलपूर्वक संगठित होने पर उनमें से अपूर्व शक्ति फूट पड़ती है। प्रबंध के रूप-चारुत्व में शब्दों की ध्वनियाँ संगीतलहरी के समान ही प्रभावोत्पादक होती हैं। इन विभिन्न ध्वनियों का सामंजस्य हृदयस्पन्दन

के समान समस्त काव्य-शरीर को अनुप्राणित करता है और उसके विविध अंगों को एक सूत्र में बाँधता है; परन्तु संगीतमयी ध्वनि की भी सफलता प्रच्छन्न रहने में ही है। ज्यों ही यह हमारे कानों को प्रभावित करने का प्रत्यक्ष प्रयास करती है इसका प्रभाव मन्द होने लगता है।

लाँजिनस ने बार-बार कहा है कि औदात्य का प्रभाव स्थायी होता है और यह सभी वर्ग, स्वभाव तथा व्यवसाय के लोगों को एक समान ही स्पर्श करता है; क्योंकि सभी में एक ही दिव्य शक्ति विद्यमान है। लेकिन साहित्य का मूल्यांकन तो परिपक्व विद्वत्ता का अन्तिम फल होता है और इसकी उन्नति तभी संभव होती है जब इसके निर्माता धनलोलुपता से मुक्त हों और लोक-प्रियता तथा ऐश्वर्य, विलास आदि के भुलावे में न पड़कर अपनी कला-साधना में कर्तव्य-निष्ठ रहें।

प्लॉटिनस (Plotinus) २०४-२६८ ई०

'प्लेटो' के बाद 'प्लॉटिनस' पहले दार्शनिक हैं जिन्होंने सौंदर्य का आध्यात्मिक विवेचन किया। अन्तर केवल यह है कि उन्होंने न तो पार्थिव वस्तुओं का तिरस्कार किया और न कला तथा कलाकार पर अत्याचार ही। उन्होंने भारतीय काव्य-शास्त्रियों के समान ही सौंदर्य-साधना को ब्रह्म-साधना की सहोदरा स्वीकार किया और कलाकार तथा दार्शनिक दोनों को समान आदर प्रदान किया। अभिनवगुप्त के समान वे भी आभासवादी थे और उनका परमतत्व, अद्वितीय सत्ता (One) सूर्य के समान ही प्रकाश-पुंज है और सौंदर्य का अमूर्त रूप। इसी एक की सत्ता से अनेक का 'आभास' होता है और सूर्य के प्रकाश के समान यह आभास अपने उद्गम-विन्दु से जितना ही दूर होता है उतना ही इसका दिव्यालोक कम होता जाता है। इस तरह पहले यह अमूर्त एक (One) त्रिमूर्ति का रूप धारण करता है, क्योंकि इसकी पहली सन्तति 'स्पिरिट' (Spirit) और फिर 'स्पिरिट' की सन्तति 'सोल' (Soul) अलौकिक आत्माओं का रूप धारण करती ही। इसी का एक आभास जीवात्मा भी है और इसके भी तीन अंग हैं—अन्तःकरण (Spirit), आत्मा (Soul), शरीर (Body)। आत्मा का शरीर के बन्धन से मुक्त होकर पार्थिव-लोक से ऊपर आध्यात्मिक लोक की ओर अग्रसर होने का नाम ही साधना है। इसकी पराकाष्ठा उस दिव्य अनुभव में होती है जब परम सत्ता का प्रकाश उसके सामने कौंध उठता है और आत्मा उसमें विलीन हो जाती है। यही ब्रह्मानन्द है। इस साधना का पहला चरण है जीवात्मा का शरीर-बंधन से मुक्त होना; इसके बाद बौद्धिक बन्धनों—स्मरण तथा संस्कारों—से मुक्ति होती है। इस प्रकार आत्मा का प्रवेश दिव्य क्षेत्र में होता है जहाँ से मानवता के आन्तरिक रूप

का ज्ञान होता है और इसके बादवाली अवस्था ब्रह्मास्वादन की है जहाँ आत्मा सभी कोटियों से मुक्त होकर केवल ब्रह्म-साक्षात्कार ही में लीन होती है।

सौन्दर्य शिव तथा सत्य से भिन्न नहीं है, इसलिए यह भी साधना की एक विशिष्ट सीढ़ी है जिसका उदाहरण प्लेटो के 'फेड्रस' (Phaedrus) और 'सिम्पाँजियम (Symposium) में मिलता हैं जहाँ सौंदर्य-प्रेमी प्रेमिका के रूप से आरंभ करके दिव्य सौन्दर्य के अनुभवहेतु आध्यात्मिक आरोहण का कठिन व्रत लेने के लिए उपदिष्ट हुआ है। 'प्लॉटिनस' के अनुसार सुन्दर परमसुन्दर के नीचे है और काव्यानन्द का यही चरम लक्ष्य है। परमसुन्दर के निचले स्तर पर द्वैत का आभास रहता है और चेतना यह अनुभव करती है कि उसकी सत्ता है।

जीवात्मा का एक मुख्य गुण है कल्पना, जिसके दो रूप हैं—ऐंद्रिय तथा अतीन्द्रिय। पहले का काम है बाह्य वस्तुओं के संस्कारों को मूर्तिमान् करना, परन्तु दूसरे का मुख्य कर्तव्य है अलौकिक प्रेम (Intellectual Love) के अविच्छेद्य संबंध द्वारा सत्यरूपों (Images of truth) का निर्माण करना। यही आत्मा के उत्कर्ष के साधन हैं। आत्मा में एक अलौकिक स्मरण शक्ति (Recollections) है जो साधारण स्मरणशक्ति (Memory) से भिन्न है; क्योंकि इसी शक्ति के द्वारा आत्मा अपने स्वरूप का साक्षात्कार करती है और मूल-भूत अलौकिकता का ज्ञान जीवित रखती है।

कलाकार किसी बाह्य पदार्थ का अनुकरण नहीं करता, अपितु आत्म-निहित अलौकिक प्रतिमाओं को मूर्तिमान् करता है। काव्य एक अलौकिक अनुभूति से अनुप्राणित रहता है। कलाकार भी साधक है और उसकी साधना के फलस्वरूप ही सुन्दर वस्तुओं में निहित मौलिक आत्म-तत्व के दर्शन होते हैं जिसको कवि अपनी लेखनी द्वारा एक सुन्दर शरीर में प्रतिष्ठापित करता है। सौन्दर्य शरीर-सौष्ठव का पर्याय नहीं है; क्योंकि इसका आधार अंगों का संगठन या सामंजस्य मात्र नहीं होता है। सौन्दर्य तो एक प्रकाश है जो अन्तरात्मा के स्फुरण से पैदा होता है। इसीलिए जीवित शरीर-सौन्दर्य मृत शरीर के सौन्दर्य से अधिक मनमोहक होता है।

इस तरह कलाकृति के दो रूप होते हैं—एक शारीरिक, तथा दूसरा आत्मिक (Spiritual)। आत्मिक सौन्दर्य का साक्षात्कार चर्मचक्षु से नहीं, अपितु अन्तर्दृष्टि से संभव है। इसके लिए भावक में इन सभी बन्धनों से मुक्त होकर तथा सभी व्यापारों अथवा सुख-दुःख की साधारण इच्छाओं से परे एक निष्काम मनःस्थिति अभीष्ट होती है। इस तरह कलात्मक साधना में भी आत्मा धीरे-धीरे सांसारिक

अनुभवों के ऊपर उठती हुई बुद्धि, कल्पना, स्मृति आदि के स्तरों से अग्रसर होकर अन्त में ऐसे स्तर पर पहुँचती है जहाँ इसका शुद्ध रूप निखरता है और यही शुद्ध रूप ही काव्यात्मा के साक्षात्कार का कारण है। यह साक्षात्कार आत्म-स्वरूप की पहचान भी है और काव्य में निहित आत्मा का अनुभव भी। इस साक्षात्कार में आत्मा के सभी मल धुल जाते हैं और एक विशिष्ट प्रकार के आनन्द का उद्रेक होता है जो भारतीय काव्य-शास्त्रियों के शब्दों में 'रस-निष्पत्ति' अथवा 'ब्रह्मानन्द-सहोदर' कहा जाता है जिसका न तो वर्णन ही संभव है और न किसी अन्य वस्तु से उसकी समता ही हो सकती है।

दार्शनिक विवेचक

यूरोप में सौन्दर्य-विवेचन का दार्शनिक रूप १८वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में प्रस्फुटित हुआ और इसका व्यापक तथा गहन अध्ययन 'काण्ट' (Kant) तथा उनके परवर्ती जर्मन दार्शनिकों ने किया, यद्यपि इस अध्ययन पर उनके पूर्ववर्ती विचारकों, जैसे 'वामगार्टन' (Baumgarten) तथा 'वर्क' (Burke) के विचारों की स्पष्ट छाप पड़ी है। काण्ट (१७२४-१८०४) ने अपने तीन प्रसिद्ध किन्तु जटिल ग्रन्थों—क्रिटीक ऑव् प्योर रीजन, क्रिटीक ऑव् प्रैक्टिकल रीजन और क्रिटीक ऑव् जजमेण्ट—में मानव-मन की तीन विभिन्न क्रियाओं तथा उनके क्षेत्रों का विशद वर्णन तथा विवेचन प्रस्तुत किया है, जिसको हम आध्यात्मिक, व्यावहारिक तथा सौन्दर्य-बोधक संज्ञा प्रदान कर सकते हैं। प्रत्येक क्रिया के मूल में कोई विशिष्ट नियम है, जैसे सौन्दर्य-बोध-व्यापार को हम सार्थक प्रयोजन-निरपेक्षता (Purposeful Purposelessness) के सिद्धान्त से अभिप्रेरित मान सकते हैं। किसी बाहरी वस्तु की जानकारी हमको तीन प्रकार से प्राप्त हो सकती है—ज्ञान द्वारा, सुख-दुःख की अनुभूति द्वारा तथा एक अतीन्द्रिय संवेदना के द्वारा, जिसमें कोई वस्तु हमें एक विशिष्ट आनन्द प्रदान करती है; क्योंकि उसमें तथा हमारी बुद्धिवृत्ति में एक रहस्यमय सामंजस्य प्रतीत होता है। इस सामंजस्य की व्याख्या नहीं हो सकती और न हम यही जान सकते हैं कि इस आनन्द-दायिनी सुन्दर वस्तु का कौन-सा पहलू अथवा गुण हमारे आनन्द का कारण है। इस आनन्द-जनित सौन्दर्य का विशिष्ट रूप आभ्यन्तरिक तथा अलौकिक है; क्योंकि (अ) यह सौन्दर्य व्यक्तिनिष्ठ होते हुए भी सामान्य है। अर्थात् इसका अनुभव किसी एक व्यक्ति को हो सकता है, परन्तु वह व्यक्ति स्वयं जानता है कि उसको सुन्दर लगनेवाली वस्तु सभी शिष्ट प्राणियों को सुन्दर लगेगी और जो इस सौन्दर्य-बोध से अनभिज्ञ हैं उनके अन्दर कोई न कोई त्रुटि है, वह सुरुचिपूर्ण नहीं

है। (ब) सौन्दर्य-जनित आनन्द सामान्य होने के साथ ही साथ प्रेय तथा श्रेय के सुख से विलक्षण है। जो वस्तु हमको प्रिय है उसमें इन्द्रियसुख निहित है; क्योंकि वह हमारी वासना अथवा इच्छा की तृप्ति करती है अथवा हमारे लिए उपादेय है। इसी तरह श्रेय-सुख के पीछे भी दूसरों का कल्याण करते हुए आत्म-सुख प्राप्ति का उद्देश्य विद्यमान रहता है; परन्तु सौन्दर्य-वोध में स्वार्थ तथा परमार्थ का कोई उद्देश्य नहीं होता और सुन्दर वस्तु का कोई प्रयोजन भी नहीं ज्ञात होता। हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि यह मानव-मन की किसी अज्ञात आकांक्षा का परितोष करती है। इस तरह सौन्दर्य-जनित अथवा सौन्दर्य-सापेक्ष आनन्द अतीन्द्रिय तथा आभ्यन्तरिक है, इसका अनुभव हो सकता है, वर्णन नहीं। (स) इसीलिए सौन्दर्य-वोध में मनुष्य की अभिरुचि (Taste) का महत्वपूर्ण स्थान है; क्योंकि इस नैसर्गिक प्रवृत्ति से रहित होने पर आनन्द का अनुभव नहीं हो सकता। जैसे सुस्वादु भोजन का अनुभव रसना-स्वादन ही से हो सकता है, उसका वर्णन असंभव तथा निरर्थक है। (द) "कांट के सौन्दर्यवाद की प्रधान विशेषता यही है कि वह स्रष्टा और दृश्य के बीच अज्ञात सामंजस्य के परिणामस्वरूप घटित वेदना को ही सौन्दर्य-वेदना मानते हैं। सौन्दर्य-वेदना मात्र स्वार्थविहीन आनन्द है और व्यक्तिनिष्ठ होकर भी सर्वनिष्ठ होती है। कांट की कमजोरी यह है कि उन्होंने यह बताने की चेष्टा नहीं की कि किसी वस्तु को हम उसके किस परिचायक धर्म के आधार पर सुन्दर कहें? किसी फूल को देखकर हम उसे क्यों सुन्दर कहते हैं इसका कारण हम न तो अपनी व्यक्त मनोवृत्ति में ही खोज पाते हैं और न उपस्थित बहिर्वस्तु फूल ही में। इसका कारण समझाते हुए कांट ने कहा है कि सौन्दर्यानुभूति हमारी **आभ्यन्तरीण** अतीन्द्रिय वृत्ति के साथ बुद्धिस्थ वृत्ति के अलौकिक सामंजस्य का बाह्य फल मात्र है। इस अलौकिक सामंजस्य का विशिष्ट परिचय प्राप्त करने के लिए या उसका रूप समझने के लिए हमारे पास कोई उपाय नहीं है।" 'सर्व-नियंत्रण-निरपेक्ष भाव' से विकल्प (Imaginati on) और बुद्धिवृत्ति की स्वाधीन परम्परानुवर्तिता के लिए पारस्परिक परिचय के परिणामस्वरूप उत्पन्न होनेवाला आनन्द ही सौन्दर्य कहलाता है।"[८६] अर्थात् हम केवल इतना कह सकते हैं कि क्रियात्मक कल्पना तथा बुद्धि के सामंजस्य के फलस्वरूप ही आनन्दबोध होता है; परन्तु इस सामंजस्य का क्या कारण अथवा स्वरूप है इसे समझना असंभव है। यह आभ्यन्तरिक अनुभूति किसी वस्तु के माध्यम से पैदा होती है, इसीसे उस वस्तु को सुन्दर माना जाता है और

---

[८६] देखिये 'सौन्दर्य-तत्त्व', पृष्ठ २०५ तथा २११।

सौन्दर्य उसका विशिष्ट धर्म प्रतीत होता है जो सबके लिए अनुभव-गम्य है। सामंजस्य-बोध पहले होता है और तत्पश्चात् सौन्दर्य का आरोप उस वस्तु पर किया जाता है।

सौन्दर्य के साथ-साथ औदात्य (Sublimity) का विवेचन भी कांट के पूर्ववर्ती तथा समसामयिक विचारकों ने किया था और इसीलिए कांट ने भी इस पर प्रकाश डाला है और 'वर्क' के विचारों से असहमति प्रकट की है। सौन्दर्य-बोध तथा औदात्य-जनित अनुभूति में विशिष्ट अन्तर यही है कि सौन्दर्यानुभूति किसी बाह्य वस्तु और हमारी मिश्रित बुद्धि-कल्पना के सामंजस्य का परिणाम है, परन्तु प्राकृतिक औदात्य का मुख्य धर्म है असंगठितरूपता (Formlessness)। इसलिए यह हमारी कल्पना को स्तम्भित करता है और उसकी शक्ति के परे प्रतीत होता है। मानव-मन अपनी इस असहायावस्था में अतीन्द्रिय ज्ञान-शक्ति (Reason) का आश्रय लेता है; क्योंकि उसका संबन्ध सीमारहित क्षेत्र की अलौकिक वस्तुओं से होता है। इसलिए प्रकृति-वस्तुओं की भयावह विशालता हमारी आत्मगत उस शक्ति का उद्वोधन करती है जिसमें हम संसार के सभी प्राणियों से अपने को विलक्षण समझते हैं। इसलिए सौन्दर्य-बोध में मन शान्त-चिन्तन की अवस्था में रहता है, परन्तु औदात्य-अनुभव में वह गतिशील होता है। ऐसे साक्षात्कार से मन अपनी अलौकिक शक्ति का विस्तार करके गम्भीर वस्तु के ऊपर उठना चाहता है। इस प्रकार औदात्य-बोध में दुःख तथा सुख का संमिश्रण रहता है; परन्तु सौन्दर्य-बोध विशुद्ध आनन्द का फल होता है। इसी तरह का मिश्रित भाव सदसद्विवेकी (Ethical) अनुभव में भी होता है जहाँ आत्म-निर्बलता के साथ ही साथ लौकिक क्षेत्र के ऊपर अलौकिक क्षेत्र में उठने की अपनी क्षमता की भी अनुभूति होती है। इसलिए औदात्य के अनुभव में कल्पना तथा अलौकिक बुद्धि (Reason) का विरोध निहित रहता है। कल्पना की असमर्थता में ही अलौकिक बुद्धि की विशिष्ट शक्ति के व्यापार का कारण उपस्थित होता है।[८७]

---

८७ Just as Imagination and understanding, in judging of the Beautiful, generate a subjective purposiveness of mental powers by means of their harmony, so in this case, Imagination and Reason do so by means of their conflict. That is, they bring about a feeling that we possess pure, self-subsistent Reason or a faculty for the estimation of magnitude, whose superiority can he made intuitively evident only by the inadequacy of Imagination.

इस तरह प्रकृति का भयोत्पादक पदार्थ अथवा दृश्य हमारे मन में उदात्त-भाव को जन्म देता है।

इसके बाद हम कलात्मक सौन्दर्य के क्षेत्र में प्रवेश करते हैं जिसका विवेचन कर्ता तथा भावक दोनों पक्षों से हुआ है। उत्तम कलाकार के गुणों का वर्णन करते हुए कांट ने यन्त्रकला (Mechanical) तथा ललितकला (Aesthetic art) का स्पष्ट अन्तर बतलाया है। ललितकला भी दो प्रकार की होती है—प्रेय तथा सुन्दर। प्रेय-कला, जैसे पाककला इत्यादि, का ध्येय होता है इन्द्रिय-सुख या स्वाद; परन्तु ललित कला (Fine art) का आनन्द अतीन्द्रिय होता है और उसका किसी बाह्य उद्देश्य से संबन्ध नहीं होता। हम केवल इतना ही अनुभव करते हैं कि बाह्य वस्तु तथा हमारी स्वतंत्र कल्पना और बुद्धि से इसका सुखद सामंजस्य है, कलाकार के लिए सृजनात्मक कल्पना (Productive Imagination) तथा बुद्धि (Understanding) का स्वतंत्र साम्य आवश्यक है।[८८] इसका अर्थ है कि कलाकार नियम-मुक्त होते हुए भी कला के नियमों से नितान्त परे नहीं है। यद्यपि उसका नियम-पालन भी सहज तथा अनैच्छिक होता है। वास्तव में प्रकृति मेधा के द्वारा कला को स्वयं व्यवस्थित करती है। मेधा (Genius) कलाकार की वह नैसर्गिक शक्ति है जिसकी सहायता से वह सुन्दर वस्तुओं का सृजन करता है। इसके साथ ही साथ उसमें स्वतंत्र कल्पना (Productive Imagination) का भी होना आवश्यक है जो स्वतंत्र बुद्धि (Understanding) से समन्वित होते हुए भी आबद्ध न हो। इसके परिणामस्वरूप वह बुद्धि द्वारा ग्राह्य भावों या विचारों (Concepts) को मूर्तिमान करने में सफल होगा। यह मूर्ति (Image) भाव का रूपान्तर मात्र नहीं होती; क्योंकि यह कल्पना द्वारा रंजित ही नहीं अपितु अतिरंजित रहती है जिससे एक भाव से अनेक भाव निकल सकते हैं। कलाकृति अनुकृति नहीं होती, वह तो एक आदर्श वस्तु होती है जिसमें प्रतिभाशाली कवि के दिव्य-भाव (Inspired ideas) विद्यमान रहते हैं जो कि अन्य मेधावी लेखकों के मन में उसी तरह के भावों का उन्मीलन करते हैं। मुक्त कल्पना का चमत्कार ही भाव का 'भावन' करता है और काव्य में आत्मा की विशिष्ट आभा का उद्भव भी। काव्य की आत्मा शब्दों में अभिव्यक्त नहीं की

---

८८ Art can only be called beautiful if we are conscious of it as Art while yet it looks like Nature.

K. C. Pandey : *Op. Cit* p. 346 & 348.

जा सकती, इसलिए कवि को व्यंग्यार्थी शब्दों तथा प्रतीकों की आवश्यकता पड़ती है जिसमें अतीन्द्रिय तथा आध्यात्मिक भावों की अभिव्यंजना संभव हो सके।

भावक का विशिष्ट गुण सहृदयता (Taste) है जो मुक्त कल्पना तथा मुक्त-बुद्धि के सामंजस्य से उद्भूत सौंदर्य का बोध कराती है। यह एक व्यक्तिगत अनुभूति होती है, परन्तु व्यक्ति के स्वार्थ तथा भौतिक इच्छाओं एवं व्यावहारिक उद्देश्यों से निर्लिप्त होती है, इसलिए इसका निर्णय सर्वनिष्ठ होता है और जो व्यक्ति इस निर्णय के विरुद्ध होते हैं उनमें इस शक्ति की कमी होती है। काव्य-सौंदर्य की परख सहृदय का मानसिक व्यायाम है जिससे उसका स्तर ऊँचा होता है और मस्तिष्क की शक्तियाँ वल तथा स्फूर्ति प्राप्त करती हैं। इस तरह के व्यायाम से सहृदय भावक उस मनोदशा में पहुँचता है जिसमें कवि ने काव्य-सृष्टि संपन्न की थी। इस प्रकार भावक तथा कवि का तादात्म्य होता है और इस तादात्म्य से एक ऐसे आनन्द का अनुभव होता है जो अलौकिक है और साधारण सुख-संतोष से नितान्त विलक्षण। भावक स्वत्व की संकुचित मर्यादा से मुक्त होकर काव्य के स्वतंत्र संसार में विचरण करता है तथा ऐसे भावों, चित्रों तथा पात्रों का साक्षात्कार करता है जो ईश्वर की सृष्टि में अनुपलब्ध हैं; क्योंकि वे कवि की दिव्य-शक्ति की उपज हैं।

हेगेल (Hegel) (१७७०-१८३१)

कांट के परवर्ती दार्शनिकों तथा कलाशास्त्रियों में हेगेल का विशिष्ट स्थान है; क्योंकि अपने जटिल दार्शनिक विवेचन में उन्होंने कला की विस्तृत व्याख्या समाविष्ट की है और उसमें भारतीय कलाओं का भी निर्देश स्पष्ट है। इसलिए हेगेल की अधिकांश धारणाएँ भारतीय काव्य-शास्त्र के अनेक सिद्धान्तों से साम्य रखती हैं, जिसका एक सर्वाङ्गीण विश्लेषण डॉ० कान्तिचन्द्र पाण्डे के 'कम्पेरेटिव एस्थेटिक्स' भाग २, अध्याय ११; पृ० ६५७ में प्रस्तुत है। उसीका संक्षिप्त विवरण देकर हम संतोष करेंगे; क्योंकि हेगेल के दार्शनिक दलदल में फँसना श्रेयस्कर न होगा।

(१) हेगेल ने अभिनवगुप्त के समान ही स्वीकार किया है कि उच्चकोटि की कलाकृति कला-सौन्दर्य की विशिष्ट अनुभूति का एक मात्र माध्यम है और यह अनुभूति भौतिक स्तर से ऊपर उठते हुए आध्यात्मिक स्तर पर पहुँचनेवाले सहृदय की साधना का चरम लक्ष्य है।

(२) काव्य-शरीर एक आन्तरिक भावप्रेरणा से अनुप्राणित होता है जो उसकी आत्मा है और अभौतिक तथा आध्यात्मिक है।

(३) नाटक के विवेचन में हेगेल ने भरत के समान ही लोकधर्मी तथा नाट्यधर्मी का सामंजस्य स्वीकार किया है और पात्र के भावों की अभिव्यक्ति के लिए कार्य के अतिरिक्त शरीर-भंगियों, इंगितों तथा मुद्राओं इत्यादि को आवश्यक साधन माना है।

(४) काव्य आध्यात्मिक सत्ता की अभिव्यक्ति है, परन्तु यह एक मूर्तिमान व्यक्ति के क्रिया-कलापों द्वारा आभासित होता है। यह धारणा उपनिषद् के 'रसो वै सः' से साम्य रखती है।

(५) भारतीय काव्य-शास्त्रियों के समान ही हेगेल ने भी नट का यह मुख्य कर्तव्य माना है कि वह नायक से तादात्म्य स्थापित करे।

(६) हेगेल ने भी काव्यानुशीलन-जनित अनुभूति को आत्मिक प्रतीति माना है; क्योंकि इसमें स्वरूप से परिचित आत्मा काव्य के बाह्यलोक में पुनः आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करती है। अन्तर यही है कि हमारे यहाँ श्री शंकुक आदि आचार्यों के अनुसार हम नट में ऐतिहासिक नायक की सत्ता आरोपित करते हैं; परन्तु हेगेल का संकेत रूप-सीमातीत परम सत्ता (Absolute) की ओर है। इस सम्बन्ध में यह स्मरणीय है कि उत्पलाचार्य का 'ईश्वरप्रत्याभिज्ञा' सिद्धान्त हेगल का प्रबल समर्थन करता है।

(७) हेगेल का कथन कि कलाकृति किसी ऐसे तथ्य की ओर संकेत करती है जो इसके बाहर है एक प्रकार से 'ध्वनिवाद' का रूपान्तर है।

(८) मम्मट आदि भारतीय आचार्यों के समान हेगेल ने भी प्रतिभा के विकास तथा परिष्कृति के लिए ज्ञान, कौशल तथा अभ्यास का महत्व स्वीकार किया है।

(९) अभिनवगुप्त के समान हेगेल ने भी कवि का अहमत्व-त्याग, विषय के साथ तादात्म्य तथा प्रेम आदि सार्वभौमिक एवं स्वयंसिद्ध तत्त्व, जो परमसत्ता की मूर्तिमान् विभूतियाँ हैं, तथा कलात्मक अभिव्यंजना इत्यादि को काव्य-प्रेरणा का आवश्यक अंग माना है। इसका अर्थ यह है कि कला का उच्चतम उद्देश्य दिव्य सत्ता (Divine) को, उसकी क्रियाओं तथा आभासों द्वारा, अभिव्यञ्जित करना है।

(१०) अभिनवगुप्त तथा हेगेल इस बात से सहमत हैं कि कलात्मक सम्बन्ध अन्य ज्ञानात्मक (Theoretical) तथा व्यावहारिक सम्बन्धों से विलक्षण है। इसमें कर्ता तथा वस्तु (Object) दोनों का साधारणीकरण होना आवश्यक होता है। हेगेल के लिए काव्य-साधना, वैज्ञानिक साधना तथा साधारण प्रत्यक्ष

(perception) से भिन्न है; क्योंकि काव्यगत वस्तु (Material) भौतिक नियन्त्रणों से विमुक्त रहती है।

(११) हेगेल के अनुसार काव्य का स्थान ऐन्द्रीय तथा शुद्ध, सम्बन्धहीन विचार (Pure thought) क्षेत्रों के मध्य में है; क्योंकि इसमें वास्तविकता तथा कल्पना की आदर्शमयी सुषमा का सामंजस्य होता है। इस प्रकार लौकिक वस्तु अलौकिक रूप धारण करती है।

(१२) हेगेल ने इस बात का आग्रह किया है कि काव्य में केवल सामान्य (Universal) भावों का समावेश होना चाहिये; क्योंकि ये ही मूल सत्ता (Absolute) के उपयुक्त तथा बोधगम्य रूपान्तर हैं। कहना न होगा कि यह सिद्धान्त भारतीय विचारधारा का मूल तत्त्व है।

(१३) हेगेल के एक कथन से यह स्पष्ट है कि वे शान्तरस के भी समर्थक थे; क्योंकि उनके मतानुसार काव्य का एक मुख्य कर्तव्य है पाठकों के मन में आभ्यन्तरिक जीवन के वेगों का स्पष्ट रूपांकन करना, चाहे वे भाव-संवेगों तथा अनुभूतियों की तरंगें हों या मन की शान्त स्थिति में दृश्यमान भाव।

(१४) कला, प्रकृति से उच्चतर है; यह अलौकिक तथा आदर्शमयी है; क्योंकि यह चैतन्यमन की सृष्टि है और इससे सभी विषयगत इच्छाएँ तथा वासनाएँ वहिष्कृत हैं।

(१५) कलाकृति भावक की साधना की वस्तु है जैसे योगी के ध्यान के लिए मूर्ति का माध्यम। इसलिए इसके बाह्यांगों—जैसे शब्दों, भावभंगियों तथा चित्रों-इत्यादि के भीतर स्थित आत्मा का साक्षात्कार ही काव्यानन्द है जो कि एक अलौकिक आत्मानुभूति है। इस तरह कलाकृति का सम्बन्ध इन्द्रियों से नहीं, अपितु मन से है और इसलिए सहृदय पाठक को विषय, वासना तथा स्वकीय दृष्टिकोणों से मुक्त होकर इसमें तन्मयता प्राप्त करनी चाहिये। इससे जनित आनन्द अलौकिक तथा आभ्यन्तरिक होता है और इसके लिए भावक आत्मा के लिए चिन्तन द्वारा काव्य-निहित आत्मा की प्रतीति तथा उससे तादात्म्य आवश्यक है।

क्रोचे (Croce) (१८६६-१६५२)

इटली के 'क्रोचे' तथा फ्रांस के 'बर्गसाँ' (Bergson) उन दार्शनिकों में हैं जिन्होंने आज के भौतिकतावादी वैज्ञानिक युग में मनुष्य के आन्तरिक व्यापारों तथा अनुभूतियों को बाह्य संसार के ऊपर प्राथमिकता दी है और इस तरह से उन्होंने

उन आभ्यन्तरिक मूल्यों का महत्व स्वीकार किया है जिन्हें आज की सभ्यता निरर्थक मान बैठी है। इस तरह जर्मनी के आदर्शवादी (Idealistic) दर्शन का पर्यवसान क्रोचे के अभिव्यञ्जनावाद (Expressionism) में हुआ है और इस प्रसंग में कोलरिज का प्रसिद्ध कथन, जिसका हम पहले उल्लेख कर चुके हैं, 'क्रोचे' (Croce) के दृष्टिकोण का प्रारूप माना जा सकता है :—

"हे देवि ! प्रकृति-चिन्तन में हम जो कुछ प्राप्त करते हैं वह वास्तव में हमारे मन की देन है; क्योंकि प्रकृति मानवप्रेमी के जीवन से ही अनुप्राणित होती है। उसका मनमोहक नवोढ़ा का अलंकृत परिधान एवं शोक तथा मृत्यु-सूचक वेश-भूषा हमारे विरोधी मनोभावों, हर्ष तथा शोक, के आभासमात्र हैं"।

इसलिए सौंदर्य प्रकृति का गुण नहीं है। इसका उद्भव तो मानव-मन के आन्तरिक व्यापार पर निर्भर है और मनुष्य की कल्पना तथा मानसिक अवस्थाओं से रंजित होकर ही प्रकृति नानारूप धारण करती है। इसलिए हम कह सकते हैं कि जो वस्तु एक व्यक्ति को सुन्दर प्रतीत होती है वह दूसरे को असुन्दर अथवा कुत्सित दिखलाई पड़ सकती है अथवा वही वस्तु हमको एक समय प्रिय ज्ञात होगी, परन्तु दूसरे क्षण ही मानसिक परिवर्तन के कारण कटुता की उपज करेगी।

'क्रोचे' के कला-सम्बन्धी सिद्धान्तों को समझने के लिए उनकी मानव-मनसंबंधी दार्शनिक मान्यताओं की संक्षिप्त व्याख्या आवश्यक है। क्रोचे ने मानस-व्यापार के दो क्षेत्र माने हैं—ज्ञानक्षेत्र (Theoretical) और संकल्प या कर्म-क्षेत्र (Practical)। दूसरे विभाजन में प्रत्येक के दो विभाग हुए हैं। पहले के (अ) कला या सौन्दर्य सम्बन्धी स्वयंप्रकाश ज्ञान (Intuition), (ब) तर्क सम्बन्धी ज्ञान (Concept)। संकल्पात्मक व्यापार के भी दो भेद हैं (स) आर्थिक या भौतिक उत्कर्ष या कल्याणगत व्यापार (Economic) तथा (द) मंगलाभिमुखी क्रियाएँ (Ethical)। स्वयंप्रकाश ज्ञान (Intuition) मानस का मौलिक स्तर है; क्योंकि मन के सभी व्यापारों की जड़ यही है। यह मूल-भूत स्वयंप्रकाश ज्ञान सबमें होता है, अन्तर केवल न्यूनाधिक परिमाण का होता है। विज्ञान तथा नीति में भी पहले मन की क्रिया उत्पन्न होती है और तत्पश्चात् संकल्प अथवा तज्जनित व्यापार आरंभ होते हैं। स्वयं-प्रकाश ज्ञान कवि या कलाकार का ही विलक्षण गुण नहीं है। मेधावी कवि ऐसा व्यक्ति नहीं है जो स्वर्ग से पृथ्वी पर पके फल के समान टपक पड़ता है।[८९] उसमें तथा अन्य मानव में अन्तर केवल

---

८९ Genius is not something that has fallen from heaven, but humanity itself.

इतना ही है कि उसका यह ज्ञान अधिक व्यापक होता है; क्योंकि वह अपनी निर्माण-शक्ति से बहुत से विखरित संस्कारों (Impressions) को संश्लिष्ट करके मूर्तिमान् कर सकता है और उसकी कल्पना-शक्ति अधिक दूर तक उड़ान भर सकती है। अन्तर केवल व्यापकत्व (Quantitative) का है, न कि गुणत्व या प्रकार (Qualitative) का। क्रोचे के दर्शन में स्वयं-प्रकाश ज्ञान का विशिष्ट स्थान है और इसका पूर्ण परिचय न होने से उनके कलासंबंधी विचारों को समझना कठिन होगा; इसलिए इसका विश्लेषण आवश्यक है।

स्वयंप्रकाश ज्ञान (Intuition) का स्वरूप

(अ) स्वयं-प्रकाश ज्ञान मानव-मन की प्राथमिक क्रिया है, जो शाश्वत है तथा कला का उद्‌गम स्थान। कला स्वयं-प्रकाश ज्ञान है और आत्मा का रूप होने के कारण शाश्वत (Eternal) है। (ब) इसमें बौद्धिक तत्त्व या प्रमा (Concept) का स्पर्श नहीं होता है; यह विशेषावलम्बी (Individual) होता है जबकि प्रमा (Concept) सामान्यावलम्बी (Universal) होती है। (स) स्वयं-प्रकाश ज्ञान कल्पनाप्रसूत होता है और यह मूर्तिमान् (Imagistic) भी होता है। इससे मिलकर प्रमा (Concept) भी इसी के रंग में रंग जाती है। जैसे काव्य-गत पात्र प्रायः दार्शनिक विचारों का आश्रय लेते हैं, परन्तु ये विचार उनके स्वभाव तथा चरित्र के ही अंग हैं, उनकी कोई अलग सत्ता नहीं है। (द) स्वयं-प्रकाश ज्ञान काल तथा देश के नियंत्रण से मुक्त होता है और इन्द्रियगत बाह्य प्रतीतियों से भी यह परे है। बाह्य वस्तुओं के संस्कार मानव-मन में बिखरे रहते हैं, परन्तु जब वे अन्तःकरण की स्वयंभूतक्रिया द्वारा संगठित तथा मूर्तिमान् होते हैं तभी वह स्वयंप्रकाश (Intuitions) की संज्ञा प्राप्त करते हैं। (य) इस मानस-क्रिया के उपकरण नवीन या प्राचीन, बाह्य तथा आन्तरिक इत्यादि प्रकारों के हो सकते हैं, परन्तु मन के लिए उनका अन्तर गौण है। यहाँ मुख्य बात है अमूर्त को मूर्त बनाना तथा विभिन्न तत्त्वों को एकता के सूत्र में अनुस्यूत करना, जिससे वह एक तत्त्व के अवयव मात्र हो जायँ और अपनी सत्ता को एकत्व में विलीन कर दें। (र) स्वयं-प्रकाश ज्ञान का विशिष्ट अंग है अभि-व्यक्ति (Expression), अमूर्त का मूर्तिमान् होना। यह अभिव्यक्ति मन के अन्दर ही होती है; क्योंकि यह कलाकार के, चाहे वह कवि हो या चित्रकार अथवा वक्ता या संगीतकार, दर्शन (Vision) की अभिव्यक्ति है। (ल) इस तरह स्वयं-प्रकाश ज्ञान मन में निहित संस्कारों (Impressions) का परिष्कृत

रूप है और इसका उदय तभी होता है जब कलाकार अपनी मानस-क्रिया द्वारा संस्कारों का पुनर्निर्माण करता है और अव्यक्त को व्यक्त करता है चाहे वह अभिव्यक्ति आन्तरिक भाषा में हो अथवा स्वर, रंग तथा रेखाओं में हों, अभिव्यक्ति के लिए सभी माध्यम समान हैं। (व) यह आभ्यन्तरीण अभिव्यक्ति पूर्ण तथा सफल होने पर एक आन्तरिक प्रकाश का रूप धारण करती है इसीलिए इसको स्वयं-प्रकाश ज्ञान कहते हैं। यह एक स्वतंत्र व्यापार है और बुद्धि तथा निरीक्षण से निर्लिप्त। यह कलाकार का आत्मिक दर्शन (Inner vision) है जिसमें वाह्य तथा आन्तरिक (Form and Content) तत्त्वों का एकत्व होता है और कोई भी स्वयं-प्रकाश ज्ञान (intuition) अनभिव्यक्त नहीं होता। अभिव्यक्ति इसका अवच्छेदक गुण है।[१०] (श) स्वयं-प्रकाश ज्ञान एक प्रकार का ज्ञान है, यह कोरी भावुकता नहीं है। कलाकार के लिए मनन-चिन्तन (Contemplation) भावुकता से अधिक सार्थक है। वास्तव में अनुभूति (Feeling) का कला में कोई विशिष्ट स्थान नहीं है यद्यपि अभिव्यक्ति के समय हृदय उत्साह तथा स्फूर्ति से भर जाता है और इस तरह आनन्द का उद्रेक होता है।[११] अतः कला की विशिष्टता संक्षेप में इस प्रकार है :—

---

[१०] Intuition and expression are inseparable. How can we possess a true intuition of a geometrical figure unless we possess so accurate an image of it as to be able immediately to place it upon a paper or on a slate ?

Sentiments or impressions pass by means of words from the obscure region of the soul into the clarity of the contemplative spirit. In this cognitive process it is impossible to distinguish intuition from expression. The one is produced with the other at the same instant because they are not two but one.' Intuition unexpressed is no intuition.

[११] 'Intuition also is knowledge, though it is free from concepts and is more simple than the perception of the real. Therefore art does not belong to the sphere of feeling or psychic matter, nor to, that of concepts. It has its own independent territory.

Dr. K. C. Pandey *Op. Cit.* p. 505,

(अ) कला स्वयं-प्रकाश ज्ञान की उपज है। यह ज्ञान साधारण मनुष्यों के ज्ञान से अधिक व्यापक तथा वैविध्य-पूर्ण होता है। इसलिए यह एक जटिल तथा गम्भीर आत्मावस्था की अनूठी अभिव्यक्ति है। (ब) कलागत अभिव्यक्ति एक मूर्तिमान् एकत्व (Unity) है, जो वैविध्य के सामंजस्य से पैदा होती है। इसमें नवीन तथा प्राचीन तत्त्वों का सुखद संमिश्रण होता है जैसे पुरानी तथा नई मूर्तियों को एकाकार करने के लिए यह आवश्यक होता है कि पुरानी मूर्तियाँ गलाकर अमूर्त तत्त्व में परिणत कर दी जायँ जिससे नई मूर्ति के साथ उनकी तादात्मीयता संभव हो सके। (स) कलाकृति का प्राणतत्त्व अथवा आत्मा यही अविभाज्य दर्शन (Vision) है जिसका बाद को स्थूल रूपान्तर होता है। चित्रकार या कवि अपनी सौंदर्य-वृत्ति द्वारा जिस वस्तु का अखण्ड दर्शन पाते हैं उसीको भाषा या तूलिका द्वारा प्रकट करते हैं। यह अखण्ड दर्शन विषय-वस्तु (Content) तथा प्रकाशित रूप (Form) में विभाजित नहीं किया जा सकता। वास्तव में प्रकाशित रूप ही सौंदर्य का प्राण है। इसमें वस्तु, आनन्द तथा प्रकाश संयुक्तरूप से एक साथ ही प्रतीत होते हैं। इसलिए कलाकृति का सौंदर्य अखण्ड एकत्व है और इसका खंड-विभाजन इसके स्वरूप का घातक है।[१२] (द) यद्यपि संवेदना (Feeling) मन के एक स्वतंत्र व्यापार के रूप में नहीं मानी जा सकती, तथापि कवि या कलाकार के सौंदर्य-बोध के साथ यह संवेदना भी जुड़ी रहती है। जब तक कवि या कलाकार की गहरी अनुभूति किसी संस्कार को अनुप्राणित नहीं करती तब तक वह मूर्तिमान् नहीं होती और न 'सुन्दर' की कोटि में ही आती है; क्योंकि पूर्ण तथा सफल अभिव्यञ्जना ही सौंदर्य का पर्याय है, असुन्दर वह है जिसकी सफल अभिव्यक्ति नहीं हुई है। इस भावसंवेदनात्मक अनुभव में बाह्य सत्यता अथवा असत्यता अथवा अन्य संबंधों का ध्यान नहीं रहता और न तो अच्छाई अथवा बुराई का ही ज्ञान रहता है। उसकी सफलता दर्शन की स्पष्टता तथा भावों की तीव्रता पर निर्भर रहती है और उसके भावातिरेक के वशीभूत भाव जब कभी उस अनुभूति से ओत-प्रोत हो जाते हैं तभी उसका कार्य पूर्ण सिद्धि

---

[१२] The conception of expression as activity is the indivisibility of the work. Every expression is a unique expression, Activity is a fusion of the impressions in an organic whole...Expression is a synthesis of the various, the multiple in the one...Division annihilates a work as a dividing the organism into heart, brain, muscles, nerves and so on, turns the living being into corpse.

प्राप्त करता है।[९३] (य) इसलिए सौंदर्यानन्द अन्य प्रकार के सुखों से भिन्न होता है और कलागत अनुभूति भी प्रत्यक्ष की अनुभूति से भिन्न होती है। किसी वाह्य कारण से जो भाव या आवेश पैदा होता है वह प्रवल तथा अनियन्त्रित होता है, परन्तु कवि में संवेदनशीलता के साथ ही साथ मन की स्थिरता तथा शान्ति (Tranquillity) भी संयुक्त रहती है जिससे वह प्रवल भावसंवेगों को नियंत्रित तथा सीमाबद्ध रखता है। इसीसे काव्य-गत भाव उन्मादकारी नहीं होते; कवि-प्रतिभा मध्यकालीन वीरों की भाँति भयंकर अजगरों (Dragons) को परास्त करके उनके सुषुप्त शरीर पर पैर रखकर अडिग तथा अजेय दृष्टिगोचर होती है।[९४] (र) कवि की विशिष्टता यही है कि वह अपने पुराने भावों, अनुभवों तथा अनुभूतियों को, जिनकी कि पुनरावृत्ति असम्भव है, कल्पना द्वारा जागृत तथा नव-निर्मित करके अलौकिक तथा अटलरूप प्रदान करता है। जीवन क्षणभंगुर है; किन्तु कला-कृति नित्य तथा अमर होती है। (ल) इसलिए कवि का महत्व उसके व्यक्तित्व ही पर निर्भर करता है; उसकी आत्मा केवल व्यापक ही नहीं, अपितु संवेदनशील भी होती है। उसकी अनुभूति ही काव्यगत अनुभवों को प्रभावशाली बनाती है; क्योंकि केवल कल्पित अनुभव स्फूर्तिहीन होते हैं। इसलिए कवि से उपदेश अथवा कल्पना-विलास उतना अपेक्षित नहीं है जितना कि उसके मनोभावों की तीव्रता, जो भावक के हृदय को आविद्ध करके आनन्दविभोर कर देती है। कवि के व्यक्तित्त्व की स्पष्ट अभिव्यक्ति ही काव्य का प्राण है। इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि कवि अपने संकीर्ण व्यक्तिगत भावना को ही काव्य का आधार बनावे; व्यक्तित्त्व का अर्थ एक व्यापक, मुक्त तथा भाव-संवेगात्मक तत्त्व है जो काव्य के लिए उतना ही अनिवार्य है जितना कि मूर्तिमान् स्वयं-प्रकाश ज्ञान तथा सौन्दर्य-वृत्ति की सक्रियता।

(व) इस प्रकार कवि-व्यापार के चार मुख्य घटक हैं :—

---

[९३] Pure intuition is essentially lyricism......that is to say it can represent. nothing but the states of the soul. And the states of the soul are passionality, feeling, personality which are found in every art and determine its lyrical character.

[९४] That is magic of poetry: the union of calm and tumult, of passionate impulse with the controlling mind, which controls by contemplating. It is triumph of contemplation, but a triumph still shaken by past battle, with its foot upon a living though vanquished foe.

(अ) अन्तःसंस्कार = पुराने अनुभवों का अवशेष, जो मन में रहता है। (ब) अभिव्यञ्जना = इन संस्कारों का आध्यात्मिक तथा अज्ञात क्रिया द्वारा उद्‌बोधन, संश्लेषण तथा रूप-निर्माण = कवि का दर्शन (Vision)। (स) सौंदर्य-बोधजनित आनन्द जो क्रिया की सफलता का एक अंग है। (द) इस आन्तरिक दर्शन का स्थूल रूप में अवतरण जिसे हम कविता, चित्र इत्यादि की संज्ञा प्रदान करते हैं।[९५] इसके लिए कलाकार में कुछ विशिष्ट गुण अपेक्षित हैं :—

(अ) जागरूक इच्छा-शक्ति, जिससे मन के स्वयं प्रकाशित दर्शन तथा मूर्तिमान् संस्कार मानस-पटल में विलीन नहीं होने पाते। (ब) कलासंबंधी ज्ञान, जिससे स्वयं-प्रकाश ज्ञान सफलतापूर्वक रूपान्तरित होता है। (स) चिन्तन, जिसके द्वारा कवि सतत प्रयत्न तथा प्रयास से उपयुक्त शब्दचयन करता है। इस प्रयत्न की अप्रत्याशित सफलता से उसे आनन्द होता है। (द) प्रतिभा या कल्पना-शक्ति, जिसके दो रूप होते हैं—(१) मूर्तिकारक (Image making) ऐच्छिक कल्पना, जो दृष्टि-प्रत्यक्षों का आन्तरिक रूपपरिवर्तन करती है, तथा (२) स्वच्छंद कल्पना, जिसका क्षेत्र विस्तृत तथा बन्धनमुक्त है। बाद के लेखों में क्रोचे का इसी स्वच्छन्द-शक्ति (Fancy) पर विशेष आग्रह रहा है।[९६]

भावक या सहृदय का, जो काव्यानन्द का आस्वादन करना चाहता है, यह कर्तव्य है कि वह अपने मन को आलस्य, रागद्वेष तथा व्यक्तिगत इच्छाओं तथा पक्षपातपूर्ण धारणाओं से विमुक्त करके उसे कलाकृति के एकान्त चिन्तन में केन्द्रित करे और धीरे-धीरे कलाकार के दर्शन का अपने मानस-पटल पर पुनर्निर्माण करे। जिस क्रिया अथवा मानस-व्यापार द्वारा यह पुनर्निर्माण संपन्न होता है उसे अभि-रुचि (Taste) कहते हैं। यह कलाकार की प्रतिभा की सहृदय में समानधर्मा है और इस तरह प्रतिभा तथा अभिरुचि समान हैं। सहृदय को कवि के स्तर पर

---

९५ (a) Impression. (b) Expression or spiritual aesthetic Synthesis. (c) hedonistic accompaniment. (d) translation of the aesthetic fact into physical phenomena (Sounds, tones, movements etc,)

९६ Imagination is the practical artifice or game, played upon that patrimony of images possessed by the soul; where as fancy the translation of practical into theoretical values of the states of the soul into images, is the creation of that patrimony, itself. An image which is not an expression of the soul is not an image.

पहुँचकर उसके अन्तर्मन से तादात्म्य स्थापित करना चाहिए जिससे कलाकार का दर्शन (Vision) उसके मन में अंकित हो सके। इसके लिए मन:स्थिति का समीकरण अनिवार्य है।

कविदर्शन के भावक में स्थानान्तरण के तीन मुख्य क्रम हैं :—

१. कलाकृति के द्वारा सौन्दर्यबोधक शक्तियों का उत्तेजन।

२. कलाकार के अन्तर्दर्शन की भावक-मन में पुन:सृष्टि (Reproduction)।

३. तज्जनित आनन्द।

तीन अंग्रेज विचारक

इस विवेचन की समाप्ति हम तीन अंग्रेज विचारकों—वाल्टर पेटर, टी. एस. इलियट तथा आई. ए. रिचर्ड्स—के सौंदर्य तथा काव्यानन्द संवंधी विचारों के संक्षिप्त विवरण के साथ करेंगे। वैसे तो इधर इस विषय पर बहुत-कुछ कहा और लिखा गया है, परन्तु उसमें अधिकांश या तो अव्यवस्थित है अथवा एकांगी तथा भारतीय विचारों के अननुकूल।

वाल्टर पेटर (१८३९–१८९३)

'वाल्टर पेटर' का संवंध विक्टोरियन साहित्य-शास्त्र के बदलते हुए पहलू से है जब कि फ्रांस तथा इंगलैण्ड दोनों देशों में कला की स्वतंत्रता के लिए आन्दोलन चल रहा था जिसका पर्यवसान 'कला कला के लिए' सिद्धान्त में हुआ। 'पेटर' एक ओर तो कला के समाज-कल्याणकारी पक्ष का समर्थन करते हैं, और दूसरी ओर अपनी 'कथनी तथा करनी' दोनों से इस बात की पुष्टि करते हैं कि कला केवल सौन्दर्य-सृष्टि है और कला-प्रेमी का मुख्य धर्म है सौंदर्य की उपासना। इस उपासना से प्राप्त आनन्द कभी-कभी उमरखय्याम के 'प्यालावाद' अथवा चार्वाक के 'यावत् जीवेत् सुखं जीवेत्' का स्मरण दिलाता है और कभी उस उच्च आदर्श की ओर इंगित करता है जिसके प्रतीक 'मेरियस दी एपिक्यूरियन' (Marius the Epicurean) नामक ग्रंथ के प्रसिद्ध साधक तथा सौन्दर्य-उपासक हैं और वह 'सौंदर्य' व्यापक, वहुमुखी, उदार तथा उदात्त है। 'पेटर' स्वयं एक प्राध्यापक, कला-प्रेमी तथा सांसारिक प्रपंचों से निर्लिप्त व्यक्ति थे, जिनके लिए साहित्य-सृजन तथा विवेचन ही जीवन का मुख्य उद्देश्य था और समाज के दैनिक व्यापारों तथा संघर्षों के प्रति उदासीनता। वे जीवन को भी कला के आदर्श के अनुसार ढालना चाहते थे और उनके एक प्रसिद्ध कथन में इस उद्देश्य की स्पष्ट मीमांसा विद्यमान है—'जीवन को कलात्मक वनाने का अर्थ है उसके साधन तथा साध्य का तादात्म्य; इस दृष्टिकोण का पोषण करना ही कला की मुख्य उपादेयता है। अपने

विचारों को जीवन की साधारण क्रियाओं से हटाकर उपयुक्त भाव-संवेदनाओं (Emotions) के साथ उन महान् तथ्यों पर केन्द्रित करना जो परिचित जीवन-क्रम में असाध्य तथा अप्राप्य हैं।[९७]

यही जीवन को कलात्मक बनाने का रहस्य है; इसमें प्राथमिकता अनुभवों को है न कि अनुभव-जनित परिणामों को। इसका अर्थ है कि कलाकार को जीवन के साधारण व्यापारों के प्रति तटस्थ होकर ही सौन्दर्य-उपासना करनी चाहिये। वह सौन्दर्य बाह्य जीवन तथा प्रकृति में प्रतिपल प्रकट होता रहता है, परन्तु इसकी सत्ता क्षणिक है। मनुष्य-जीवन ही कुछ क्षणों तथा हृदय-स्पन्दनों का योग है, इसलिए इन क्षणों का सर्वोत्तम उपयोग ऐसे क्षणों को आत्मसात् करने में है जिनमें मनुष्य को आत्मिक स्वतंत्रता का अनुभव प्राप्त होता है; उसका हृदय प्रभावशाली भावों से ओतप्रोत होता है और उसका दृष्टिकोण व्यापक तथा उदार हो जाता है। ऐसे क्षणों के प्रति जागरूक रहते हुए रत्न के प्रचण्ड प्रकाश के समान आभ्यन्तरिक आभा से प्रकाशमान रहने का ही अर्थ है सफल जीवन व्यतीत करना।[९८]

---

[९७] To treat life in the spirit of art is to make life athing in which means and ends are identified; to encourage such a treatment is the true moral significance of art and poetry—to withdraw the thought for a while from the machinery of life and fix it with appropriate emotions on the spectacle of those great facts in man's life which no machinery can effect.

[९८] Every moment some form grows perfect in hand or face, some tone on the hills or the sea is choicer than the rest, some mood of passion or insight, or intellectual excitement is irresistibly real and attractive for us, for that moment only. Not the fruit of experience but the experience itself is the end. A counted number of pulses only is given to us of a variegated dramatic life. How shall we pass most swiftly from point to point, and be present always at the focus where the greatest numbers of vital forces unite in their purest energy ? To burn always with this hard gem-like flame, to maintain this ecstasy, is success in life...while all melts under our feet, we may well catch at any exquisite passion, or any contribution to knowledge that seems by a lifted hori-

अपने 'स्टाइल' नामक प्रसिद्ध निबंध में 'पेटर' ने साहित्यकार के मुख्य उद्देश्य तथा व्यापार का विस्तृत विवेचन किया है। उन्होंने ठीक ही कहा है कि साहित्य जीवन की अनुकृति नहीं है और उसका संबंध बाह्य तथ्यों अथवा वस्तुओं से नहीं, अपितु कलाकार के उस दर्शन (Vision) से होता है जो वस्तुओं की अन्तरात्मा में प्रवेश करके उसे अपनी आत्मा से रंजित, परिवर्तित तथा आलोकित करता है। उसकी सफलता इसी अन्तर्दृष्टि के पूर्ण, स्पष्ट तथा आकर्षक अभिव्यक्ति में है। इसके लिए ठीक तथा अनिवार्य शब्दों का चयन तथा प्रबंध के शिल्प-चातुर्य-जनित रूप-सौष्ठव का निर्माण आवश्यक है। उत्तम कलाकृति में बाह्य तथा आभ्यन्तरिक तत्त्वों का एकत्व प्रधान गुण होता है और इसलिए संगीत में कला की पराकाष्ठा पाई जाती है और ललित कलाओं में उसका मूर्धन्य स्थान है।

'पेटर' के अनुसार साहित्य-साधक का मुख्य गुण है सौंदर्य-वृत्ति की जागरूकता, जो कला तथा काव्य के निरन्तर अनुशीलन तथा चिन्तन से इतनी तीव्र तथा संवेदनशील (Sensitive) होती है कि सौंदर्य के सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप-विलास भी इसकी पकड़ के बाहर नहीं रह सकते। इस तरह का सहृदय भावक अपने मन को साहित्य-कृति में एकाग्र करके उसकी विशिष्टता का अनुभव करता है। उसका मुख्य उद्देश्य होता है कवि या कलाकार के अनोखे व्यक्तित्व का साक्षात्कार, इसके बाद वह उस अनोखे तत्त्व को साधारण तथा अनावश्यक अंगों से अलग करता है तथा उसको अपने उपयुक्त शब्दों में पाठकों के लाभार्थ चित्रित करता है। इस प्रकार सहृदय भावक भी कवि के समान ही सृष्टि-कार्य में संलग्न रहता है। यदि साहित्य लेखक के जीवन-संबंधी अथवा अनुभवगत भावों तथा अनुभूतियों का परिणाम है तो समीक्षा कलाकृति-चिन्तन से प्राप्त भावक के अनुभवों की प्रबल तथा परिष्कृत अभिव्यक्ति है। अपने चिन्तन द्वारा भावक भी उस स्थान पर पहुँचता है जहाँ से कलाकार ने अपने सृष्टि का क्रम आरंभ किया था और इसी बिन्दु पर दो आत्माओं का सुखद सम्मिलन होता है।

इस विवेचन का निष्कर्ष यही है कि काव्य-संसार वास्तविक जीवन से भिन्न है; क्योंकि इसमें सभी वस्तुएँ एक सुनिश्चित अनुशासन के अन्तर्गत होती हैं और हमारे मन को दैनिक बन्धनों तथा संकीर्ण विचारों से मुक्त करती हैं। हम जीवन

---

zon to set the spirit free for a moment.... What we have to do is to be for ever curiously testing new opinions and counting new impressions, never acquiescing in a facile orthodoxy etc.

के अनुभवों का जो कि अलौकिक रंग से रंजित हैं, एक तटस्थ व्यक्ति की भाँति अवलोकन तथा विश्लेषण करते हुए कलाकार के व्यक्तित्व से संपर्क स्थापित करते हैं जिसका परिणाम होता है मानसिक उन्नयन, उद्दीपन तथा परितोष, जो क्षणिक होते हुए भी अलौकिक आनन्द की कोटि में आता है। पेटर के लिए भी काव्य-साधना या बोध एक स्वतंत्र अनुभव है जिसका मानसिक जीवन पर प्रबल प्रभाव पड़ता है; इसलिए काव्य या कला को धर्म, नैतिकता तथा सामाजिक 'वादों' के प्रपंच में डालने का अर्थ होगा इसकी सत्ता का हनन करना।

टी० एस० इलियट

आधुनिक कवियों तथा समीक्षकों में 'टी० एस० इलियट' का स्थान अत्यन्त उच्च है और उनकी रचनाओं में प्रकाण्ड पाण्डित्य तथा गम्भीर चिन्तन का असाधारण समन्वय है। यहाँ उनके सभी सिद्धान्तों की मीमांसा अभीष्ट नहीं है। हम उनके काव्य-साधना संबंधी उन्हीं विचारों का उल्लेख करेंगे जो भारतीय सिद्धान्तों, विशेषकर काव्यानन्द के स्वरूप-विवेचन से साम्य रखते हैं। दूसरे अध्याय में हमने उनके कुछ विचारों की व्याख्या की है और वह व्याख्या प्रस्तुत विवेचन का प्रारूप मानी जा सकती है। व्याख्या की संक्षिप्त टिप्पणी इस प्रकार की जा सकती है :—

(अ) काव्य-रचना निर्वैयक्तीकरण की प्रक्रिया है, जिसका अर्थ है कवि की निजी व्यक्तित्त्व तथा भाव-संवेगों से मुक्ति। इस क्रिया में कवि की अनुभूतियाँ, जो उसके ऊपर 'हावी' रहती हैं, कलात्मक भावों का रूप धारण करती हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि कवि स्वयं तटस्थ भाव से उनका साक्षात्कार तथा निरीक्षण कर सकता है और अपने पाठकों को भी ऐसा करने का अवसर प्रदान करता है।

(ब) कवि व्यक्तिगत भावों को कला के माध्यम से परिवर्तित तथा परिमार्जित करके उनमें निहित सामान्य तत्त्वों (Universal essence) की अभिव्यक्ति करता है, जिसके फलस्वरूप उसके काव्य का प्रभाव हृदय के उन्माद के रूप में नहीं, अपितु चेतना के उद्बोधन के रूप में प्रकट होता हैं; क्योंकि हम उन भावों से अवगत होते हैं और उन पर मनन-चिंतन करते हैं। इस प्रकार काव्य का काम भाव-प्रतीति है, न कि केवल भावोत्तेजन।

(स) काव्य-कला की प्रौढ़ता का निकष हृदय तथा मस्तिष्क का समन्वय है, जिसको पूर्णरूपेण आत्मसात् करने के लिए पाठकों में चेतनता तथा जागरूकता अपेक्षित होती है। कवि-प्रतिभा तथा कौशल की सार्थकता इस बात पर निर्भर

करती है कि उसकी कृतियों में व्यापकत्व अथवा वैविध्य के साथ ही मौलिक एकत्व विद्यमान रहता है। जीवित भाषा तथा स्फूर्तिमय प्रतिभा का भेदक तत्त्व उनकी पाचन-शक्ति है जिसके द्वारा नये तथा पुराने विचार एवं जीवन के विरोधी तत्त्व समन्वित होकर एक हो जाते हैं।

(द) कवि-कर्म अत्यन्त कठिन एवं कष्टकारी होता है; क्योंकि वह निरंतर परिवर्तन-शील तत्त्वों—शब्द, अर्थ तथा ध्वनियों, को संश्लिष्ट करके उन्हें एक सुनिश्चित तथा स्थिर व्यवस्था के अधिकृत करता है और इस प्रकार जीवन के सारहीन वस्तुओं से एक शाश्वत कलाकृति का निर्माण होता है जिस पर मनन-चिन्तन करने से हमारे ऊपर वही प्रवल प्रभाव पड़ता है जो अनन्त की कल्पना से प्रादुर्भूत होता है। इसीलिए 'जान कीट्स' ने एक यूनानी कला-वस्तु (Grecian urn) को सम्बोधित करते हुए कहता है कि 'तुम्हारे चिन्तन से मेरा मन उतना ही व्यग्र तथा किंकर्तव्य-विमूढ़ हो जाता है जितना कि 'अनन्त' (Eternity) की कल्पना से; क्योंकि 'अनन्त' 'अगम तथा अगोचर' हैं। इसीलिए 'इलियट' ने कवि-कर्म अर्थात् भाव को लिपि-बद्ध करने की कष्टकारी क्रिया की उपमा 'प्रसव' कार्य से दी है।

अपने दार्शनिक तथा धार्मिक काव्यों में, जिसकी पराकाष्ठा उनकी प्रौढ़तम 'फोर क्वार्टेट्स' (Four Quartets) नामक कविता में प्रत्यक्ष है, उन्होंने कवि तथा साधक के साम्य पर आग्रह किया है। यहाँ चिन्तन का मूल विषय है, वह स्थिर-विन्दु (Still Point) जो 'काल' (Time) तथा 'अनन्त' (Eternity) का संक्रान्ति-केन्द्र है अथवा जहाँ 'काल' की रेखा 'अनन्त' की रेखा को स्पर्श करती है। धार्मिक शब्दावली में यह केन्द्र-बिन्दु ईसामसीह का अवतार (Incarnation) हैं; क्योंकि इसी अवतार में अनन्तसत्ता ने साधारण मानव का रूप धारण करके अपने को ससीम तथा मर्त्य बनाया। इस प्रकार 'मसीह' काल-गत होते हुए भी काल-चक्र के ऊपर हैं और इस परिवर्तनशील जगत में वही एक मात्र स्थिर केन्द्र-बिन्दु हैं।[९९]

इस 'अवतार' की व्याख्या एक दूसरे प्रकार से भी की गई है। 'अवतार' का अर्थ है निराकार 'शब्द' रूप ब्रह्म का साकार होना।[१००] इसलिए 'मसीह'

---

[९९] The *Word* without a word, the *Word* within
The world and for the world;
Against the world the unstilled world still whirdle.
About the centre of the silent *Word*.

[१००] In the beginning was the *Word*, and the *Word* became the flesh.

स्थिर शब्द के पर्याय हैं जो संसार के सतत परिवर्तन-शील आदि शब्दों का या मूल रूप हैं। अपने यहाँ 'विस्फोट' की कल्पना बहुत-कुछ इस विचार के अनुकूल है। जिस प्रकार समस्त परिवर्तनशील जगत् ब्रह्म का बाह्य 'आभास' या परिधान है, उसी प्रकार भाषा के अस्थिर शब्द-समूह उस एक पुरातन तथा स्थिर परम 'शब्द' के 'आवर्त, बुद्बुद, तरंग' मात्र हैं।[१०१] इसलिए काव्य, जिसमें ये परिवर्तन-शील तत्त्व निश्चल रूप धारण करते हैं, हमारी साधना का विषय हो सकता है। साधक या योगी इस अव्यवस्थित जगत् के ऊपर उठने के लिए किसी स्थिर-विन्दु पर मन केन्द्रित करता है और चिन्तन द्वारा ऐसी मनोदशा को प्राप्त होता है जिसमें शरीर के बन्धन एक क्षण के लिए विगलित हो जाते हैं और उसका मन उस सफल नर्तक के समान हो जाता है जिसका नृत्य गति के बीच पूर्ण स्थिरता का बोध कराता है।[१०२]

साधारण व्यक्तियों के लिए भी इस प्रकार के अनुभव संभव होते हैं, यद्यपि वे क्षणिक तथा दुर्लभ होते हैं। 'इलियट' ने कहा है कि प्रायः बीमारी की अवस्था में अथवा सबेरे के समय जब 'मन' पूर्ण चेतना को प्राप्त नहीं होता है हमको एक क्षण के लिए ऐसा अनुभव होता है कि संसार की बाह्य अव्यवस्था अथवा दुर्व्यवस्था के अन्तर में एक सुनिश्चित व्यवस्था निहित है जिसका ज्ञान ही जगत्-व्यापार को

---

१०१ Words strain,
Crack and sometimes break, under the burden,
Under the tension, slip slide, perish
Decay with imprecision, will not stay in place
will not stay still.

But out of the sea of sound the life of music
Out of the slimy mud of words, out of the sleet and
hail of verbal imprecision,
There spring the perfect order of speech,
—and the beauty of incantation.

१०२ At the still point of the turning world,
Neither flesh nor fleshless
Where past and future are gathered
Except for the point, the still point
There world be no dance, and there is only the dance.

सार्थक बनाता है।[१०३] जिस प्रकार 'मसीह' के अवतार से कालग्रस्त मानव-जीवन सार्थक हुआ।[१०४]

इस कथन का आशय है कि व्यवस्था का ज्ञान मन की शान्ति के लिए अत्यावश्यक है और यह ज्ञान हमको तभी प्राप्त हो सकता है जब कि हमारा मन दैनिक जीवन की 'भूलभूलैया' से निर्लिप्त होता है। काव्य-व्यवस्था का एक सबल माध्यम है; क्योंकि इसमें शब्द, अर्थ, ध्वनि के विभिन्न तत्त्व एकता के सूत्र में बँधकर नर्तक-युगल के समान हो जाते हैं और इस एकत्व से उद्भूत संगीत उस 'चीनी घड़े' के समान होता है जो गति तथा नीरवता एवं निश्चलता का समन्वय प्रतीत होता है। इसलिए 'इलियट' ने स्पष्ट कहा है कि काव्य तथा कला का यही चरम लक्ष्य है कि वे परिचित वास्तविकता के ऊपर निश्चित व्यवस्था का आरोप करके पाठकों को साधारण जीवन के अन्तर्गत भी एक 'व्यवस्था' का साक्षात्कार करने की क्षमता प्रदान करें जिससे उनका मन शान्ति, स्थिरता तथा विरोधोपशम का अनुभव कर सके।[१०५]

आई. ए. रिचर्डस्

आज का पाश्चात्य समीक्षा-साहित्य दो विचारकों का विशेष ऋणी है, जिनमें एक हैं 'टी. एस. इलियट' और दूसरे हैं 'आई. ए. रिचर्ड्स'। दोनों के विचारों का साम्य तथा वैषम्य स्पष्ट है और उनकी व्याख्या भी हो चुकी है। इसलिए इसका संक्षिप्त ही विवेचन करके हम विषय में प्रवेश करेंगे। दोनों विचारकों ने इस वैज्ञानिक तथा भौतिकतावादी, अर्थोपासक युग में काव्यगत तथा सांस्कृतिक मूल्यों का सबल समर्थन किया है और दोनों ने काव्य में विविध तथा परस्पर विरोधी

---

१०३ Only by the form, the pattern,
Can words and music reach.
The stillness, as a Chinese jar still
Moves perpetually in silence.

१०४ A moment in time but time was made through
that moment.
For without the meaning there is no time, and
that moment of time gave the meaning.

१०५ It is ultimately the function of art, imposing a credible order upon ordinary reality, and thereby eliciting some perception of order in reality to bring us to a condition of serenity, stillness and reconciliation.

तत्त्वों के समुचित समन्वय को उसके गौरव का मापदण्ड माना है। इसका अर्थ है 'कोलरिज' की प्रसिद्ध उक्ति का अनुमोदन तथा समर्थन जिसके अनुसार कवि अपनी आत्मा की सभी शक्तियों के संयुक्त प्रयास से ही अपने व्यापार में सफल होता है और बौद्धिक तथा भावात्मक तत्त्वों का विभाजन काव्य के लिए अहितकर है। सारांश यह है कि काव्य-साधना पाठकों के सभी अंगों का पोषण करती हुई उसके आन्तरिक जीवन को शुद्ध (Refined) तथा परिष्कृत रखती है और ऐसी मनःस्थिति पैदा करती है जिसमें वे अपनी संकुचित भावनाओं से ऊपर उठकर एक व्यापक तथा संतुलित दृष्टिकोण अपना सकते हैं।

परन्तु यह स्मरणीय है कि 'इलियट' तथा 'रिचर्ड्स' मूलतः एक दूसरे से भिन्न हैं। 'इलियट' ने परम्परागत कतिपय समीक्षा-सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हुए अपनी सूक्ष्म बुद्धि तथा व्यापक साहित्य-ज्ञान एवं अनुभव के बल से अनेक लेखकों तथा उनकी कृतियों का गम्भीर विवेचन किया है। इसके विपरीत 'आई. ए. रिचर्ड्स' की प्रसिद्धि उनकी समीक्षा-पद्धति की मौलिकता पर आश्रित है। वे ऐसे समीक्षक हैं जिनमें साहित्य के व्यापक अनुभव के साथ ही गहन दार्शनिकता तथा वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक मान्यताओं का अनुपम संयोग है। उनकी भाषा वैज्ञानिक है, उसमें शब्दों की सटीकता पर विशेष आग्रह है और साहित्यिक चारुत्व एवं बाह्यालंकारों का बहिष्कार। उनकी मूल धारणा है कि विज्ञान के इस असांस्कृतिक वातावरण में काव्य ही व्यक्ति तथा समाज की आत्मा को त्राण प्रदान कर सकता है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि 'मैथ्यू आरनल्ड' के समान वे कविता को धर्म का स्थान देना चाहते हैं अथवा धार्मिक विचारों को भावात्मक बनाकर काव्य द्वारा मानव-समाज का आध्यात्मिक उत्थान संभव समझते हैं। उनकी समीक्षा-व्यवस्था मनोविज्ञान के तथ्यों पर आधारित है और उन्होंने ऐसी भाषा का प्रयोग किया है जो हमारे वैज्ञानिक युग के लिए उपयुक्त तथा बोध-गम्य है। उनका विशेष आग्रह काव्य के प्रभावों पर है और उन्होंने इस बात को सिद्ध करने का प्रयास किया है कि काव्यानुशीलन द्वारा पाठक ऐसी मनःस्थिति का विकास कर सकते हैं जो उनके वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन के लिए उपयोगी एवं सुखकर सिद्ध हो सकती है। इस मनोदशा की व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा है कि मानव-मन में कई परस्पर विरोधी प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं जिनमें दो प्रबल तथा विरोधी प्रवृत्तियों को हम 'आकांक्षा' (Appetencies) तथा अरुचि अथवा 'अनिच्छा' (Aversion) की संज्ञा दे सकते हैं। संतुलित जीवन के लिए यह आवश्यक है कि इन विरोधी प्रवृत्तियों का ऐसा

सामंजस्य हो कि सभी अपना पूर्ण व्यापार करते हुए दूसरों के कार्यों में व्यवधान न उपस्थित करें और न उन्हें कुण्ठित एवं निष्क्रिय वनावें। ऐसी मनोदशा को 'आइ. ए. रिचर्ड्स' ने 'साइनेस्थेसिस' (Synaesthesis) की संज्ञा दी है और इसीमें काव्य के मूल्य (Value) तथा सौंदर्य का समावेश हुआ है। उन्होंने जर्मन दार्शनिक 'कांट' तथा उनके परवर्ती सौंदर्यशास्त्रियों, जैसे 'क्लाइव वेल' तथा 'रीजरफ़ाई' इत्यादि की इस धारणा का खण्डन किया है कि मानव-मन में सौंदर्य-बोध की एक अलग शक्ति होती है और सौंदर्यानुभूति अन्य अनुभवों से अलग या भिन्न है। अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'द प्रिंस्पुल्स ऑव लिटरेरी क्रिटिसिज्म (*The Principles of Literary Criticism*) के पहले अध्याय में सौंदर्य तथा मूल्य (Value) संवंधी पुरानी मान्यताओं का खण्डन करके उन्होंने अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है कि 'सौंदर्य' नाम का अलग तत्त्व मनोविज्ञान को अमान्य है तथा काव्यानुभव और अनुभवों से भिन्न नहीं है, अन्तर है केवल गहनता (Intensity) या परिमाण का, न कि प्रकार (Kind) का।

इस खण्डन-व्यापार द्वारा 'रिचर्ड्स' महोदय ने अपने नये सिद्धान्त का मार्ग प्रशस्त किया है और पुस्तक के शेष भाग में साइनेस्थीसिस (Synaesthesis) अथवा मन की संतुलित अवस्था का विवेचन किया है यद्यपि इस पारिभाषिक शब्द का प्रयोग उनके 'फाउण्डेशन ऑव एस्थेटिक्स' (*Foundation of Aesthetics*) ही में हुआ है। उनकी धारणा है कि मानव-मन में उचित प्रभावों द्वारा इस तरह का संतुलन अपने आप हुआ करता है, परन्तु कला तथा काव्य इसके विशेष प्रेरक हैं। इसी प्रकार के संतुलन द्वारा हमें सौंदर्य का तथा तज्जनित आनन्द का अनुभव होता है[१०६]। 'रिचर्ड्स' की इस व्याख्या के पीछे 'न्यूरोलाजी' (स्नायु-

---

[१०६] A complete systematization must take the form of such an adjustment as will preserve free play to every impulse, with entire avoidance of frustration, In any equilibrium of this kind, however momentary, we are experiencing beauty. We pass as a rule from a chaotic to a better organized state by ways which we know nothing about. Typically through the influence of other minds, literature and the arts are the chief means by which these influences are diffused. It should be unnecessary to insist upon the degree to which high civilization, in other words, free, varied, unwasteful life, depends upon them in a numerous society.

मंडल विज्ञान) तथा गेस्टाल्ट (Gestalt) मनोविज्ञान का विशेष प्रभाव स्पष्ट है। मानव-मस्तिष्क स्नायु-मंडल से संयुक्त है और स्नायु-मंडल पर वाह्य तथा आन्तरिक प्रेरणाओं (Stimuli) का निरन्तर प्रभाव पड़ता रहता है और इसके फलस्वरूप स्नायु-मंडल अपने को उन प्रेरणाओं के अनुकूल बदलता रहता है जिससे यथासंभव विरोधी तत्त्वों का संतुलन हो जाय। सभ्यता के उत्कर्ष के साथ इन विरोधी तत्त्वों में जटिलता आ जाती है और संतुलन का कार्य अत्यन्त कठिन हो जाता है।

इस परिस्थिति का विस्तृत वर्णन 'साइन्स एण्ड पोयट्री' में एक वैज्ञानिक उपमा द्वारा स्पष्ट किया गया है। मान लीजिए, हम एक चुम्बकीय कम्पास (Compass) शक्तिशाली चुम्बकों के पास ले जाते हैं। हमारे चलने के साथ ही सूई भी इधर-उधर घूमती रहेगी, परन्तु ज्यों ही हम किसी नई स्थिति में खड़े होंगे सूई का मुँह नई दिशा में स्थिर हो जायगा। यदि इससे भी जटिलयन्त्र, जिसमें छोटी-बड़ी कई सुइयों की व्यवस्था हुई है, चुम्बकों के समीप लाया जाय तो सूइयाँ भिन्न-भिन्न प्रकार से घूमती हुई एक-दूसरे को प्रभावित करेंगी और पूरे यन्त्र में एक अत्यन्त जटिल आन्दोलन (Pertusbation) पैदा हो जायगा, परन्तु हम यन्त्र को किसी भी स्थिति में क्यों न रक्खें उसमें एक स्थिरता की अवस्था पैदा होगी जिसमें सूइयों का एक क्षणिक संतुलन संभव होगा। मानव-मस्तिष्क की भी यही व्यवस्था है; जिसमें हमारे स्वार्थ (Interests) सूइयों के समान हैं जिनमें पारस्परिक संघर्ष, संतुलन तथा उनका विघटन होता रहता है। कभी-कभी नई परिस्थितियों में मस्तिष्क इतना क्षुब्ध तथा अशान्त हो जाता है कि इसका प्रभाव वर्षों तक स्थायी रहता है।[१०७]

---

[१०७] The mind is not unlike such a system if we imagine it to be incredibly complex. The needles are our interests, varying in their importance, that is, in the degree to which any movement they make involves a movement of other needles. Each new disequilibrium, which a shift of position, a fresh situation, entails, corresponds to a need and the wagglings which ensue as the system rearranges itself are our responses, the impulses through which we seek to meet the need, often the new poise is not found until long after the original disturbance. Thus states of strain can arise which last for years.

'आई. ए. रिचर्ड्‌स' ने स्पष्ट कहा है कि उनकी समीक्षा-पद्धति दो मुख्य स्तम्भों पर आश्रित है—एक है मूल्य (Value) और दूसरा है प्रेषणक्रिया (Communication)। मूल्य की व्याख्या करते हुए उन्होंने लिखा है कि हमारे लिए वही मनःस्थिति मूल्यवान् है जिसमें सभी मूल प्रवृत्तियाँ सक्रिय रहती हुई अपनी इच्छाओं की तृप्ति प्राप्त करती हैं और यह तृप्ति ऐसी होती है कि उसमें किसी अन्य प्रवृत्ति की, जो कि उसके समान ही या उससे अधिक आवश्यक है, अवहेलना या अपरितुष्टि नहीं होती। सबसे अधिक महत्वपूर्ण वह मनोदशा है जिसमें सबसे अधिक विस्तृत एवं व्यापक सामंजस्य होता है और विरोध, नियंत्रण तथा अतृप्ति की मात्रा न्यूनातिन्यून होती है।[१०८] साहित्य ऐसे अनुभवों का भाण्डार है जिसको सहृदय तथा विवेकपूर्ण व्यक्तियों ने उल्लेख के योग्य समझा और उनको सर्वोचितरूप में शब्द-बद्ध किया। इसी बात के धुँधले ज्ञान से कवि सदैव द्रष्टा समझा गया है और कलाकार की तुलना उस पुजारी से की गई है जो अपने वास्तविक अधिकार से वंचित रहा है।[१०९] कलाकार का आन्तरिक जीवन, विशेषकर काव्य-सृष्टि के समय, इतना सुव्यस्थित होता है कि प्रवृत्तियों का पारस्परिक संघर्ष तथा हस्तक्षेप कम होता है और हम लोगों के लिए यह आवश्यक है कि इस प्रकार की व्यवस्था को यथासंभव अपने में विकसित

Not all impulses...are naturally harmonious, for conflict is possible and common. But systematization of impulses is the principle of human mind, whether for short or long periods.

१०८ What is good or valuable is the excercise of impulses and the satisfaction of their appetencies. Any thing is valuable which will satisfy an appetency without involving the frustration of some equal or more important appetency. Therefore the most valuable states of mind are those which involve the widest and most comprehensive coordination of activities and the least curtailment, conflict, starvation and restriction.

१०९ In the arts we find the record in the only form in which these things can he recorded of the experiences which have seemed worth having to the most sensitive and discriminating persons. Through the obscure perception of this fact the poet has been regarded as a seer, and the artist priest, suffering from usurpation.

करें।[११०] 'आई. ए. रिचर्ड्स' कोलरिज की सर्जनात्मक कल्पना (Secondary Imagination) की संश्लेषणात्मक क्रिया के समर्थकों में हैं और इसीलिए काव्य में विरोधी तत्त्वों के सुखद समन्वय पर उनका विशेष आग्रह रहा है।

'द फाउन्डेशन ऑव् एस्थेटिक्स् (The Foundation of Aesthetics) में 'रिचर्ड्स' तथा उनके सहकारी 'आगडेन' तथा 'वुड' ने इसी समन्वय को सौंदर्य की संज्ञा दी है। इसी समन्वय के प्रभाव से पाठक के मन में एक प्रकार की सुव्यस्थित मनःस्थिति का आविर्भाव होता है जो सौन्दर्य-बोध तथा आनन्द दोनों की जननी मानी जा सकती है। कलाकृति द्वारा मानसिक संतुलन इसलिए संभव होता है कि यह विरोधी मनोदशाओं को उत्तेजित करती है, जैसे तीव्र विचार तथा प्रवल अनुभूति; भय (जैसे दुःखान्त नाटक में) तथा शान्ति। इस संतुलन का रहस्य यह है कि इसमें न तो इच्छा रहती है और न क्रिया, इसमें केवल निश्चल जागरूकता और सामान्य रूप से चेतना की प्रखरता विद्यमान रहती है जो मानव-मन की सभी शक्तियों को संगठित तथा प्रभावपूर्ण ढंग से संचालित रखती है।[१११] यह ऐसी मनःस्थिति है जिसमें सभी शक्तियाँ सजीव तथा सक्रिय रहती हैं और उनकी संतुलित अवस्था से आनन्द प्राप्त होता है। सभी जटिल विचार, भाव तथा आकांक्षाएँ उत्तेजित होने के साथ ही साथ एक विशिष्ट व्यवस्था के अंग हो जाते हैं और इस प्रकार मानसिक शान्ति तथा आनन्द का सृजन करते हैं।[११२]

---

११० If the artist's organization is such as to allow him a fuller life than the average, with less unnecesary interference between the component impulses, then plainly we should do well to be more like him, if we can and so far as we can.

१११ Harmony is produced by the works of art in that it stimulates usually opposed aspects of being; keen thought yet strong feeling; fear (as at a tragedy) yet calm. Equilibrium among these is maintained in that there is no desire nor action, only a poised awareness, a general intensification of consciousness, exercising all a man's faculties richly and together.

११२ It is a state of mind in which all the faculties are alive and active and pleasure results from their harmonious adjustment. All the complex thoughts, feelings, and desires,

'रिचर्ड्स' महोदय के लिए कला-कृति वह माध्यम है जिसके द्वारा कलाकार की संतुलित मनोदशा का पाठक के लाभार्थ प्रेषण होता है जिससे पाठक भी कला-साधना द्वारा वैसी ही मनोदशा को प्राप्त हो सकें। कवि केवल स्वान्तःसुख के लिए ही नहीं लिखता; यह बात कई प्रमाणों द्वारा सिद्ध की जा सकती है।[११३] जैसे कवि का व्यक्ति-निरपेक्षता के लिए सतत प्रयास जिससे उसके व्यक्तिगत तथा असामान्य विचारों तथा भावों का बहिष्कार हो तथा एक ऐसे ढाँचे का निर्माण हो जिसमें मानव-प्रवृत्तियों पर समान रूप से प्रभाव पड़ता रहे और उनको उत्तेजना प्राप्त होती रहे तथा ऐसी कृतियों का अभाव जिसमें केवल कवि के लिए ही बोधगम्य तत्त्वों का समावेश है और दूसरे व्यक्तियों के लिए वह दुरूह तथा अनाकर्षक हैं। ये सब बातें यह दर्शाती हैं कि प्रेषण क्रिया का सफल संचालन ही कवि के लिए मुख्य प्रश्न है।

इसलिए 'रिचर्ड्स' महोदय का ध्यान विशेषरूप से प्रेषणक्रिया ही पर केन्द्रित है। उत्तम काव्य वही है जिसमें विभिन्न प्रकार के अनुभवों तथा परस्पर विरोधी दृष्टिकोणों का सामंजस्य है। इस प्रकार का काव्य स्वच्छन्दतावादी कृतियों से नितान्त भिन्न होगा; क्योंकि उक्त कृतियों में कवि की किसी एक धारणा का गंभीर तथा मनो ोगपूर्ण विवेचन होता है और विरोधी पहलुओं की नितान्त अवहेलना। परिणाम ह होता है कि इस प्रकार का काव्य व्यंगानुकरण (Parody) का शिकार होता है और कवि की गंभीर अनुभूतियाँ हास्यास्पद सिद्ध की जाती हैं। अंग्रेजी काव्य-साहित्य का इतिहास इस बात का सबल साक्षी है।

---

which are stimulated, are simultaneously put into an ordered pattern leading to mental peace and pleasure.

[११३] When we find the artist constantly struggling towards impersonality, towards a structure for his work which excludes his private, eccentric idiosyncrasies, and using always as its basis those elements which are most uniform in their effects upon impulses; when we find private works of art, works which satisfy the artist, but are incomprehensible to every body else, so rare, and the publicity of the work so constantly and so intimately bound up with its appeal to the artist himself, it is difficult to believe that efficacy for communication is not the main part of the 'rightness' which the artist may suppose to be something quite different.

कवि के प्रेषण-कार्य की सफलता के लिए उपयुक्त भाषा की आवश्यकता होती है जो विज्ञान की भाषा से भिन्न होती है। विज्ञान की भाषा में शब्द केवल अर्थ के वाहक होते हैं और स्पष्टता उनका विशेष गुण होती है, परन्तु काव्य में भाषा भावात्मक होती है, शब्द व्यंजना-शक्ति से परिपूर्ण होते हैं तथा रूपक आदि अलंकारों का बाहुल्य रहता है, सजावट के लिए नहीं, अपितु शक्ति के घनत्व के लिए और इस घनत्व से यदि अस्पष्टता अथवा अर्थ की अनेकता का आभास होता है तो वह काव्य-दोष नहीं, बल्कि काव्य-गुण का द्योतक माना जाता है। कवि अर्थ के चारो घटकों, कोशविहित शब्द-शक्ति, (Sense), भाव (Feeling) अभिप्राय (intention) और ध्वनि (tone) का समुचित उपयोग करता है जिससे उसकी अर्थध्वनि निःसीम होती है। इन तथ्यों पर हम पहले विचार कर चुके हैं और यहाँ उनका संक्षिप्त निर्देश ही पर्याप्त होगा। इन सब तत्त्वों के संयोग से कवि ऐसा माध्यम तैयार करता है कि जिसपर पूर्णरूपेण चिन्तन करके पाठक भी कवि से तादात्म्य स्थापित कर सकता है।

परन्तु कवि की प्रेषण-क्रिया तभी सफल होगी जब कि पाठक भी उससे पूरा लाभ उठाने के लिए मनसा तैयार रहें। अभिनवगुप्त ने रसास्वादन के लिए कई विघ्न-बाधाओं का निराकरण अनिवार्य बतलाया है। इसी प्रकार रिचर्ड्‌स ने भी अपने 'प्रैक्टिकल क्रिटिसिज्म' (Practical criticism) में दस कठिनाइयों का उल्लेख किया है। आज का युग मशीन, रेडियो, लाउडस्पीकर तथा सिनेमा का है जिनके संयुक्त प्रभाव से तथा जीवन की बढ़ती हुई जटिलता के कारण शिक्षित वर्ग का मस्तिष्क भी एक ऐसी 'लीक' में पड़ गया है कि उसमें कला के रहस्यों को समझने तथा उसका विश्लेषण अथवा मूल्यांकन करने की शक्ति क्षीण हो गयी है। इसलिए जनता में संस्कृति तथा अभिरुचि का उन्नयन तथा उसका परिष्करण काव्य-शास्त्रियों का मुख्य एवं गुरुतम कर्तव्य है। मानसिक बाधाओं से मुक्त तथा अपने संकुचित विचारों, संस्कारों, भावनाओं से निर्लिप्त पाठक ही काव्य-व्यवस्था से पूर्ण प्रभावित हो सकता है। इस तरह का पाठक काव्याध्ययन के पूर्व ही शब्द-समूहों का क्रम-बद्ध गुम्फन देखता है जिसका प्रभाव उसके मस्तिष्क पर अवश्य पड़ता है। इसके बाद वह उनके पारस्परिक संबंधों और अर्थ की बारीकियों, अलंकारों की उपयुक्तता तथा विभिन्न बिम्बों के सामंजस्य इत्यादि अवयवों पर चिन्तन करता है। इन सबके ऊपर छन्द, लय, गति इत्यादि संगीतात्मक तत्त्वों का प्रभाव है जिस पर विद्वान् समीक्षक ने गहन विचार किया है। उन्होंने ठीक ही कहा है कि काव्य का क्रम-बद्ध संगीत 'ढोल' की आवाज के समान यान्त्रिक (mechanical) नहीं होता। इसका सीधा संबंध अर्थ से होता है और इसमें

स्वतंत्रता, विविधता तथा एक व्यवस्थित क्रम का संमिश्रण होता है और इसका फल यह होता है कि जागरूक पाठक का मन धीरे-धीरे सुव्यवस्थित होने लगता है।[११४]

'आई. ए. रिचर्ड्स' ने वैज्ञानिक सत्य तथा काव्य-गत सत्य का जो अन्तर बतलाया है उससे हमको De Quincey के ज्ञानसाहित्य (literature of knowledge) तथा शक्तिसाहित्य (literature of power) के प्रसिद्ध भेद का स्मरण होना स्वाभाविक है। हम कवि से ऐसे सत्य की आशा नहीं करते जो तर्क तथा बुद्धि द्वारा सिद्ध अथवा असिद्ध किया जा सके। काव्य-सत्य काव्य-कृति का एक विशिष्ट अवयव है जो अन्य अवयवों के अनुकूल होता है और जिसकी वास्तविक कसौटी हमारे मन की अनुभूति है और उस अनुभूति का सबल तथा सफल व्यापार तभी संभव होता है जब हम कवि के असाधारण अनुभवों की प्रेरणा से उच्चतर चैतन्यावस्था को प्राप्त होते हैं। इस उन्नत मनःस्थिति से जो आनन्द होता है उसे हम 'रस्किन' (Ruskin) के शब्दों में स्फूर्तिमय आनन्द (vital feelings of delight) कह सकते हैं। एक आधुनिक समीक्षक ने ठीक ही कहा है—"किसी काव्य-कृति के गुण, महत्व, सौन्दर्य इत्यादि का वर्णन करते समय हम केवल उसकी मनोरंजन-शक्ति का ही ध्यान नहीं करते, परन्तु उस समग्र अनुभव की विशेषता को प्राथमिकता देते हैं जो प्रेम तथा रुचिपूर्ण अध्ययन तथा मनन से हमें प्राप्त हुआ है—इस अनुभव की सम्पन्नता, अलौकिकता तथा गहनता, जिसकी प्रतिध्वनि हमारे मन में गूँजती रहती है। "आगडेन' तथा 'रिचर्ड्स ने ठीक ही कहा है कि "केवल सौन्दर्य-जनित परितोष आधुनिक समीक्षकों की दृष्टि में काव्य के मूल्यांकन का एक अत्यन्त निर्बल मापदण्ड है।"[११५]

---

[११४] The whole conception of metre as 'uniformity in variety', a kind of mental drill in which words, those erratic and varied things, do their best to behave, as though they were all the same, with certain concessions, licences and equivalences allowed, should nowadays be obsolete.

As with rhythm so with metre, we must not think of it as in the words themselves or in the thumping of the drum. It is not in the stimulation, it is in our response. Metre adds to all the variously fated expectancies which make of rhythms a definite temporal pattern and its effect is not due to perceiving a pattern in something outside us, but to our becoming patterned ourselves.

[११५] In practice it is the quality of experience which is

इस विवेचन के उपसंहाररूप में हम उस मनोदशा का विश्लेषण उचित समझते हैं जो काव्यानन्द के लिए अनिवार्य है। पश्चिम के मनोवैज्ञानिक विवेचन में दो विरोधी विचारों का आभास मिलता है, जो 'एम्पैथी' (empathy) तथा 'साइकिक डिस्टैन्स' (Psychic distance) के नाम से प्रसिद्ध हैं। पहली विचारधारा पूर्ण तन्मयता की समर्थक है जिसके अनुसार प्रेक्षक या पाठक तथा काव्य-पात्र या कलावस्तु में ऐसा एकत्व स्थापित हो जाता है कि किसी प्रकार की 'द्वैत' भावना अवशिष्ट नहीं रह जाती। जैसे 'जान कीट्स' पक्षी कि क्रिया में इतना तन्मय हो जाता था कि उसी के समान चञ्चु-प्रहार करता प्रतीत होता था। दूसरी धारणा इसके विपरीत है और इसका आग्रह प्रेक्षक या पाठक तथा कला-वस्तु के 'विलगाव' पर आधृत है। कलाकार की सृष्टि अलौकिक है और उसके अनुभव से हम 'अहमत्व' की संकीर्ण-सीमा तथा सांसारिक प्रपञ्चों के ऊपर उठ कर 'तटस्थ भाव' (detached attitude) से मानव-चरित्र तथा क्रिया-कलापों एवं भावावर्तों का चिन्तन तथा अनुशीलन करते हैं। काव्यानन्द चेतना की सक्रियता तथा जागरूकता पर निर्भर करता है न कि उसके 'विलयन' अथवा 'स्थगन' पर।

वास्तव में उपयुक्त मनोदशा इन विरोधी अवस्थाओं के बीच का 'स्वर्णिम माध्यम मार्ग' (Golden mean) है, अर्थात् इस मनोदशा में भावातिरेक का पर्यवसान मन की पूर्ण शान्ति में होता है जिसमें काव्यगत स्थायीभाव के साक्षा-त्कार के साथ ही आत्मा के सात्त्विक रूप का भी दर्शन होता है। यही तथ्य अभिनवगुप्त इत्यादि भारतीय मनीषियों ने प्रतिपादित किया है और 'एडवर्ड वुलो' (Edward Bullough) इत्यादि पाश्चात्य वैज्ञानिक समीक्षकों से भी इसे समर्थन प्राप्त हुआ है। 'वुलो' ने स्पष्ट कहा है कि कलानुभूति में प्रेक्षक तथा

---

lived through in appreciative commerce with the aesthetic object, the whole experience in all its aspects, its richness its uniqueness, its reverberative profundity, and not merely its 'pleasure index', which interest the critics when they assess the worth, importance, significance, beauty or greatness of works of art.

As Ogden and Richards put it (in *the Foundation of Aesthetics* (*1925*)) the hedonistic theory of beauty provides altogether too jejune a language for the modern critic.

Harold Osborne : *op. cit* : p. 118.

प्रेक्ष्य का अत्यधिक पार्थक्य तथा अत्यधिक ऐक्य दोनों रस-परिपाक के लिए हानिकारक हैं।

इस प्रकार यह अनुभवसिद्ध बात है कि नाट्य तथा काव्य भावों की प्रखरता को कलात्मक अनुशासन से अधिकृत करके उनका परिमार्जन तथा शोधन करते हैं। यहाँ 'वर्ड्सवर्थ' के प्रसिद्ध कथन का स्मरण होना स्वाभाविक है कि—"काव्य का जन्म उन भावों की प्रेरणा से होता है जो मन की शान्त अवस्था में 'अनु-स्मृत' होते हैं।" इस कथन में हम इतना और जोड़ सकते हैं कि 'कला के माध्यम से अभिव्यक्त मनोभाव प्रखर तथा हृदयस्पर्शी होते हुए भी हमारी चेतना को अभिभूत नहीं करते, वरन् अन्ततोगत्वा उससे अधिकृत होते हैं।

अध्याय ५

काव्य की उपयोगिता

रसास्वादन के विस्तृत विवेचन से यह बात सिद्ध हो जाती है कि काव्य का अपना स्वतन्त्र क्षेत्र है और एक विशिष्ट उद्देश्य। उसकी महत्ता किसी अन्य वस्तु पर आश्रित नहीं है और न तो वह किसी जीवन-व्यापार की सिद्धि का साधन मात्र है। उसकी उपादेयता का कोई सामाजिक मापदंड नहीं है और उसका मूल्यांकन व्यावहारिक अथवा व्यावसायिक दृष्टिकोण से नहीं हो सकता। काव्यानन्द अलौकिक तथा विलक्षण होता है और वह मन की एक अनुभूति है जिसका वर्णन शब्दों में नहीं हो सकता। परन्तु यह अनुभूति मन की एक उच्च अवस्था से प्राप्त होती है और वह अवस्था मनुष्य के व्यापक तथा उच्चतम मनोवल की अभिव्यक्ति है। इसलिए कोई भी व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि काव्य का विशुद्ध आनन्द निरर्थक है। 'कारडिनल न्यूमन' (Cardinal Newman) ने विश्वविद्यालयों की उच्चतम शिक्षा का विवेचन करते हुए कहा है कि उनसे उपलब्ध ज्ञान व्यवसाय के लिए नहीं, अपितु जीवन के लिए उपयोगी होता है। इसमें ज्ञान तथा सौन्दर्य के लिए एकनिष्ठ प्रेम होता है, मन संतुलित तथा जागरूक रहता है और विरोधों के बीच उचित मार्ग का पता लगाने की शक्ति रहती है। ऐसा व्यक्ति कुछ न करते हुए भी सब कुछ करने के लिए समर्थ रहता है। यह ज्ञान आन्तरिक विभूति है न कि वाह्यालंकार, यद्यपि अर्थ-सत्ताभिभूत प्राणियों की दृष्टि में इसका कोई मूल्य नहीं है; क्योंकि यह बाजार में क्रय-विक्रय का पदार्थ नहीं है।

इसी आध्यात्मिक अथवा आभ्यन्तरिक विकास एवं परिष्कार पर उन समीक्षकों ने भी जोर दिया है जिनके लिए काव्य का मुख्य उद्देश्य भावाभिव्यक्ति है। 'वर्ड्‌सवर्थ' ने काव्य को भावों का सहज उच्छलन माना और समाज की भावात्मक एकता का स्वर्णिम सूत्र, परन्तु उन्होंने इस बात को साग्रह दुहराया है कि यह भावोद्रेक मदिरा के उन्माद से भिन्न होता है; क्योंकि काव्य में भाव-प्रकाशन ही नहीं, अपितु अनुभूतियों का परिमार्जन भी होता है जिससे ठीक अवसर पर उपयुक्त भाव और तदनुरूप मनःस्थिति का हममें आविर्भाव होता है। 'इलियट' ने ठीक ही कहा है कि कवि हमारे मूक तथा अस्पष्ट भावों की पूर्ण

अभिव्यक्ति करके हमें आत्म-चैतन्य बनाता है और इस प्रकार हमारे भावात्मक जीवन को संतुलित करता है। हमारे प्रबल एवं पंकिल मनोवेग काव्य-व्यवस्था से अनुशासित होकर हमारे समक्ष प्रकट होते हैं, जिससे उनका वेग स्थिर होकर शान्त जल के समान पारदर्शी हो जाता है। यह भावात्मक तत्त्व बौद्धिक तत्त्व से संयुक्त होता है; क्योंकि कवि विचारों का भावात्मक समीकरण उपस्थित करता है, जिसके फलस्वरूप हमारी चेतना व्यापक तथा उद्बुद्ध होती है। 'पोयट्री' नामक विद्वत्तापूर्ण पुस्तिका में प्रसिद्ध आधुनिक समीक्षक एलिजाबेथ ड्रू (Elizabeth Drew) ने कहा है कि काव्य धर्म नहीं है; यह मानव-जीवन के विरोधों का समाधान नहीं प्रस्तुत करता है, अपितु उनका शमन करता है। कला वास्तविक जीवन के पहलुओं तथा क्रियाओं की प्रतिकृति नहीं है, यह जीवन की चिन्तनात्मक रूप-प्रतीति है, इसमें जीवन का पुनर्निर्माण होता है, एक संघटित, परिष्कृत तथा व्यापक रूप में। कवि के मन में जीवन तथा भाषा की क्रिया-प्रक्रिया द्वारा जो परिवर्तन होता है उससे काव्य के निर्माण के साथ ही कवि के स्वत्व का साक्षात्कार भी होता है।[११६] 'ह्वाइट हेड' (White head) ने कला की आवश्यकता का रहस्य आत्मा का संसेचन तथा उर्वरीकरण (Fertilization of the soul) बतलाया है। बनर्ड शा (Bernard Shaw) के प्रसिद्ध महा नाटक **'मैन एण्ड सुपरमैन'** में मुख्य पात्र, टैनर (Tanner) कहता है कि 'कलाकार का मुख्य काम है हमारे वास्तविक रूप का साक्षात्कार कराना। हमारा मन ही हमारी सत्ता है और जो कोई इसके ज्ञान में थोड़ी भी वृद्धि करता है वह एक नई चेतना का आविर्भाव करता है जैसे स्त्री नये व्यक्तियों को जन्म देती है।' कवि जीवन के संबंध में जो कहता है वह उतना उपादेय नहीं है जितना कि जीवन संबंधी प्रतीतियों की तीव्रता तथा उनका प्रकाशन या उद्भासन।

काव्य समस्त जीवन को स्फूर्तिमय बनाता है; क्योंकि इसमें 'रक्त, कल्पना

---

[११६] Poetry is not religion. It can salve but not solve the conflicts of human condition. Art is not life as it is lived and acted, it is life seen in the mode of contemplation, recreated into a new kind of life, under the power of a new kind of drive, into an organic form. The interplay and transmutation that goes on perpetually in him between life and language makes the poem as much a discovery of himself as the communication of his theme to the readers—'It is myself that I remake'.

तथा बुद्धि' का समन्वय होता है और इसका जल-स्त्रोत मानव-जाति की समूची आशाओं, स्मरणों तथा शारीरिक स्पन्दनों से प्रस्फुटित होता है। कवि कर्मठ व्यक्ति नहीं है, परन्तु वह जीवन के उपादानों को शब्द-समुच्चय का रूप देता है 'शब्द जो कर्म के पर्याय हो गये हैं' जैसा कि फ्रॉस्ट (Frost) ने कहा है।[११७]

काव्य तथा नैतिकता

काव्य तथा नैतिकता का संबंध अत्यन्त प्राचीन, जटिल एवं विवादग्रस्त रहा है। हमारे यहाँ भी 'रसात्मकं काव्यं' पर विशेष आग्रह होते हुए भी काव्यगत उपदेश और काव्य का नैतिक जीवन पर प्रभाव इत्यादि समय-समय पर प्रतिपादित होते रहे हैं। मम्मट ने रस को काव्य का विशेष प्रयोजन माना, परन्तु 'कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे' पर भी ध्यान दिया; अर्थात् काव्योपदेश शास्त्र तथा इतिहास से भिन्न होता है; क्योंकि प्रियवादिनी स्त्री के वाक्यों के समान वह रससिक्त रहता है और प्राय: परोक्ष रूप से व्यंजना-व्यापार द्वारा उसका निर्देश होता है। इसके अतिरिक्त कवि के आदर्श पात्रों जैसे रामादि का भी हमारे नैतिक जीवन पर काफी प्रभाव पड़ता है। हम सोचते हैं 'रामादिवत् वर्तितव्यं न रावणादिवत्'। इस धारणा का निष्कर्ष उनके प्रसिद्ध श्लोक में है—

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्य: परनिवृत्तये कान्ता सम्मिततयोपदेशयुजे॥

इस प्रसंग में फ्रांसीसी कवि 'वेलरी' (Valery) की उक्ति स्मरणीय है—काव्य में विचार उसी प्रकार निहित होना चाहिये जिस प्रकार फल में पोषक शक्ति रहती है। फल पोषक वस्तु हैं, परन्तु हमें उसके स्वाद का ही प्रथम अनुभव

---

[११७] The artist's work is to show us ourselves as we really are. Our minds are nothing but ourselves ; and he who adds a jot to such knowledge creates new minds as surely as any woman creates new men'...not what he says about life, but by the intensity and illumination of its perceptions. Poetry vitalizes the whole man...it is 'blood, imagination, intellect running together'...a fountain jetting from the entire hopes, memories and the sensations of the body. The poet is not a man of action; he turns the material of living into a verbal design, into 'words that have become deeds' as Frost says.

होता है। इसी प्रकार काव्य में हम केवल आनन्द की प्रतीति करते हैं, परन्तु पाते हैं पौष्टिक तत्त्व।[११८]

'साहित्यदर्पण'कार विश्वनाथ ने सत्वोद्रेक को रसास्वादन का मुख्य हेतु माना है—

सत्त्वोद्रेकादखण्डप्रकाशानन्दचिन्मयः ।
वेद्यान्तरस्पर्शशून्यः ब्रह्मास्वादसहोदरः ।।

सत्त्व के उद्रेक से चित्त में पवित्रता उत्पन्न होती है और रसास्वादन में हम यह भी अनुभव करते हैं कि हमारे साथ अनेक लोग भी उसी आनन्द का अनुभव कर रहे हैं। इस प्रकार सहृदयता के साथ ही समवेदना का उदय होता है और पाठक 'अहम्त्व' के जटिल नियन्त्रण से मुक्ति लाभ करते हैं। अभिनवगुप्त ने इसी तथ्य का प्रतिपादन करते हुए कवि-सहृदय-संवाद पर विशेष जोर दिया, जो अन्ततोगत्वा मन की शुद्धि तथा आत्मोत्कर्ष का साधन होता है—'प्राक् स्वसंविदितं परत्रानुमितं च चित्तवृत्तिजातं संस्कारक्रमेण हृदयसंवादमादधानं चर्वणायाम् उपयुज्यते।'

महिमभट्ट ने उपदेश पक्ष पर अधिकांश बल देते हुए कह दिया कि काव्य तथा शास्त्र दोनों का काम एक ही है अर्थात् दोनों यह बतलाते हैं कि क्या करणीय है और क्या अकरणीय। भेद है केवल साधन का—'सामान्येनोभयमपि च तच्छास्त्रवद्विधिनिषेधविषयव्युत्पत्तिफलम्। केवलं व्युत्पाद्य जनजाड्यतारतम्यापेक्षया काव्यनाटचशास्त्ररूपोऽयमुपायमात्रभेदः न फलभेदः।

पाश्चात्य समीक्षा साहित्य का तो उदय ही इसी सिद्धान्त से होता है और सहस्रों वर्षों तक यह विवादग्रस्त प्रश्न रहा है और काव्य-स्वच्छंदता के इस युग में भी हम विश्वास के साथ नहीं कह सकते कि कला का नैतिक पक्ष एकदम गौण हो गया है। इस लम्बे इतिहास का संक्षिप्त विवरण इस प्रश्न की बहुरूपता का ज्ञान कराने के लिए आवश्यक है।

पाश्चात्य-समीक्षा का उदय प्राचीन यूनान में हुआ और आरंभ ही में कवि-गौरव का आधार-स्तम्भ यह विचार रहा कि कवि हमारे हृदय को स्पर्श करता है और अन्तरात्मा की शुद्धि और इस तरह से वह समाज के नैतिक उन्नयन का एक विशिष्ट माध्यम है। एरिस्टोफेनिस (Aristophanes) ऐसे प्रहसनकारों का

---

[११८] Thought should be hidden in verse like the nutritive principle in a fruit. A fruit is nourishment but it is seen as a relish. We perceive only delight, but receive a substance.

यही दावा था कि वे हास्य द्वारा समाज की त्रुटियों तथा बुराइयों का शमन करते हैं। यह बात उनके 'फ्रॉग्स' (Frongs) नामक 'कामदी' (Comedy) से स्पष्ट है। परन्तु यूनानी दर्शन के विकास के साथ ही कवि के इस दावे का विरोध होने लगा और इस विरोध की पराकाष्ठा 'प्लेटो' के ग्रन्थों में हुई। 'प्लेटो' ने अपने 'रिपब्लिक में काव्य तथा कला को अनैतिकता का प्रभावशाली हेतु सिद्ध करने का प्रयत्न किया है; क्योंकि (अ) 'होमर' आदि कवियों ने देवताओं को मनुष्योचित गुणों तथा अवगुणों से अलंकृत करके उनकी दिव्य-मूर्ति तथा मर्यादा पर कुठाराघात किया है और धार्मिक भावना का हनन। इसलिए काव्य धार्मिक भावना का विरोधी है; (ब) मानव आत्मा एक रथ के समान है जिसमें दो अश्व जुते हैं—एक श्वेत, दूसरा कृष्ण; एक मन की सात्विक प्रवृत्ति का प्रतीक है और दूसरा रजस् तथा तमस् का। नैतिक विकास के लिए श्वेत अश्व का प्रोत्साहन तथा कृष्ण अश्व का नियन्त्रण आवश्यक है। परन्तु काव्य तथा नाटक कृष्ण अश्व अथवा भावसंवेगों को ही प्रोत्साहित करते हैं; क्योंकि मन के इसी पक्ष का अनुकरण सहज है। परिणाम यह होता है कि भले विचार के लोग भी असभ्य दर्शकों के साथ भावावेश में अश्रुपात करते हैं तथा भद्दे प्रहसनों पर मुक्त हास करते हैं। इससे स्पष्ट है कि काव्य तथा नाटक भावों तथा मनोविकारों का सिंचन करते हैं, जबकि नैतिक उन्नति के लिए उनको शुष्क करना ही आवश्यक है। काव्य मन के नैतिक संतुलन को अस्तव्यस्त करता है और विवेक के स्थान पर अविवेक का अभिषेक करता है, इसलिए गणतंत्र के कल्याण के लिए कवि का निर्वासन एवं दृढ़ नियन्त्रण अनिवार्य है। (स) काव्य का सत्य अथवा वास्तविकता से भी कोई संबंध नहीं है; क्योंकि उसमें हम संसार की तत्वहीन वस्तुओं का बिंबमात्र पाते हैं जिसमें वास्तविकता का भ्रम पैदा करके कवि मूर्खों का मनोरंजन करता है जैसे छोटे बच्चे चित्र में अंकित सर्प को देखकर भय करते हैं अथवा जीवन की उस छाया में सत्य का आरोप करते हैं। काव्यगत जीवन-अनुकरण छलना मात्र है।

परन्तु 'प्लेटो' भी आदर्श काव्य को 'सत्यं, शिवं, सुन्दरं' से युक्त मानते थे और उसकी आध्यात्मिक तथा अतीन्द्रिय शक्ति की नितान्त अवहेलना उनके लिए भी संभव न हो सकी। 'तिमोयें' (Timaeus) में उन्होंने स्पष्ट कहा है कि जब कलाकार अपनी दृष्टि अलौकिक, अखण्ड तथा शाश्वत तत्त्व (Idea) पर केन्द्रित करता है और उसको नमूना मानकर उसके वास्तविक रूप तथा शक्ति का अपनी कृतियों में पुनर्निर्माण करता है तब काव्य के सभी अंग सुन्दर होते हैं। परन्तु जब वह इस नश्वर जगत् के स्थूल तथा विषयगम्य पदार्थों से ही सन्तुष्ट रहता

है, तब सौंदर्य-तत्त्व उसके लिए अप्राप्य रहता है।[११९] इसी तरह संगीत के प्रभाव का वर्णन करते हुए उन्होंने यूनान के पुराने विश्वास का समर्थन किया है कि संगीत से आत्मा सुव्यवस्थित होती है और अपने स्वरूप तथा शक्ति का आभास प्राप्त करती है।

'प्लेटो' के मेधावी शिष्य, अरस्तू ने काव्यानन्द ही पर विशेष जोर दिया, यद्यपि वह नैतिक पक्ष को भी भूल न सके। परन्तु नैतिकता का सबल समर्थन रोम के समीक्षकों तथा वाग्मिताशास्त्रियों, 'होरेस', 'सिसरो' तथा 'क्विन्टिलियन' ने किया। 'होरेस' का प्रसिद्ध सूत्र—कवि का उद्देश्य है शिक्षा देना, आनन्द देना अथवा दोनों का संमिश्रण—प्रायः १८वीं शताब्दी के अन्त तक प्रचलित रहा, यद्यपि कालान्तर में आनन्दपक्ष मुख्य तथा शिक्षापक्ष गौण होता गया। सोलहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध अंग्रेज समीक्षक, 'सर फिलिप सिडनी' ने अपने 'एपालोजी' (Apologie for Poetry) में, काव्य के धार्मिक विरोधियों का जबाव देते हुए कहा है कि कवि दार्शनिक तथा इतिहासकार दोनों से अधिक प्रभावशाली शिक्षक है। दार्शनिक ज्ञान नीरस तथा जटिल होता है और जन्म भर प्रयत्न करने के पश्चात् भी उसका रहस्य समझना संभव नहीं है। इसी तरह इतिहास की शिक्षा भी अधूरी है; क्योंकि अरस्तू ने ठीक ही कहा है कि काव्य इतिहास से अधिक गंभीर एवं व्यापक होता है; क्योंकि इतिहास व्यक्तिविशेष के विभिन्न कार्यों का उल्लेख करता है, परन्तु काव्य में मानव-स्वभाव के सामान्य तथा मौलिक तत्त्वों का निरूपण होता है। इतिहास भूत की घटित घटनाओं से संबंधित है, परन्तु काव्य का उद्देश है मानव-मनोचित संभावित घटनाओं का निर्माण तथा निरूपण। कवि अपने उपदेशों को रोचक कथा के माध्यम से वितरित करता है जिसके आनन्द से बच्चे अपने खेल को भूल जाते हैं और बुड्ढ़े आग के किनारे बैठे हुए मुग्ध हो जाते हैं।[१२०]

---

[११९] When the Artificer fastens his gaze upon the eternally unchanging and using it as his model reproduces its essential form and power, then everything must necessarily turn out beautiful; but when he gazes upon what has taken itself sensory being, using that as his model, his work has no beauty.

[१२०] He cometh to you with words set in delightful proportions, either accompanied with or prepared for the

सत्रहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध समालोचक, 'जान ड्राइडेन' (John Dryden) ने इस धारणा को नया मोड़ देते हुए कह दिया कि आनन्द काव्य का मुख्य उद्देश्य है, यद्यपि केवल यही एक उद्देश्य नहीं है, परन्तु १८ वीं शताब्दी के प्रायः सभी लेखकों ने शिक्षा ही पर विशेष जोर दिया। इस पक्ष के सबसे सबल समर्थक थे 'डाक्टर जॉन्सन' जिनके प्रभावशाली व्यक्तित्त्व से उस शताब्दी के उत्तरार्ध का समस्त समीक्षा-साहित्य प्रभावित रहा। 'रिचर्ड्सन' के उपन्यासों की प्रशंसा करते हुए उन्होंने लिखा कि उन्होंने मानव-हृदय के भावों को सत्व गुण (virtue) के शासन में सक्रिय होना सिखलाया।[१२१] परन्तु शेक्सपियर इस विषय में निन्दा के पात्र हैं; क्योंकि वह मनोरंजन के लिए इतने उत्सुक मालूम पड़ते हैं कि उनके कथानक काव्य के उस मौलिक सिद्धान्त का खण्डन करते हैं जिसके अनुसार अच्छे पात्र पुरस्कृत तथा बुरे पात्र दण्डित होने चाहिए।[१२२]

१९ वीं शताब्दी का स्वच्छन्दतावाद काव्यानन्द के महत्व को स्वीकार करते हुए भी काव्य के नैतिक प्रभाव का पूर्ण समर्थक रहा। इसके अनुसार कवि समाज का आध्यात्मिक नेता माना गया और 'वर्ड्सवर्थ' तथा 'शेली' ने विशेष करके उसके मानव-कल्याण तथा समाज की नैतिक उन्नति के पुनीत कर्तव्य को प्राथमिकता प्रदान की।[१२३]

---

well-enchanting skill of music; and with a tale forsooth he cometh unto you, with a tale which holdeth children from play, and old men from chimney corner.

१२१ He taught the passions to move at the dictates of virtue.

१२२ He sacrifices virtue to convenience, and is so much more careful to please than to instruct, that he seems to write without any moral purpose.... He makes no just distribution of good or evil...he carries his persons indifferently through right and wrong and at the close dismisses them without further care, and leaves their examples to operate by chance.

१२३ Our continued influxes of feelings are modified and directed by thoughts, which are indeed the representations of all our past feelings, and as by contemplating the relations of these general representations to each other, we discover what is really important to men, so by the repetition and

विक्टोरियन युग के पूर्वार्ध में जिन तीन विशिष्ट अंग्रेज समीक्षकों ने कला के नैतिक पक्ष का प्रबल समर्थन किया—उनके नाम हैं 'मैथ्यू आरनल्ड', 'कारलाइल' तथा 'जान रस्किन'। 'मैथ्यू आरनल्ड' की धारणा थी कि कला तथा काव्य वैज्ञानिक सभ्यता के उत्कर्ष के साथ, जिसका अर्थ है परम्परागत धार्मिक भावनाओं का ह्रास, धर्म का स्थान ग्रहण करेंगे और काव्य के भावक का विशिष्ट कर्तव्य है आज के विकृत समाज में संस्कृति के माधुर्य तथा प्रकाश का विकास। उनके लिए काव्य जीवन की व्याख्या है और इस व्याख्या में मानव तथा प्रकृति का सम्वन्ध एवं मनुष्य के आभ्यन्तरिक नैतिक जीवन दोनों सम्मिलित हैं। उन्होंने स्पष्ट कहा कि जो साहित्य नैतिकता के विरुद्ध है वह वास्तव में जीवन के विरुद्ध है और उत्तम साहित्य वही है जो पाठक के हृदय में शान्ति, सन्तोष तथा सहनशीलता इत्यादि उदात्त भावों का उद्रेक तथा पोषण करे जो अव तक धर्म द्वारा सम्पन्न होता रहा है। 'शेली' तथा कीट्स' आदि स्वच्छन्दतावादी कवियों की उन्होंने जो कटु आलोचना की है उसमें नैतिकता की भावना ही मौलिक प्रेरणा है।[१२४]

---

continuance of this act, our feelings will be connected with important subjects, till at length, if we be originally possessed of sensibility, such habits of mind will be produced that, by obeying blindly and mechanically the impulses of those habits, we shall describe objects, and utter sentiments, of such a nature...that the understanding of the reader must necessarily be in some degree enlightened, and his affections strengthened and purified.

—Words worth–Preface *to L. Ballads*.

Poetry enlarges the circumference of imagination by replenishing it with thought of ever new delight...Poetry strengthen the faculty which is the organ of the moral nature of man. Poets are the uncrowned legislators of the ages yet unborn.

—Shelley : *Defence of Poetry*

१२४ The future of poetry is immense, because in poetry, where it is worthy of its high destiny, our race, as time goes on, will find an ever surer and surer stay.

Poetry is the interpretress of the natural world, and she is the interpretress of the moral world...combines natural magic and moral profundity.

'कारलाइल' के लिए तो कवि समाज का आध्यात्मिक द्रष्टा है जो सृष्टि में निहित दिव्य-शक्ति का दर्शन करते तथा कराते हुए पाठकों की अन्तर्दृष्टि का उन्मीलन करता है। समाज का कर्तव्य है उसके सुख तथा सुविधा की उचित व्यवस्था करना; क्योंकि जो वस्तु प्रकाश दे सकती है वह समाज को जलाकर भस्म भी कर सकती है। आज के व्यवसायी युग में कवि ऐसा नायक तथा पथ-प्रदर्शक है जिसका अमूल्य ज्ञान पुस्तक के रूप में क्रय-विक्रय की सामग्री बना हुआ है और वह स्वयं एक बहिष्कृत प्राणी के समान ठोकर खाते हुए दरिद्रता तथा भुखमरी का जीवन व्यतीत करता है।

'रस्किन' भी इसी विचारधारा के विशिष्ट प्रवर्तक थे और उनके लिए नैतिकता ही कला का प्राण है और उसका मूल स्रोत; क्योंकि राष्ट्र का नैतिक उत्कर्ष तथा अपकर्ष उसकी कला में ही बिम्बित रहता है। इसको सिद्ध करने के लिए उन्होंने यूनानी, मध्यकालीन क्रिस्तानी, नव-जागरणयुगीन तथा आज की मशीनी सभ्यता से सम्बन्धित कला के बदलते हुए रूपों तथा मानदण्डों की विशद व्याख्या की है। उनका कहना था कि कला की महत्ता उसके नैतिक प्रभाव पर निर्भर करती है; उसका विषय जितना ही उच्च तथा स्फूर्तिमय होगा उतना ही उसका चिन्तन उसके प्रेमियों का नैतिक उन्नयन करेगा। एक उत्तम कलाकृति की निन्दा करते हुए उन्होंने लिखा है कि इसका विषय अनैतिक तथा निम्न कोटि का है; क्योंकि इसमें कुछ मदिरासेवी जूआ खेलते हुए चित्रित किये गये हैं। इसका आनन्द स्वस्थ नहीं हो सकता। उनके लिए प्रकृति स्वयं ईश्वर की कलाकृति थी जिसके सौन्दर्य-प्रेम से हम ईश्वर की उदारता तथा दया का अनुभव कर सकते हैं और उसके औदात्य के प्रभाव से मानव-मन उन्नतावस्था को प्राप्त होकर ईश्वर की शक्ति तथा गरिमा का आभास पा सकता है। इस प्रकार प्रकृति-जनित

Art and poetry and eloquence have, in fact, not only the power of refreshing and delighting us...they have a fortifying, and elevating, and quickening and suggestive power, capable of wonderfully helping us to relate the results of modern science to our need for conduct, our need for beauty.

In a letter to his mother, March 3, 1865, Arnold speaks of 'the necessity of pushing on one's posts into the darkness, and to establish no post that is not perpetually in the light and firm. One gains nothing on the darkness by being, like Shelley, incoherent as the darkness itself.

सौन्दर्य-बोध भगवान् की अमूर्त सत्ता का बोध करा सकता है और चिन्तक के हृदय को भक्ति तथा धार्मिक आस्था से ओत-प्रोत कर सकता है। यह बोध नाना रूपों में वस्तु के विविध गुणों की प्रतीति से प्राप्त होता है। 'रस्किन' ने चार विशिष्ट प्रकार के माध्यमों का उल्लेख किया है।[१२५]

कला को नैतिकता का मात्र साधन माननेवाले विचारकों में टालस्टाय (Tolstoi) सर्वप्रसिद्ध हैं। उन्होंने 'साहित्य' के 'महत्व' पर विशेष बल दिया है। उच्च कोटि का साहित्य वही है जिसके द्वारा समस्त मानव-समाज सर्वहित तथा कल्याण की भावना से प्रेरित होकर एकत्व का अनुभव कर सकता है। ऐसे साहित्य के तीन विशिष्ट गुण होते हैं जो इसके आधार-स्तम्भ है।[१२६]

१. भाव-प्रेषण—कवि के भावों को पाठकों में संक्रमित करना। इसके लिये आवश्यक है कि भाव तीव्र, स्पष्ट तथा स्फूर्तिमय हों। **२. व्यापक प्रभाव**—जिसके लिए काव्य का सबके लिए बोधगम्य होना आवश्यक है। **३.** ऐसे भावों की अभिव्यक्ति तथा संक्रमण जो अधिकाधिक लोगों में सहानुभूति तथा प्रेम-भाव का संचार करने में समर्थ हों।

---

[१२५] We have seen that this subject matter is referable to four general heads. It is either a record of conscience written in things external, or it is the symbolizing of Divine attributes in matter, or it is the felicity of living things, or the perfect fulfilment of their duties and functions. In all cases it is something Divine, either the approving voice of God, the glorious symbol of Him, the evidence of His kind presence or the obedience of His will by Him induced and supported.

[१२६] Art is not, as a metaphysician says, the manifestation of some mysterious idea of beauty or God...it is not the production of pleasing objects; and above all, it is not pleasure; but it is a means of Union among men, joining them together in the same feelings, and indispensable for the life and progress towards well-being of individuals and of humanity.... Every art causes those to whom the artist's feeling is translated to unite in soul with the artist and also with all who receive the same impression.

'टालस्टाय' का नैतिक मापदण्ड उनके लिए ऐसा अटल एवं दृढ़ था कि उन्होंने शेक्सपियर ऐसे कलाकारों को भी निकृष्ट तथा निम्न कोटि का बतलाया; क्योंकि उनमें नैतिकता आदि उच्च गुणों का अभाव है। कला को आनन्द की वस्तु समझने का अर्थ है उसको वेश्या की कोटि में रखना जो सदैव आकर्षक तथा मुग्धकारी परिधान पहनकर लोगों का मनोरंजन करने के लिए तैयार रहती है और अपने रूप का स्वतन्त्रतापूर्वक विक्रय करती है।[१२७]

इस प्रकार टालस्टाय के मतानुसार विश्वबन्धुत्व तथा मानव-प्रेम ही आधुनिक कला का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए। अतीत काल में कला का उपयोग धार्मिक भावना के प्रसारण, राजभक्ति तथा देश और जाति के लिए आत्मबलि-दान करने की तत्परता एवं आत्म-सम्मान तथा देश की सुरक्षा के लिए मर-मिटने की प्रेरणा के रूप में हुआ है। इसलिए वही कला सुगमता के साथ प्रत्येक मानव के प्रति श्रद्धा, प्रत्येक पशु के प्रति प्रेम के प्रेरक रूप में प्रयुक्त हो सकती है। यह हमारे हृदय में विलासप्रियता, हिंसा, परसत्तापहरण के लिए लज्जा उत्पन्न कर सकती है और लोगों को स्वतंत्रतापूर्वक तथा उत्साह के साथ मानव-जाति की सेवा के लिए विवश भी कर सकती है। कला का मुख्य कार्य है बन्धुत्व का भाव तथा पड़ोसी के प्रति प्रेम, जो सम्प्रति प्रायः विशिष्ट लोगों ही में पाया जाता है, इस तरह से प्रचलित तथा प्रसारित करना जिससे वे सर्व-सामान्य की साधारण भावना तथा प्रवृत्ति हो जाय।[१२८]

---

[१२७] The art of our time and of our circle has become a prostitute...like her it is not limited to certain times, like her it is always adorned, like her it is always saleable and like her it is enticing and ruinous.

[१२८] If art has been used to convey the sentiment of reverence for the images......for the king's person...the need to sacrifice one's labour for the erection and adornment of churches, the duty of defending one's honour or the glory of one's native land–then the same art can also evoke reverence for the dignity of every man and for the life of every animal; can make men ashamed of luxury, or violence, of revenge, or of using for their pleasure that of which others are in need; can compel people freely gladly, and without noticing it, to sacrifice themselves in the service of man. The task for art to accomplish is to make that feeling of brother-hood and love of

मार्क्सवाद ने इस सिद्धान्त को राजनीतिक क्रान्ति का एक सवल अस्त्र वना दिया है। इस 'वाद' के अनुसार कला तभी उपयोगी होगी जब वह शोपित तथा शोषक वर्ग के शाश्वत संघर्ष की तीव्र अभिव्यक्ति करने में समर्थ हो। यही सामाजिक तथ्य (Socialist realisem) है और इसकी अभिव्यंजना ऐसे पात्रों द्वारा हो सकती है जो कि अपने विशिष्ट व्यक्तित्त्व के साथ ही साथ इन विरोधी विचारधाराओं (Ideologies) के प्रतीक भी होते हैं। इस प्रकार कला सामाजिक क्रान्ति का अग्रदूत तथा सवल प्रवर्तक एवं प्रचारक होगी और शोपित वर्ग के हृदय में क्रान्ति की भावना उत्प्रेरित करके उन्हें संघर्ष के लिए प्रोत्साहित करेगी और इस तरह उस मार्ग को प्रशस्त करेगी जिसका अनुसरण करते हुए यह क्रान्तिकारी वर्ग राज्य-व्यवस्था का उन्मूलन तथा वर्गविहीन (Stateless and classless) समाज का निर्माण करने में सफल होगा। कला जनोपयोगी होनी चाहिए और उसके द्वारा समाज के दलित वर्गों की मूक वेदनाओं, भावनाओं तथा आशाओं एवं निराशाओं की अभिव्यञ्जना होनी चाहिए। अतीत की कला महलों में पली थी तथा धनिक सत्ताधारियों के आमोद-प्रमोद का साधन बनी रही है, परन्तु अब उसे जनसाधारण के सुख, दुःख, हास्य तथा अश्रुपात में भाग लेना पड़ेगा और इसीमें उसकी सार्थकता निहित है।[१२९]

कला कला के लिए

१८ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में, जब कि 'आरनल्ड' तथा 'रस्किन' कला को नैतिकता के प्रभुत्व से नियन्त्रित कर रहे थे, फ्रांस के कतिपय लेखक तथा कलाकार, विशेषकर बोदेलेयर (Baudelaire) तथा फ्लाउवे (Flaubert) कला की निर्बाध स्वतंत्रता के लिए संघर्षशील रहे। इस नये वाद का बीज कलाकार तथा शेष समाज के पारस्परिक विरोध में निहित था। कलाकार का यह विश्वास था कि वैज्ञानिक विकास-जनित औद्योगिक तथा व्यावसायिक सभ्यता

---

one's neighbour, now attained only by the best members of society, the customary feeling and the instinct of all men-

—*What is Art ?*

[१२९] What is it then that we really need ? An art with the revolution as its subject : because the principal interest in the worker's life must be touched first. It is necessary that to find aesthetic satisfaction and the highest pleasure appareled in the essential interest of life. —D. Rivera.

काव्य तथा कला के लिए घातक सिद्ध हुई है और सामाजिक जटिलता के कारण उस पर इतना भार पड़ रहा है कि उसकी सत्ता ही निर्मूल हो जाना चाहती है। इसलिए कला के स्वास्थ्य तथा पवित्रता के लिए यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि इसकी स्वतंत्रता की घोषणा की जाय और इसको धर्म, समाज, नैतिकता इत्यादि के अनावश्यक तथा जटिल बन्धनों से मुक्त करके इसकी मर्यादा की रक्षा की जाय। एक तरह 'कला कला के लिए' का सिद्धान्त स्वच्छन्दतावादी धारणाओं तथा समसामयिक दार्शनिक विचारों का पर्यवसान था। स्वच्छन्दतावादी कवियों ने कवि को उच्चासन पर आसीन करके उसकी स्वतंत्रता का समर्थन किया तथा जर्मन दार्शनिक कांट ने सौंदर्य को 'प्रयोजनपूर्ण निष्प्रयोजन' (Purposiveness without purpose) की संज्ञा देकर इसकी विशिष्ट सत्ता का प्रतिपादन किया। इसी तरह 'आरनल्ड' ने भी कवि तथा समीक्षक को सामाजिक संस्कृति का रक्षक तथा पोषक मानकर उनकी महत्ता का अनुमोदन किया। इस विचारधारा का प्रबल समर्थन अमेरिकन लेखक 'एडगर एलेन पो' (Edgar Allen Poe) के सौन्दर्यवाद से प्राप्त हुआ। 'पो' ने घोषित किया कि सौंदर्य से ही शुद्धतम, उदात्त तथा गम्भीर आनन्द उपलब्ध हो सकता है। सौंदर्य के चिन्तन से ही हम स्फूर्तिमय आनन्द का अनुभव कर सकते हैं जिसे काव्यानन्द की संज्ञा दी जाती है। इसलिए व्यापक अर्थ में सौंदर्य ही, जिसमें औदात्य भी निहित है, काव्य का विषय हो सकता है।[१३०] फ्रांस में इस वाद के प्रथम प्रवर्तक थे फ्लाउवे (Flaubert) और इन सिद्धान्तों के अनुरूप काव्य-रचना करनेवालों में विशिष्ट कलाकार थे वोदेलेयर। इनके विचारों का इंगलैण्ड में नव-लेखन-समाज द्वारा स्वागत हुआ तथा इसके प्रचारकों में 'वाल्टर पेटर', 'स्विनबर्न', 'ह्विस्लर' तथा 'आस्कर वाइल्ड' ने सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया। अन्तर केवल इतना ही था कि फ्रांस के कला-पुजारी गंभीर तथा विकसित व्यक्ति थे और उनमें वास्तविक लगन तथा

---

१३० That pleasure which is at once the most pure, the most elevating and the most intense, is derived, I maintain, from the contemplation of the beautiful. In the contemplation of beauty we alone find it possible to attain that pleasurable elevation or excitement, of the soul, which we recognize as the poetic sentiment...I make Beauty, therefore, using the word as inclusive of the sublime--I make Beauty the province of the poem.

तपस्या की भावना सदैव बलवती रही, परन्तु इंगलैण्ड के कला-समर्थक प्रायः नवयुवक तथा अनुशासनहीन व्यक्ति थे और उनका मुख्य उद्देश्य अपनी वेश-भूषा, रहन-सहन तथा बात-व्यवहार द्वारा स्वतंत्रता का प्रदर्शन करके परम्परापरस्त या रूढ़िवादी समाज को चुनौती देना था। इसलिए इंगलैण्ड में इस नये सिद्धान्त में कोई जीवित प्रेरणा नहीं थी। इस 'वाद' के मुख्य सिद्धान्तों का संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार किया जा सकता है :—

(क) कला की अपनी विशिष्ट सत्ता है और वह धर्म, समाज, नैतिकता के बन्धन से मुक्त होकर ही अपना पूर्ण विकास प्राप्त कर सकती है। यह साधन नहीं, साध्य है। इसमें नाना प्रकार के विचारों का समावेश हो सकता है, परन्तु उनकी उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति का कला की विशेषता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। किसी प्रकार का वाह्य उद्देश्य कला की विशिष्टता को निश्चित नहीं कर सकता और इसके मूल्यों का मापदण्ड इसके बाहर नहीं, अपितु इसके अन्तर्गत ही प्राप्य होता है। इस पक्ष का विस्तृत विवेचन 'ब्रैडले' ने अपने प्रसिद्ध निबंध 'पोयट्री फॉर पोयट्रीज सेक' (Poetry for Poetry's sake) में इस प्रकार किया है :—

(अ) कला-जन्य अनुभव अपना विशिष्ट मूल्य रखता है और इस मूल्य का निर्णय किसी बाहरी मूल्य की तुलना द्वारा नहीं किया जा सकता। (ब) काव्य द्वारा धार्मिक अथवा सांस्कृतिक लक्ष्य सिद्ध हो सकता है, परन्तु यह लक्ष्य न तो कवि की सृष्टि को प्रेरित करता है और न भावक के काव्यप्रेम को। (स) काव्य वास्तविक जीवन का न तो एक अंग है और न इसका अनुकरण मात्र; यह एक स्वतंत्र क्षेत्र है, नितान्त पूर्ण तथा पराश्रय निरपेक्ष। इस संसार में प्रवेश करने के पहले पाठक को वास्तविक संसार के नियम, विश्वास तथा उद्देश्य से मुक्त होना चाहिए और इसके विशिष्ट नियमों का आधिपत्य पूर्णरूपेण स्वीकार करना चाहिए।[१३१]

---

१३१ First, this experience is an end in itself, is worth having on its own account, has an intrinsic value.

Next, its poetic value is its intrinsic worth alone. Poetry may have also an ulterior value as a means to culture or religion ; because it conveys instruction or softens the passions or furthers a good cause, because it brings the poet fame or money or a quiet conscience....But its ulterior

इस स्वतंत्रता का अतिवाद 'वाइल्ड' इत्यादि के कथनों में हुआ। जैसे–'जहाँ तक जीवन-अनुभव का प्रश्न है, मेरा नौकर इसके लिए उपयुक्त है;' 'प्रकृति कला का आश्रय कदापि नहीं हो सकती; क्योंकि प्रकृति सौंदर्यहीन तथा भद्दी वस्तु है; इसमें जो कुछ सौंदर्य है वह कला की देन है। प्रकृति-निरीक्षण में भी हम कलाकार की सूक्ष्म दृष्टि से ही निर्देश प्राप्त करते हैं। कला के द्वारा ही नग्न प्रकृति को परिधान प्राप्त होता है।

(ख) कला का अर्थ है सौंदर्य-अभिव्यक्ति और सौंदर्य अलौकिक है और इससे जनित आनन्द भी अलौकिक तथा अनुपम हैं। परन्तु कला का सौन्दर्य प्रकृति-सौन्दर्य से उच्चतर है, इसलिए अंगना का सहज लावण्य उतना आकर्षक नहीं है जितना कि वारांगना का कृत्रिम 'पाउडर' तथा 'कासमेटिक-जनित' रूपाकर्षण। वोदेलेयर के 'कुत्सित जीवन के पुष्प' (Flowers of Evil) नामक काव्य-संग्रह में इसी तथ्य का प्रतिपादन हुआ है। इन कलाकारों के लिए परम्परागत सौंदर्य सारहीन था, इसलिए विचित्र सौंदर्य (Strangeness added to Beauty) की खोज में उन्होंने घातक नायक-नायिकाओं (Fatal men and women) का आविष्कार किया और प्रेम के साथ नृशंसता का संयोग स्थापित किया। यहाँ नायिका प्रेमी के रक्त से अपना मुँह लाल करती है और प्रेमी स्वेच्छापूर्वक शलभ के समान प्रेमाग्नि में जलते हुए अपने को धन्य मानता है। (Masochism) तथा कभी-कभी प्रेमी भी अपनी अनुरक्त प्रेमिका को यातना देने ही में पूर्ण रस प्राप्त करता है (Sadism)।

(ग) कला सौन्दर्य-बोध मानव-मन की एक अलग प्रवृत्ति है और यह स्वाभाविक होते हुए भी विकसित की जा सकती है। इस विकसित वीक्षा-प्रवृत्ति को अभिरुचि (taste) या सौंदर्य-बोध की अनुभूति (Aesthetic sensibility) कहते हैं। यही भावक को सहृदय तथा सौंदर्य की उपासना के लिए समर्थ बनाती

---

worth neither is nor can directly determine its poetic worth as a satisfying imaginative experience; and this is to be judged entirely from within. Third, its nature is to be not a part, nor yet a copy of the real world, but to be a world by itself independent, complete, autonomous; and to possess it fully you must enter that world, conform to its laws, and ignore for the time the beliefs, aims, and particular conditions which belong to you in the other world of reality.

है। इससे रहित होने पर कोई भी व्यक्ति काव्य का वास्तविक मूल्यांकन नहीं कर सकता।[१३२]

(घ) काव्य में विषय की गुरुता इतनी आवश्यक नहीं है जितनी कि उसकी शैली तथा शिल्प-चातुर्य जो उसे विशिष्ट रूप (Form) देते हैं। कलाकार के लिए कोई भी वस्तु काव्य-विषय हो सकती है, चाहे वह उच्च हो या साधारण, नैतिक अथवा अनैतिक; उसकी सफलता उसकी पूर्ण अभिव्यञ्जना (expression) पर निर्भर करती है। कलाकार आत्म-दर्शन (Vision) को मूर्तिमान करना चाहता है और इसके लिए उसे सबसे उपयुक्त 'एक' शब्दविशेष की खोज करनी पड़ती है और शब्द-योजना तथा वाक्य-विन्यास द्वारा उसके अनुरूप साँचा प्रस्तुत करना पड़ता है। फ्रांस में फ्लाउबे (Flaubert) शैली के शहीद (martyr of style) माने गये हैं और इंगलैड में इस सिद्धान्त के प्रवर्तक, 'वाल्टर पेटर' ने अपने 'स्टाइल' नामक निबंध में इसी तथ्य का समर्थन किया है और बार-वार इस उक्ति को दुहराया है कि काव्य का आदर्श है वस्तु (matter) तथा रूप (Form) का पूर्ण एकत्व जिसका सर्वोत्कृष्ट नमूना संगीत में मिलता है।[१३३] आज के विशिष्ट 'कलावादी' समीक्षक, जैसे 'क्लाइववेल', 'रोजर फ्राई'

[१३२] Art is selfishly occupied with her own perfection only, having no desire to teach, serving and finding the beautiful in all conditions and in all times. —Whistler.

As long as a thing is useful or necessary to us, or affects us in any way either for pain or for pleasure...it is outside the proper sphere of art. 'To art's subject matter we should be, more or less, indifferent. —Oscar Wilde.

[१३३] There are no beautiful thoughts, without beautiful forms, and conversely. As it is impossible to extract form a physical body the qualities that really constitute it...... without destroying it ; just so it is impossible to detach the form from the idea; for the idea exists by virtue of the form.

If music be the ideal of all arts whatever, precisely because in music it is impossible to distinguish the form from the substance or matter ; the subject from the expression; then literature, by finding its specific excellence in the absolute correspondence of the term to its import will be but fulfilling the condition of all artistic quality in things everywhere of all good art. Pater—*Appreciations*.

रूप (Form) ही को सौंदर्य का आधार मानते हैं और रूपहीन कोई भी तथ्य या विषय उनके लिए कला के अन्तर्गत निषिद्ध है। यद्यपि 'पेटर' ने 'अच्छी कला' तथा 'उच्च कला' का भेद करके विषय के गुरुत्व का भी महत्व स्वीकार किया है और प्रोफेसर ब्रैडले ने भी उसका समर्थन किया है।[१३४] तथापि इंगलैण्ड के नवयुवक कलाकारों के लिए विषय की गौणता शैली की प्रधानता में स्पष्टतः प्रतिपाद्य थी।

(ङ) 'कला कला के लिए' सिद्धान्त कला की पूर्ण स्वतंत्रता का समर्थक रहा और इस स्वतंत्रता का मुख्य अंग था ऐसे विषयों का वर्णन जो समाज की दृष्टि में अनैतिक हैं। विशेषकर स्त्री-पुरुष का प्रेम-संबंध जो न्याय-सीमा के बाहर है अथवा कामवासना या योनि-संबंध का नग्न प्रदर्शन। फ्लाउबे (Flaubert) की प्रसिद्ध पुस्तक 'मैडम बोवेरी' (Madame Bovary) इसी सिद्धान्त का प्रसिद्ध उदाहरण है और इंगलैण्ड में 'स्विनबर्न' के 'पोयम्स् एण्ड वैलड्स' की बहुत-सी कविताएँ बोदेलेयर तथा उनके अनुयायियों की अनुकरण मात्र थीं। इनके फलस्वरूप स्विनबर्न को 'सूकर-सन्तान' (Swine born) की उपाधि मिली; परन्तु नवयुवक क्रान्तिकारी कलाकारों के लिए तो ये कला-स्वातंत्र्य की तूर्यनाद सिद्ध हुईं। इस तरह स्वतंत्र कलाकारों का समाज से सीधा संघर्ष हुआ जिसके प्रतीक रूप में हम 'ह्विस्लर' तथा 'रस्किन' का न्याय-युद्ध तथा 'आस्कर वाइल्ड' का न्यायालय द्वारा कारावास-दण्ड ले सकते हैं।

कालान्तर में कला की नैतिक-नियन्त्रण-मुक्ति ने दो घटनाओं से विशेष प्रोत्साहन प्राप्त किया—एक था प्रथम विश्वयुद्ध और दूसरा फ्रायड् के नये मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन जिसके अनुसार काम-वासना मनुष्य की मूल नैसर्गिक प्रवृत्ति है जो समाज के नियमों के कारण कुण्ठित होती रहती है और इसी कारण स्त्री-पुरुषों में अनेक प्रकार के मानसिक विकार तथा घुटन उत्पन्न होते हैं और संतुलित जीवन प्रायः विकृत हो जाता है। कुछ दिनों तक तो प्रायः ऐसा मालूम होता था कि मानों मनुष्य की कुण्ठित कामवासना का बाँध ही टूट गया है और सम्पूर्ण साहित्य पाशविक प्रवृत्ति से ओतप्रोत हो गया है। आज का कलाकार मर्यादाहीनता ही को कला की स्वतंत्रता मान बैठा है; परन्तु इसका अर्थ यह नहीं

---

१३४ That truth shows that the subject settles nothing but not that it counts for nothing. The fall of man is really a more favourable subject than a pin's head. —*Oxford Lectures on Poetry*.

है कि समाज से नैतिक भावना का वहिष्कार हो चुका है। 'जेम्स ज्वायस' के यूलिसिस (Ulysses) तथा 'डी० एच० लारेन्स' के 'लेडी चैटर्लीज लवर (Lady Chatterley's Lover) पर न्याय का प्रतिवन्ध ही इस धारणा का खंडन करने के लिए पर्याप्त है और 'इलियट', 'जार्ज वर्नार्डशा, 'आइ०ए० रिचर्ड्स' 'गाल्सवर्दी' प्रभृति अनेक लेखकों तथा विचारकों का कथन भी इस विचार के विरुद्ध है। 'इलियट' ने स्पष्ट कहा है कि 'कला का प्राण है अनुशासन और वह कभी भी स्वच्छन्द नहीं हो सकती है और 'शा' ने अपने ध्येय की व्याख्या करते हुए कह दिया है कि केवल कला के लिए तो एक शव्द लिखने का भी कष्ट उठाना मेरे लिए अमान्य है। उन्होंने ललित कला को नैतिक आन्दोलन का एक प्रभावशाली साधन माना यद्यपि उनके विचार आर्थिक, सामाजिक, नैतिक तथा स्त्री-पुरुष-संयोग सम्बन्धी, प्रायः परम्परागत धारणाओं के विरुद्ध रहे। अपने विकास का उल्लेख करते हुए उन्होंने नैतिक भावनाओं के उदय का उल्लेख किया है जिसके द्वारा मन के अनेक अन्य भाव अनुप्राणित तथा सार्थक हुए। वे अग्नि-शिखा के समान प्रज्वलित होकर चमकने लगे, परन्तु वह प्रकाश उनका अपना नहीं था, वह तो नवोदित नैतिक चेतना की दीप्ति मात्र था। उसी चेतना ने उन्हें संवेदना तथा सार्थकता प्रदान की; इससे पहले वे प्रवृत्तियों तथा वासनाओं के झुण्ड मात्र थे, परन्तु नैतिकता ने उन्हें संगठित करके उद्देश्यों तथा सिद्धान्तों की सेना का रूप दिया। उसी चेतना के साथ ही मेरी आत्मा का जन्म हुआ।'[१३५] प्रसिद्ध दार्शनिक फ्रेंच लेखक सार्त्र (Sartre) ने भी प्रायः इसी आशय की घोषणा की है—हम चाहते हैं कि मनुष्य तथा कलाकार मिलकर मुक्ति प्राप्त करें; हम चाहते हैं कि कलाकृति प्रभावशाली कार्य भी हो और इसका निर्माण इस ध्येय से हो कि मनुष्य की बुराई के विरुद्ध संघर्ष में यह एक प्रबल अस्त्र होगी। 'हम घोषित करते हैं कि इसी पृथ्वी ही पर मुक्ति प्राप्य है और इसे सम्पूर्ण मानव के लिए पूर्ण मानव द्वारा प्राप्त करना है और कला का चिंतन-विषय जीवन है, न

---

[१३५] I declare that moral passion, according to my experience, is the only real passion without which other passions are idle and aimless, when they began to shine like newly lit flame it was by no light of their own, but by the radiance of the dwning moral passion. That passion dignified them, gave them conscience and meaning, found them a mob of appetites and organized them into an army of purposes and principles. My soul was born of that passion.

कि मृत्यु ।[१३६] परन्तु नैतिकता तथा कला का स्वस्थ सामंजस्य अपेक्षित है, अर्थात् नैतिक भावना कला में परोक्ष रूप से विद्यमान रहनी चाहिये । उसका प्रत्यक्ष रूप तो कला पर प्रभुत्व स्थापित करके उसे गौण बना देगा ।[१३७] एक आधुनिक कवि ने ठीक ही कहा है कि कलाकार समाज का अन्तःकरण है, न कि उसका 'लाउड स्पीकर' ।

काम-वासना मनुष्य की मूल प्रवृत्ति है और उसके बहुत से कार्यों तथा व्यवहारों के पीछे यह प्रेरणा के रूप में विद्यमान रहती है । इसीलिए प्रेम, स्वस्थ तथा कुत्सित, नैतिक तथा अनैतिक, सदैव कला का मूल प्रेरक रहा है । संसार की महान् कलाकृतियों, जैसे सोफोक्लीज (Sophocles) के 'ऐडिपस रेक्स' (Oedepus Rex) तथा शेक्सपियर के हैमलेट का विशाल भवन कुत्सित प्रेम के आधार पर आरूढ़ है, परन्तु यहाँ आकर्षण का केन्द्र ऐसी प्रेम-भावना अथवा प्रेम-व्यापार से जनित प्रतिक्रिया अथवा परिणाम है, न कि कुत्सित प्रेम का नग्नचित्रण । मनुष्य पाशविक बर्बरता से अग्रसर होकर सभ्यता की सीढ़ी पर चढ़ने के उपयुक्त तभी हुआ जब उसने अपनी पाशविक प्रवृत्ति को अनुशासित करने की आवश्यकता तथा उपादेयता का अनुभव किया और फ्रायड् ने भी कुण्ठित काम-वासना का अनुशासन, शोधन तथा उदात्तीकरण ही मानव-सभ्यता का मुख्य उद्देश्य बतलाया है । कला अथवा कलाकार की स्वतंत्रता का अर्थ यह कदापि नहीं होना चाहिये कि वह पशुओं के समान कीचड़ में लेटकर ही अपने गौरव तथा गरिमा का उदाहरण प्रस्तुत करे । स्विफ्ट (Swift) ने ठीक ही कहा है कि मनुष्य

---

१३६ 'We want the man and the artist to win salvation together. We want the work of art to be an act as well; we want it to be expressly conceived as a weapon in man's struggle against evil. We declare that salvation must be won upon this earth that it must be won for the whole man by the whole man, that art is a meditation on life not on death.
—Sartre.

१३७ The moral has to be exhaled not preached—'A drama must be shaped to have a spire of meaning. Every grouping of life and character has its inherent moral ; and the business of the dramatist is to so pose the group as to bring that moral poignantly to the light of day. Such is the moral that exhales from plays like *Lear*, *Hamlet* and *Macbeth*.
—Galsworthy.

अपने घर में विष रखने के लिए स्वतंत्र है, परन्तु उस विष को बाजार में औषधि कहकर बेचने का अधिकार उसे कभी भी प्राप्त नहीं होना चाहिए। आज की प्रयोगवादी कविता मनुष्य की आदिम जड़ों को प्रकाश में लाने ही में अपनी उद्देश्य-सिद्धि मानती है और इसीलिए अवचेतन की क्रियाओं तथा प्रक्रियाओं को अनावृत करना ही उसका मुख्य कर्तव्य हो गया है; परन्तु इससे प्रायोगिक चमत्कार होते हुए भी कला की आत्मा का पोषण कदापि नहीं हो सकता।

'कीरति भनति भूति भल सोई, सुरसरि सम सब कर हित होई' यही कला का सार्वभौमिक आदर्श है, परन्तु 'हित' की परिभाषा भिन्न-भिन्न प्रकृति के लोगों के लिए भिन्न है। इसलिए अब देखना यह है कि विविध वर्ग के लोग काव्य तथा साहित्य का अध्ययन किस हेतु-सिद्धि के लिए करते हैं :—

(अ) मनोरंजन के लिए काव्याध्ययन एक सर्वमान्य तथ्य है और आज से हजारों वर्ष पहले प्रसिद्ध जीवनी-लेखक प्लूटार्क (Plutarch) ने इसका प्रबल प्रतिपादन किया और उनके परवर्ती यूरोपीय काव्य-प्रेमियों ने इसको अनेक बार दुहराया है। परन्तु तथ्य सर्वदेशीय है जैसा कि संस्कृत के प्रसिद्ध श्लोक से स्पष्ट है :

काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।
व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा॥

आज के मनोवैज्ञानिकों ने यह अनुभव-गत सत्य सिद्ध कर दिया है कि साहित्य, कला, धर्म इत्यादि मनुष्य के दिवास्वप्न के परिणाम हैं। मनुष्य जब जीवन में सन्तुष्ट नहीं रहता तब वह काल्पनिक संसार का निर्माण करता है अथवा उसमें विचरण करके वास्तविक जीवन की घुटन से त्राण प्राप्त करता है। इस क्षणिक त्राण से उसको शान्ति प्राप्त होती है और वह सहर्ष अपने दैनिक जीवन के कटघरे में पुनरावर्तन करता है। अंग्रेजी के प्रसिद्ध निबंधकार चार्ल्स लैम्ब ने रेस्टोरेशन (Restoration) काल के सुखान्त नाटकों का समर्थन करते हुए अपने एक प्रसिद्ध निबंध में लिखा है कि बहुत से लोग इनका विरोध इसलिए करते हैं कि इनमें स्त्री-पुरुष के अनैतिक प्रेम का नग्न-चित्र प्रस्तुत किया गया है; परन्तु इनकी उपादेयता भी निर्विवाद है। हमको यह समझना चाहिए कि इन कला-कृतियों में एक काल्पनिक संसार प्रस्तुत है जिसे हम प्रेम-केलि की स्वतंत्रता का स्वर्ण जगत् (Utopia of gallantry or land of cuckoldry) कह सकते हैं जहाँ नियंत्रण-मुक्त प्रेम ही मुख्य कर्तव्य है तथा उससे प्राप्त आनन्द जीवन का चरम लक्ष्य। इस संसार में प्रविष्ट होते ही मनुष्य उस अन्तःकरण

के शासन से मुक्त हो जाता है जो कि वास्तविक जीवन में पदे पदे गत्यवरोध उपस्थित करता रहता है। इस क्षणिक, किन्तु पूर्ण स्वतंत्रता के अनुभव तथा आस्वादन के पश्चात् मनुष्य स्वेच्छापूर्वक फिर अपने परिचित कारागार में लौटता है, एक नई स्फूर्ति के साथ। परन्तु इसमें खतरा यही है कि कभी-कभी अपरिपक्व पाठक काल्पनिक संसार के सौंदर्य से इतना मुग्ध हो जाता है कि वास्तविक जीवन उसके लिए नितान्त नीरस तथा भार-स्वरूप प्रतीत होने लगता है। इसलिए काल्पनिक जगत् एवं वास्तविक जगत् का मौलिक अन्तर कभी भी भूला नहीं जा सकता है।

फ्रांसिस बेकन (Francis Bacon) ने इतिहास तथा काव्य का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए लिखा है कि इतिहास वास्तविक घटनाओं का क्रम-बद्ध विवरण प्रस्तुत करता है, इसलिए वह हमारे मन को वास्तविकता के बन्धन से कभी भी मुक्त नहीं कर सकता। परन्तु कवि इन घटनाओं का दास नहीं, अपितु इनका स्वामी है; क्योंकि वह प्रकृति-नियम के विरुद्ध वस्तुओं का संयोग-वियोग (unlawful-matches and divorces) करके एक ऐसी सृष्टि का निर्माण करता है जो हमारी आत्मा की अतृप्त इच्छाओं तथा महत्वाकांक्षाओं को पूर्णरूपेण सन्तुष्ट करने के लिए समर्थ सिद्ध होती है।

फ्रायड् के मनोवैज्ञानिक विचारों का हम उल्लेख कर चुके हैं अतः यहाँ पर उनकी संक्षिप्त पुनरावृत्ति ही पर्याप्त होगी। उनके मतानुसार कलाकार व्यावहारिक जीवन में असफल तथा कुण्ठित रहता है और समाज से उसे तिरस्कार एवं हीनता ही प्राप्त होती है, इसलिए वह कला-सृष्टि में तत्पर होता है जिससे उसको आत्म-गौरव, प्रभुत्व एवं क्षति-पूर्ति (Compensation) का स्वर्ण अवसर मिलता है। इस आत्म-सुख के साथ ही साथ वह समाज के अनेक कुण्ठित एवं असफल या तिरस्कृत पाठकों के मनोरंजन तथा संतोष का एक स्थायी तथा चिर-नवीन माध्यम भी तैयार कर देता है।

(ब) इसीसे मिलता-जुलता 'रेचन' अथवा 'शुद्धि-करण' (Cathartic) सिद्धान्त है जिसके अनुसार साहित्य मानव-मन के लिए एक खिड़की के समान है जिसके द्वारा मनोविकारों का कलात्मक बहिर्निस्सरण हो सकता है और इसके परिणामस्वरूप मन का आन्तरिक वातावरण शुद्ध होता है। कुछ लोगों की धारणा है कि अरस्तू के काव्यशास्त्र में ट्रेजेडी की 'कैथारसिस' का यही अर्थ है; क्योंकि करुणा तथा भय का अतिशय प्रदर्शन वास्तविक जीवन में मन की दुर्बलता का द्योतक है, परन्तु नाटक देखते तथा पढ़ते समय हम इन भावों की

स्वच्छन्द अभिव्यक्ति बेखटक कर सकते हैं। इसीलिए एफ० एल० ल्यूकस (Lucas) ने दुःखान्त नाटक को मानव-मन के शुद्धिकरण का कलात्मक माध्यम माना है। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने साहसपूर्ण कथाओं, स्वर्णयुग सम्बन्धी साहित्य (Utopias) तथा अश्लील ग्रन्थों की उपयोगिता सिद्ध की है। उनका कहना है कि सभ्य प्राणियों के हृदय में भी पाशविक प्रवृत्ति विद्यमान रहती है जिसका समाज में विरोध हो सकता है, परन्तु पूर्ण दमन असम्भव है। मन के स्वास्थ्य के लिए यह आवश्यक है कि किसी न किसी माध्यम से इन कुण्ठित भावनाओं तथा मनोविकारों की परितुष्टि संभव की जाय। मानसिक चिकित्सा (Therapy) का यही मूल सिद्धान्त है। इसमें रोगी को अपनी कुण्ठित भावनाओं को प्रकाश में लाने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है और इस क्रिया के द्वारा मानसिक ग्रन्थियों (Complexes) के विगलन तथा तज्जनित स्वास्थ्य-लाभ के लिए मार्ग प्रशस्त होता है। प्राचीन यूनानी तथा रोमन लोगों ने ऐसे उत्सवों का विधान किया था जिसमें थोड़े समय के लिए मनुष्य सामाजिक तथा नैतिक बंधनों से पूर्ण मुक्त हो जाता था और प्रकृति के निर्बाध जीवन-क्रम के साथ एकत्व का अनुभव प्राप्त करता था। मध्यकालीन रोमन कैथलिक चर्च ने भी 'ऑल फूल्स डे' (All Fools Day) तथा ब्वाय बिशप (Boy Bishop) इत्यादि ऐसे उत्सवों की व्यवस्था की थी जिसमें धार्मिक नियन्त्रण अथवा अनुशासन हास्यास्पद होते थे और धार्मिक जीवन की कठोरता से त्राण प्राप्त होता था। 'युंग' ने कहा है कि ऐसे उत्सवों का 'प्रोटेस्टेन्ट' चर्च द्वारा पूर्ण निषेध होने के कारण अब केवल युद्ध ही मनुष्य की नैसर्गिक बर्बरता की सन्तुष्टि का साधन रह गया है। इसीलिये वैज्ञानिक सभ्यता के उत्कर्ष के साथ ही युद्ध की हिंसात्मक तीव्रता भी बढ़ती जा रही है।

फ्रायड् के अनुयायियों के मतानुसार अश्लील साहित्य भी पाठकों की कुण्ठित काम-वासनाओं की तृप्ति करता है और यही इसकी लोकप्रियता का मुख्य कारण है। परन्तु यह तर्क न्यायसंगत कभी भी नहीं माना जा सकता कि इस तरह के साहित्य से मन की कुत्सित प्रवृत्ति का शोधन संभव है। इस तरह का साहित्य तो मदिरा के समान है जिसका सेवन एक बुरी लत का रूप धारण करता है जिसका मनुष्य क्रीत-दास हो जाता है। हाँ, यह सत्य है कि अश्लील साहित्य उत्तेजक सिनेमा-फिल्म के समान मानव-मन की कुण्ठित भावनाओं की परितृप्ति करता है और यही इसकी लोक-प्रियता का कारण भी है। सभ्यता की जटिलता के साथ धार्मिक तथा नैतिक विचारों का ह्रास हुआ है और आज का अधिकांश साहित्य अस्वस्थ विचारों का उत्तरोत्तर पोषक होता जा रहा है।

काव्य तथा सत्य

'प्रेमी, पागल तथा कवि कल्पना से अभिप्रेरित होकर ऐसी सृष्टि का निर्माण करते हैं जिनकी वास्तविकता का कोई आधार नहीं है'—ऐसा शेक्सपियर के एक पात्र का मत है। प्रेमी अपनी काली-कलूटी प्रेमिका को उर्वशी से भी अधिक रूपवती मानता है तथा पागल अपनी कल्पना से इतने भयंकर दानवों की सृष्टि करता है जितने कि नरक के सीमारहित साम्राज्य में भी उपलब्ध नहीं हैं और कवि-प्रतिभा त्रिभुवन का निरीक्षण एक पल में समाप्त करके काल्पनिक प्राणियों को संज्ञा, समय, स्थान की परिधि में लाती है जो वास्तव में प्राकृतिक जीवन-मरण के नियम से मुक्त होते हुए भी चिर-परिचित एवं चिर-नवीन रहते हैं। इसलिए पूर्व तथा पश्चिम में साहित्य के उदयकाल से ही धर्म, दर्शन, इतिहास तथा कालान्तर में विज्ञान तथा अन्य जीवन संबंधी तथ्यों के शोधन-रत क्षेत्रों से काव्य तथा कवि पर प्रहार होता रहा है और विरोधियों ने या तो अश्लीलता का दोषारोपण किया अथवा कवि को 'असत्य का व्यापारी' (dealer in lies) कहकर अपनी सत्य-निष्ठा का परिचय दिया है।

भारत में 'काव्यालापांश्च वर्जयेत्' इत्यादि स्मृति-वाक्य इस विरोध के साक्षी हैं और यूरोप में प्लेटो के समय से लेकर आज तक की लम्बी अवधि में अनेक वार काव्य-प्रेमियों तथा उसके विरोधियों में महाभारत मचा है जिसमें तलवार का काम लेखनी ने किया है। 'प्लेटो'प्रभृति दार्शनिकों का आग्रह रहा है कि काव्यसंसार छाया मात्र है जिसके स्रष्टा हैं कल्पना तथा दैवी उन्माद (Inspiration)। इसलिए काव्य-कथन तर्क तथा बुद्धि की कसौटी पर खरे नहीं उतर सकते और उनका काम केवल 'मायामृग' के समान अपरिपक्व पाठकों का मनोरंजन तथा भावोद्दीपन मात्र है। कुछ अधिक उदार समालोचक कवि को इतना ही श्रेय देने के लिए तैयार होते हैं कि वह दर्शन, धर्म, इतिहास एवं विज्ञान से प्राप्त तथ्यों तथा सिद्धान्तों को भाषा तथा कल्पना का सुन्दर परिधान पहनाकर पाठकों का समर्थन तथा अनुग्रह प्राप्त करता है।

हमारा विवेचन इन्हीं दो तर्कों के विचार से आरंभ होता है। यह सत्य है कि कवि की कल्पना स्वच्छन्द तथा प्रकृति-नियम के परे है और ऐतिहासिक घटनाओं तथा पात्रों के स्थूल तथा परिचित रूप में भी कवि अपने जादू से नवीनता तथा चमत्कार पैदा करता है। अरस्तू ने अपने काव्य-शास्त्र में काव्य को इतिहास के ऊपर प्राथमिकता प्रदान की है और अपने यहाँ अभिनवगुप्त

आदि आचार्यों ने भी इस विषय में कवि की स्वतंत्रता का प्रतिपादन किया है। इस संदर्भ में 'ध्वन्यालोक' का एक प्रसिद्ध कथन स्मरणीय है :

कविना प्रबन्धमुपनिबंध्नता सर्वात्मना रसपरतन्त्रेण भवितव्यम्। तत्र इतिवृत्ते यदि रसाननुगुणां स्थितिं पश्येत्, तां भङ्क्त्वापि स्वतन्त्रतया रसानुगुणां कथान्तरम् उत्पादयेत्। नहि कवेः इतिवृत्तिमात्रनिर्वाहेण कश्चित् प्रयोजनम्।

इस तरह इतिहास के परिचित पात्रों तथा तथ्यों का पुनर्निर्माण करके कवि उनमें रस का संचार करता है और उनमें निहित सत्यात्मा की अभिव्यक्ति भी इसके साथ ही संभव होती है। उदाहरणार्थ, हम शेक्सपियर के ऐतिहासिक नाटकों को ले सकते हैं जिनमें तथ्य तथा कल्पना के सामंजस्य द्वारा अतीत का इतिहास जीवित तथा सार्थक किया गया है और इतिहास के परोक्ष रहस्यों का सफल उद्घाटन भी हुआ है। जैसे इतिहास केवल इतना ही कहता है कि राजकुमार हेनरी प्रायः शराबियों तथा लफंगों के साहचर्य में कालयापन किया करते थे और उनके साथियों में प्रमुख स्थान एक वयोवृद्ध तथा भीमकाय पुरुष का था जो अपने मदिरा-प्रेम तथा व्युत्पन्न मति के लिए प्रसिद्ध था। इसी इंगित के आधार पर महाकवि ने संसारप्रसिद्ध हास्य रस-मूर्ति फाल्सटाफ (Falstaff) का निर्माण किया और उनके दृष्टिकोण को युद्ध-रत वीरों के आदर्श के विरोधी तत्व के रूप में समाविष्ट करके एक ऐतिहासिक घटना में निहित सार्वभौमिक तथ्य का निरूपण किया है। इस नाटक के प्रसिद्ध नवयुवक वीर हाटस्पर (Hotspur) हैं जिनके लिए विजय-प्राप्त सम्मान अथवा ख्याति (Honour) एक ऐसा रत्न है जिस पर जीवन के सभी आनन्द निछावर किये जा सकते हैं। परन्तु फाल्सटाफ (Falstaff) ने इस उपलब्धि की मीमांसा करते हुए यह सिद्ध किया है कि मृत अथवा पंगु सैनिक के लिए यह सम्मान निरर्थक है और मनुष्य की कोई भी विभूति (blessing) उसी समय तक वांछनीय है जब तक उसका पूर्ण उपभोग करने के लिए वह स्वस्थ तथा सशक्त है।

सोलहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध अंग्रेज समीक्षक, 'सर फिलिप सिडनी' ने अपने बहु-चर्चित निबंध 'डिफेंस ऑफ पोइजी' (Defence of Poesy) में ठीक ही कहा है कि दार्शनिक तथा धार्मिक सत्य जब तक काव्यरूप धारण नहीं करते तब तक वे नीरस तथा निष्प्राण रहते हैं। कवि उन तथ्यों को मूर्तिमान् तथा भावोत्पादक बनाता है और पाठकों के मन में उनके प्रति अनुराग पैदा करता है। दार्शनिक, पिता, पुत्र, भाई, पति, पत्नी तथा राजा-प्रजा के गुणों तथा आदर्शों की

परिभाषा तथा विस्तृत परिचय प्रस्तुत कर सकता है; परन्तु कवि इन सब गुणों के प्रतीक-रूप 'राम' ऐसे नायक का निर्माण करता है और उनके विविध कार्यो को कथानक का सुव्यवस्थित कलेवर देकर मनोरंजन के साथ ही आत्मोन्नयन की उपयुक्त सामग्री तैयार कर देता है जो असंख्य पीढ़ियों के लोगों का सन्ताप-शमन तथा मल-शोधन करने के लिए समर्थ सिद्ध होते हैं। यही बात वैज्ञानिक सत्य के संबंध में भी कही जा सकती है। स्वच्छन्दतावादी युग के प्रसिद्ध कवि वड्ँस वर्थ का यह दावा था कि काव्य विज्ञान का स्फूर्तिमय तथा परिष्कृत तत्त्व है और उसमें वह सभी प्रकाश एवं लावण्य केन्द्रित है जो कि विज्ञान के विविध अंगों की शोभा बढ़ाते हैं। कवि विज्ञान के जड़ (abstract) सिद्धान्तों को सक्रिय सत्य का रूप देता है—सक्रिय सत्य का अर्थ है वह सत्य जो भावावेग से अनुप्राणित करके पाठकों के हृदय में संक्रमित किया जाता है (Truth carried alive into the heart with passion.)।[१३८] इस कथन की पुष्टि उनके ही काव्यों द्वारा संभव है, जैसे ओड टु ड्यूटी (Ode to Duty) अथवा टिंटर्न अबे (Tintern Abbey) का अन्तिम भाग जिसमें उन्होंने प्रकृति की प्राण-भूत सत्ता का वर्णन करते हुए लिखा है :—

"A motion and spirit that impels all thinking things,
And all objects of all thought and rolls through all things."

इन कविताओं में यह स्पष्ट है कि मूल प्रेरणा न्यूटन के सिद्धान्तों से प्राप्त है, परन्तु कवि की कल्पना तथा लेखनी ने उनको सजीव तथा गतिशील करके एक शाश्वत प्रेरणा का रूप दे दिया है। आशय यह है कि कवि धार्मिक, वैज्ञानिक तथा दार्शनिक सत्यों अथवा सिद्धान्तों के रूपान्तर मात्र ही से सन्तुष्ट नहीं रहता, वह उनमें मौलिक परिवर्तन करके उनका नवनिर्माण करता है; जिस प्रकार वह वास्तविक जीवन से प्राप्त उपादानों की पुनः सृष्टि करके उनको रसमय तथा सारगर्भित बनाता है।

'जान कीट्स' ने ठीक ही कहा है कि पुरानी कहावतें तथा उपदेश-प्रद वाक्य हमारे लिए तभी अर्थपूर्ण होते हैं जब उनका परीक्षण हमारी नस तथा नाड़ी पर

---

१३८ Poetry is the breath and finer spirit of all knowledge, the impassioned expression which is in the countenance of all science......the remotest discoveries of the chemist or minerologist will be as proper objects of the poet's art as any upon which it can be employed, if the discoveries of scientists affected us as 'enjoying and suffering beings'.

होता है।[१३९] अर्थात् सत्य जब अनुभूति से उत्प्रेरित होता है तभी वह हृदय में प्रवेश करता है। कवि का काम है, जैसा कि इलियट ने कहा है, कोरा विचार प्रदान करना नहीं, अपितु विचारों का भावात्मक समीकरण (emotional equivalents of thoughts) उपस्थित करना। इस तथ्य की पुष्टि में 'एज़रा पाउंड' की प्रसिद्ध उक्ति कि काव्य दिव्य प्रेरणा से पूर्ण गणित (Inspired Mathematics) है उधृत किया जा सकता है—इसका अर्थ है जिस प्रकार गणित के प्रतीक सटीक होते हैं उसी प्रकार काव्य में विचारों का भावात्मक रूप-परिवर्तन भी ठीक तथा सफल होता है और कवि परिचित तथ्य को शक्ति तथा नवीनता से प्राणमय बनाता है। इस तरह कवि धार्मिक, वैज्ञानिक तथा नैतिक विचारों को भाव-सिक्त करके उन्हें नवीन तथा स्फूर्तिमय बनाता है और एक समीक्षक का यह तर्क नितान्त न्यायसंगत है कि सत्य तथा विचार का स्वामी एवं स्रष्टा वही है जो उनको उपयुक्त तथा सशक्त शब्दों में अभिव्यक्त कर सकता है। 'शेक्सपियर', 'मिल्टन', 'कालिदास', 'भवभूति' तथा सूर और तुलसी के विचार प्रायः उनकी जाति, धर्म तथा संस्कृति की देन हैं, परन्तु उनकी लेखनी ने उन्हें एक नये साँचे में ढालकर ऐसे प्रचलित (Current) सिक्कों का रूप दे दिया है जिन पर उन्हीं की प्रतिभा की छाप है और उनका मूलरूप प्रायः गोण हो गया है।

इसलिए आई. ए. रिचर्ड्स का प्रसिद्ध कथन कि विज्ञान का सत्य ऐसा होता है जिसको हम तर्क द्वारा सिद्ध अथवा असिद्ध कर सकते हैं और उसमें विवाद का स्थान नहीं रहता, परन्तु काव्य-सत्य कविता के अन्तर्गत ही सार्थक होता है, इसका कोई बाह्य मापदण्ड नहीं होता है, पूर्णरूपेण मान्य नहीं हो सकता। यह ठीक है कि कभी-कभी कवि-कथन रूपक तथा प्रतीक के माध्यम से तर्क तथा विशुद्ध बुद्धि की सीमा का अतिक्रमण करता है, परन्तु वहाँ भी मानव-अनुभूति उसका मापदण्ड होती है। 'कीट्स' तथा 'शेली' ने दो पक्षियों (nightingale and skylark) को, जो मनुष्य के समान ही नश्वर हैं, अमर घोषित किया है और कालिदास के यक्ष ने 'धूम, ज्योति, सलिल के सन्निपात' से उद्भूत मेघ को ही अपने प्रेम-सन्देश का वाहक बनाया है जो यथार्थवादियों के लिए विवाद अथवा उपहास के विषय हो सकते हैं, परन्तु सहृदयों के लिए उनकी उपयुक्तता स्वयंसिद्ध है। भावाभिभूत मनुष्य साधारण जीवन में भी प्रकृति के पदार्थों

१३९ Axioms in philosophy are not axioms until they are proved upon our pulses.

तथा व्यापारों पर अपने भावों का आरोप करके उनको सजीव तथा चेतनामय बनाता है और प्रकृति-नियमों के विरुद्ध वस्तुओं का संयोग-वियोग करता रहता है, परन्तु यह सभी व्यापार उसके भावात्मक सत्य तथा अनुभूति की पूर्ण अभिव्यक्ति के माध्यम मात्र हैं। हम कह सकते हैं कि काव्य में बुद्धि की कसौटी नहीं, अपितु भाव या अनुभूति की कसौटी मान्य होती है और यह कसौटी वैज्ञानिक मापदण्ड से किंचिन्मात्र भी निम्न अथवा अव्यावहारिक नहीं कही जा सकती है। संसार के असंख्य प्राणी अपने हृदय द्वारा प्रेरित होकर सुख-दुःख का अनुभव अथवा त्याग, तपस्या, आत्म-बलिदान करते हैं और उनके महत्वपूर्ण निर्णयों में तर्क का आश्रय नहीं के बराबर होता है। जो सैनिक देश के लिए सहर्ष जीवन उत्सर्ग करता है; शहीद जो जाति या धर्म के लिए अग्नि को श्रीखण्ड समझकर उसमें प्रवेश करता है; वैज्ञानिक जो सत्य की खोज में शारीरिक सुखों तथा जीवन को तिलाञ्जलि देता है और समाज-सुधारक जो कुरीतियों के उन्मूलन के लिए कण्टकाकीर्ण मार्ग अपनाता है, उसका पथ-प्रदर्शन हृदय के उच्छलित भावों से होता है न कि फलाफलविवेकिनी बुद्धि से, और इसी तरह के भावप्रेरित साहसिक व्यापारों पर ही मानवता का उत्कर्ष अथवा महत्व आश्रित रहा है। ऐसे कार्यों का मूल्यांकन न तो वणिक की तुला पर हो सकता है और न वैज्ञानिक की प्रयोगशाला में।

१९ वीं शताब्दी के प्रसिद्ध कवि जॉन कीट्स ने आशंका प्रकट की कि विज्ञान ने इन्द्रधनुष को सात साधारण रंगों का सामंजस्य मात्र सिद्ध करके उसे सौंदर्य तथा रहस्य से रहित कर दिया है; परन्तु यह आशंका अभी तक निर्मूल सिद्ध हुई है। आज भी इन्द्रधनुष देखनेवाले असंख्य प्राणी 'वर्ड्सवर्थ' के उद्‌गारों का हार्दिक समर्थन करते हैं—'जब मैं इन्द्रधनुष का दर्शन आकाश में करता हूँ तो मेरा हृदय हर्षातिरेक से उछल पड़ता है'। आज भी चन्द्रमा बहुतों के लिए शीतल हिमांशु है, परन्तु 'दूरबन्धुर्गत' प्रेमियों के लिए पीड़ोद्दीपक है, यद्यपि वैज्ञानिकों ने प्रायः सिद्ध कर दिया है कि चन्द्रमा रेत, पानी तथा पर्वतों से आच्छादित एक पृथ्वी का उपग्रह मात्र है और इसका सभी प्रकाश सूर्य से प्राप्त होता है। एक विचारक ने ठीक ही कहा है कि बर्बर युग का आदिम मानव प्रकृति से त्रस्त अथवा अभिभूत रहा और वैज्ञानिक शक्ति से परिपूर्ण सभ्य मानव प्रकृति पर पूर्ण प्रभुत्व स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील है, परन्तु कवि तथा कलाकार निर्लिप्त भाव से प्रकृति का अध्ययन करता है और उसके बदलते हुए रूपों का प्रेम तथा मनोयोगपूर्वक चिन्तन करता है, जिसके फलस्वरूप प्रकृति मनुष्य के भावात्मक जीवन का अंग हो जाती है और अपने वास्तविक रूप-

विन्यास, रहस्य तथा सौन्दर्य की झांकी प्रस्तुत करती रहती है। मैथ्यू 'आरनल्ड' की तद्विषयक व्याख्या नीचे उधृत है और उसकी सार्थकता स्वयंसिद्ध है[१४०] और उसके साथ ही 'कोलरिज' की उक्ति भी स्मरणीय है कि कवि प्रकृति के ऊपर से परिचित रूप का आवरण हटाकर उसके शाश्वत रहस्य तथा आन्तरिक छटा का उद्घाटन करता रहता है। मैक्स सोयन (Max Schoen) ने ठीक ही कहा है कि अनुभव जो आत्म निर्भर है एवं साध्य रूप में विद्यमान है एक विशिष्ट शक्ति तथा स्फूर्ति से प्राणान्वित रहता है, क्योंकि यह ऐसा अनुभव होता है जिसमें जीवन स्वत्व की उपलब्धि करता है, न कि किसी प्राप्ति के लिए प्रयत्न-शील रहता है। यह अनुभव आनन्दमय होता है; क्योंकि इससे जीवन की स्पर्धा तथा संघर्ष से (अल्प समय के लिए ही सही) त्राण मिलता है। इस आनन्द में विस्मय का भी पुट रहता है; क्योंकि यह अनुभव जीवन के एक ऐसे पहलू का द्योतन करता है जो प्रायः दुर्लभ होता है।[१४१] काव्य का काम इसी तरह के अनुभव के माध्यम से सम्पन्न होता है; काव्य न तो जीवन की कोरी छाया है और न जीवन से पलायन; यह जीवन से संबंधित होते हुए भी उससे अलग है; क्योंकि यह जीवन की क्रियात्मक व्याख्या है जिसमें या तो जीवन के तथ्य आदर्श-

---

१४० The grand power of poetry is its interpretative power, not a power of drawing out in black and white an explanation of the mystery of the universe, but the power of so dealing with things as to awaken in us a wonderfully full, new and intimate sense of them, and of our relation with them. When this sense is awakened in us, as to object without us, we feel ourselves to be in contact with the essential nature of those objects, to be no longer bewildered or oppressed by them, but to have their secret and to be in harmony with them ; and this feeling calms and satisfies us as no other can.

१४१ Experience that is its own reason for being has a vitality of its own, for it is experience in which life is attained in contrast with experience through which life seeks attainment. Such experience is joy that is a delight as a respite from the life of struggle and strife and it is a joy that is a wonder, as an aspect of life that is encountered but rarely.

रंजित होते हैं अथवा कला के नियमों के अन्तर्गत। वे हमारी इच्छा तथा स्पर्धा की वस्तु नहीं रह जाते; क्योंकि हम उनको एक चिन्तक के रूप में, जो स्वार्थ तथा संकीर्ण रागद्वेष से परे है, उनका अनुभव तथा चिन्तन कर सकते हैं। इससे हम उनकी आन्तरिक सत्यता का साक्षात्कार करते हैं। यही 'जॉन कीट्स' के वहुचर्चित कथन का सारांश है—जो कवि के सर्जनात्मक कल्पना के लिए सौंदर्य है वह सत्य का पर्याय है। कवि-कल्पना बाबा आदम के स्वप्न के समान है, (जिसमें उन्होंने अपनी जीवन-संगिनी का दर्शन किया) जो जागृत अवस्था में ठोस सत्य सिद्ध हुआ (क्योंकि 'Eve' सजीव उनके पास खड़ी थी)। इसका अर्थ है कि कवि-कल्पित सृष्टि भ्रमात्मक नहीं, अपितु जीवन के रहस्यों की प्रतीति का एक सुन्दर माध्यम है। जिस प्रकार वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशाला में उपयुक्त वातावरण पैदा करके प्रकृति-निहित सत्यों का अध्ययन तथा अन्वेषण करता है, उसी प्रकार कवि कला के माध्यम से जीवन के गूढ़ सत्यों तथा रहस्यों का अनुभव करता है। इसके द्वारा हम जीवन के व्यापक तथा गूढ़तम रूप का दर्शन करते हैं और आनन्द के साथ ही साथ एक नये प्रकार का ज्ञान प्राप्त करते हैं। इस ज्ञान का मूल्य इस बात पर निर्भर है कि इसके द्वारा हम 'अहं' की चहारदीवारी से बाहर निकलकर एक व्यापक दृष्टिकोण, संवेदनशील संबंध तथा पैनी अन्तर्दृष्टि विकसित करने के योग्य होते हैं। 'जॉन ड्रिन्क वाटर' ने इसी तथ्य का निरूपण अपने एक सुन्दर कथन में करते हुए लिखा है—'कवि के स्फूर्तिमय (inspired) शब्द अनुभव को नवीन ही नहीं बनाते, वे इससे भी आगे बढ़कर पाठक के लिए एक अत्यन्त आवश्यक काम करते हैं। ये उसकी अनुभव-शक्ति का अभिवर्धन करते हैं, उसके प्रतीति-बोध (Perception) को उस अनुभव अथवा आभ्यन्तरिक दृष्टि या दर्शन द्वारा तीव्रतर करते हैं जिससे उसका मस्तिष्क अपने चिरपरिचित व्यापारों में अधिक सशक्त तथा प्रभुत्वपूर्ण होकर लौटता है।'[१४२]

---

१४२ It is not only that in this inspiration of words an experience has been imparted that is new in its own particular ; beyond that, and even more radically important to me, my capacity for experiencing, for perceiving, has been permanently enlarged by this particular act of experience or vision, my faculties have been permanently sharpened, and my mind goes back to its routine avocations with a surer mastery than it employed before'.

हम यह पहले कह चुके हैं कि काव्य भावात्मक अभिव्यक्ति है, उससे हमारे हृदय की मूक अनुभूतियाँ मुखरित होती हैं और अस्पष्ट भावों का स्पष्टीकरण होता है जिससे हम उन भावों के प्रति चैतन्य होते हैं और इस चेतना से धीरे-धीरे हम अपने भावात्मक जीवन को संतुलित अथवा अनुशासित करते हैं। 'वर्ड्सवर्थ' ने ठीक ही कहा है कि काव्य भावात्मक विकास का साधन है; महाकवि का काम है हमारे भावों का शोधन करना, उनको नये ढंग से संगठित करना और इस तरह उनको अधिक स्वस्थ, शुद्ध तथा स्थायी बनाना जिससे कि वे प्रकृति और उसमें सक्रिय प्राण-रूप शाश्वत आत्मा के अनुकूल हो सकें।[१४३]

काव्य-जगत् में दैनिक जीवन के संघर्ष तथा शोरगुल शान्त हो जाते हैं और उद्दण्ड भावावेश तथा मनोविकार भी अनुशासित तथा सुपुप्त प्रतीत होते हैं और इस संसार में सक्रिय स्त्री-पुरुष भी छायामात्र जान पड़ते हैं; परन्तु पाठक का संवेदनशील हृदय इस नीरव तथा निष्प्राण संसार को जीवित तथा शक्तिमय बनाता है और तब उसे यह अनुभव होता है कि कवि का साकार स्वप्न जीवन के वास्तविक रूप का सबल माध्यम है और उसके काल्पनिक पात्र मानव-जाति के अमर आर्दश पात्र, सदुपदेशक तथा पथ-प्रदर्शक हैं, जिनके सत्संग से हमारे आत्मज्ञान तथा अनुभव का क्षेत्र व्यापक होता है। उपर्युक्त विवेचन का निष्कर्ष यही है कि काव्य-सत्य की अपनी विशिष्टता एवं उपादेयता है और कवि प्रत्यक्ष तथ्य को तोड़-मरोड़ करके भी सत्य के उच्चतर तथा अपरिचित पहलू का दर्शन कराता है।

काव्य तथा विज्ञान

प्रोफेसर 'कर' (Ker) के कथनानुसार काव्य तथा विज्ञान दोनों का मुख्य ध्येय है वस्तुओं का स्पष्टीकरण। विज्ञान वाह्य संसार का रहस्योद्घाटन करता है और कवि मानव-भावनाओं का अध्ययन तथा प्रकाशन। काव्य का आन्तरिक ज्ञान विज्ञान के वस्तुबोध से किसी प्रकार भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। इसलिए 'ड्यूरेल' (Durrell) के शब्दों में हम कह सकते हैं कि विज्ञान बौद्धिक काव्य है तथा काव्य भावात्मक विज्ञान है।[१४४] इसी तरह काव्य तथा विज्ञान एक

---

१४३ A great poet ought to rectify men's feelings, to give them new compositions of feelings, to render their feelings more sane, pure and permanent, in short, more consonant to nature, that is, to eternal nature and the greatmoving spirit of things.

१४४ Science is the poetry of intelligence and poetry is the science of the heart's affections.

दूसरे के पूरक हैं और एक दूसरे से अलग होकर अधूरे रह जाते हैं। इसका प्रबल उदाहरण हमारी आज की वैज्ञानिक सभ्यता है, जिसमें विज्ञान तथा काव्य का मौलिक संबंध टूट गया है, जिसके फलस्वरूप मनुष्य का बौद्धिक ज्ञान उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है, परन्तु उसका भावात्मक जीवन उसी मात्रा में संकीर्ण होता जा रहा है। मनुष्य ज्ञान में तो महामानव हो गया है, परन्तु हृदय में वह उतना ही वर्बर रह गया है जितना कि वह अपनी असभ्यावस्था में था। इस विरोध का परिणाम यह हुआ है कि वैज्ञानिक प्रगति जीवनोन्मुख होने के बजाय मृत्यु की ओर अग्रसर होती प्रतीत होती है और भय यह है कि मनुष्य का हृदय-हीन ज्ञान कहीं उसका अस्तित्व ही समाप्त न कर दे।

जहाँ तक ज्ञानात्मक पक्ष का संबंध है विज्ञान तथा काव्य का क्षेत्र अलग है, यद्यपि दोनों के संयुक्त प्रयत्न से ही मानवसभ्यता पूर्ण तथा सम्पन्न हो सकती है। ज्ञान-प्राप्ति के दो मार्ग हैं जिसको हम 'डी० एच० लारेंस' के शब्दों में 'वस्तु-वियुक्त ज्ञान-क्रिया' तथा 'वस्तु संयुक्त ज्ञान क्रिया' (Knowing in separateness and knowing in togetherness) कह सकते हैं। पहली का संबंध विज्ञान से है और दूसरी का संबंध कला से है। एक कोरी बौद्धिक है और दूसरी भावात्मक है। एक के लिए वस्तु साधन मात्र है और दूसरी के लिए वस्तु स्वयं साध्य है। दोनों में ज्ञान, शक्ति का प्रतीक (Knowledge in power) है, परन्तु वैज्ञानिक ज्ञान-शक्ति वस्तुओं को अपने प्रभुत्व से अभिभूत करके उन्हें उपादेय बनाने का प्रयत्न करती है जबकि काव्य-जनित ज्ञान वस्तुओं से तादात्म्य स्थापित करके उनकी वास्तविकता का परिचय प्राप्त करता है और अपने भावात्मक क्षेत्र को व्यापक बनाता है। प्रसिद्ध फ्रांसीसी दार्शनिक बर्गसाँ (Bergson) ने इस संवेदनात्मक ज्ञान का नाम इन्ट्यूशन (intuition) दिया है जिसका अर्थ है वह बौद्धिक महत्व जिसके द्वारा हम अपने को वस्तुओं के अन्तर में प्रविष्ट करते हैं और इस तादात्म्य द्वारा हम उनकी विशिष्ट सत्ता का साक्षात्कार करते हैं जो अनिर्वचनीय है।[१४५]

इस प्रकार विज्ञान का संबंध सभ्यता तथा भौतिक विकास से है और काव्य का संबंध संस्कृति तथा आत्म-ज्ञान से। एक का ध्येय है बाह्य प्रकृति तथा संसार

---

१४५ By intuition is meant the kind of intellectual sympathy by which one places oneself within the object in order to coincide with what is unique in it and consequently inexpressible.

की विजय और दूसरे का मुख्य उद्देश्य है आन्तरिक संतुलन, अनुशासन तथा उत्कर्ष। एक में पुरुष की वर्बर शक्ति तथा अहंकार है और दूसरी में स्त्री-सुलभ नम्रता, सरसता एवं सहृदयता के साथ ही वस्तु-परख की सहज शक्ति है और वह विज्ञान के ऊँचे दावे का व्यंगात्मक मुस्कान के साथ खण्डन करते हुए कहती है कि विश्व-विजय से मनुष्य का क्या लाभ हो सकता है यदि उसके लिए उसे अपनी आत्मा का बलिदान करना पड़े।[१४६] प्रगति का मापदण्ड सुख-साधनों तथा सुविधाओं की संकुलता नहीं, अपितु हृदय की व्यापकता, संवेदनशीलता, मृदुलता एवं उदारता है; मानव में दानव की शक्ति तभी उपयुक्त होती है जब वह उसे दानव के समान दूसरों के अहित तथा हिंसात्मक कार्य में नहीं, अपितु परोपकार तथा प्राणियों की रक्षा में संलग्न करे।

यूरोप के सामाजिक तथा सांस्कृतिक इतिहास में १८ वीं शताब्दी एक क्रान्तिकारी युग के नाम से प्रसिद्ध है और इस क्रान्ति का मुख्य श्रेय विज्ञान की प्रगति को है। इस प्रगति से प्रभावित होकर 'मैकाले' ने कह दिया कि विज्ञान की प्रगति के साथ-साथ काव्य का उत्तरोत्तर ह्रास अवश्यंभावी है; क्योंकि काव्य के काल्पनिक चित्र, जो मानवता के शैशव काल में सुन्दर और सत्य प्रतीत होते हैं, विज्ञान के प्रखर बौद्धिक प्रकाश में निष्प्रभ तथा निरर्थक सिद्ध होते हैं। इस कथन के आशय को समझने के लिए काव्य तथा विज्ञान के बदलते हुए संबंध का एक संक्षिप्त परिचय आवश्यक है। मानव-जाति के प्रारंभिक काल में कविता का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक रहता है; क्योंकि उसकी बुद्धि कल्पना के प्रभुत्व में रहती है और उसका सभी ज्ञान तथा अनुभव छन्द-बद्ध भाषा ही में एक पुश्त से दूसरी पुश्त तक संक्रमित होता है। इस समय बाह्य संसार भय, विस्मय, सौंदर्य तथा रहस्य का आगार मालूम पड़ता है और प्राकृतिक तथा अतिप्राकृतिक शक्तियों का क्रीड़ास्थल मनुष्य का भौतिक जीवन ही होता है। इसी समय मनुष्य अपनी प्रक्रियाओं को पुरावृत (Myth) के रूप में प्रकट करता है जिसमें प्राकृतिक शक्तियाँ देव तथा दानव का रूप धारण करती हैं तथा प्राकृतिक घटनाओं जैसे भूकम्प, ग्रहण, महामारी इत्यादि की व्याख्या काल्पनिक कथाओं के रूप में प्रस्तुत होती है। इन्हीं कथाओं में धर्म, काव्य, विज्ञान तथा जादू इत्यादि के मूल-तत्व विद्यमान रहते हैं।

परन्तु धीरे-धीरे सभ्यता के विकास के साथ मनुष्य की मानसिक शक्तियाँ

---

[१४६] What will it profit a man if he were to gain the whole world but lose his own soul.

अलग होने लगीं, बुद्धि कल्पना के प्रभुत्व से मुक्त हुई तथा मनुष्य के बहुत से विचार-व्यापार इसी की प्रेरणा से चलने लगे और इन सभी क्षेत्रों में विचार-विनिमय तथा भावप्रकाशन का माध्यम गद्य हुआ, जिसने काव्य के अधिकृत क्षेत्र में अपना प्रभुत्व स्थापित किया। मनुष्य के उद्‌बुद्ध मन ने सृष्टि के रहस्यों पर मनन करना आरंभ किया और प्राकृतिक तथा अतिप्राकृतिक व्यापारों की व्याख्या आरंभ हुई, जिसके फलस्वरूप दर्शन का उद्भव हुआ और बहुत दिनों तक प्रकृति-अध्ययन दर्शन की एक शाखा मात्र रहा। कालान्तर में बहुत मनन-चिन्तन के पश्चात् पाश्चात्य मनीषियों ने एक अर्ध-दार्शनिक अर्ध-धार्मिक व्यवस्था की स्थापना की जिसके अनुसार भगवान् की सृष्टि में पृथ्वी को केन्द्र-स्थान मिला तथा मानव-जाति को समस्त प्राणियों पर प्रभुत्व। पृथ्वी के चतुर्दिक् घूमनेवाले ग्रहों के सात मंडल, उसके बाद तारों का विशाल क्षेत्र और इस सृष्टि की परिधिरूप में 'प्राइमम मोबालय' (Primum Mobile) की कल्पना हुई जो घूमते हुए ग्रहों को गति प्रदान करता था। यह सभी सृष्टि जड़ पदार्थों से लेकर स्वर्ग के देवताओं तक एक स्वर्णशृंखला में बँधी थी और भौतिक जगत तथा प्राकृतिक सृष्टि और सौर-मंडल एकत्व (Unity) के नियम से अनुशासित थे। बाइबिल के अनुसार ईश्वर ने सृष्टि कार्य ६ दिन में सम्पन्न किया था और मानव-जाति के आदि पुरुष 'आदम' को स्वर्ग-कानन में स्थान दिया था; परन्तु ईश्वर की आज्ञा का उल्लंघन करने के कारण उनका स्वर्ग से निष्कासन हुआ और उनके वंशज भी उस पाप के भागी हुए। इस तरह 'आदम' की सन्तान देवत्व तथा पशुत्व के बीच की कड़ी हुई यद्यपि उसका स्थान केन्द्रीय रहा और अपने भयंकर मनोविकारों से अभिभूत होते हुए भी वह सृष्टि के मूर्धन्य स्थान पर स्थापित की गयी।

सहस्रों वर्षों तक यूरोपीय साहित्य, धर्म तथा दर्शन इन्हीं सिद्धान्तों पर आश्रित रहे, परन्तु सोलहवीं शताब्दी के पुनर्जागरण (Renaissance) काल में इस व्यवस्था पर आघात आरंभ हुआ। 'कोपरनिकस' ने सिद्ध किया कि सृष्टि में केन्द्रीय स्थान सूर्य का है और पृथ्वी इसका एक लघु ग्रह मात्र है, और इस सिद्धान्त की पुष्टि 'गैलिलियो' (Galileo) के 'दूरबीन' (Telescope) ने की। यह एक क्रान्तिकारी आविष्कार था जिसने मनुष्य की सत्ता पर ही कुठाराघात किया तथा साहित्य और धर्म के एक मुख्य आधार ही को हिला दिया। कुछ विचारकों के मन में सन्देह, क्षोभ तथा अशान्ति का भयंकर तूफान आया, परन्तु सैकड़ों वर्षों तक साहित्य ने नयी व्यवस्था को मान्यता प्रदान करने

में उत्साह नहीं दिखलाया और धार्मिक भावना ने यह समझकर संतोष किया कि कम से कम ईश्वर अपने सिंहासन पर आरूढ़ हैं और सृष्टि के केन्द्र में भी उन्हीं की प्रकाश-पुंज-सत्ता सूर्य के रूप में विद्यमान है। परन्तु अठारहवीं शताब्दी के आरंभ होते-होते सृष्टि का रूप एक मशीन के समान हो गया जिसके निर्माता थे ईश्वर और चालक, न्यूटन के अनुसार. दो मूल शक्तियाँ थीं जिन्हें उन्होंने आकर्षण शक्ति (Gravitation) तथा गति (Motion) की संज्ञा प्रदान की। 'न्यूटन' ने ईश्वर की सत्ता को अक्षुण्ण रक्खा और उनके आविष्कारों का विचारकों ने स्वागत भी किया। फलतः प्रायः डेढ़ सौ वर्षों तक न्यूटन के वैज्ञानिक सिद्धान्तों ने यूरोपीय दर्शन, मनोविज्ञान, साहित्य, कला तथा समीक्षा-शास्त्र पर गहरा प्रभाव डाला, जिसके उदाहरणरूप में हम 'वड्‌सवर्थ' की दो कविताओं का उल्लेख कर चुके हैं।

परन्तु १९ वीं शताब्दी के आरंभ से ही वैज्ञानिक धारणा ईश्वरीय सत्ता-निरपेक्ष होती गयी और विकासवाद का प्रारूप सामने आने लगा, जिसके अनुसार सृष्टि का निर्माण नहीं हुआ है; किन्तु कुछ प्राकृतिक नियमों की क्रिया-प्रकिया के फलस्वरूप इसका क्रमिक विकास हुआ है। सृष्टि में न तो ईश्वर है, न इसका कोई निश्चित उद्देश्य मालूम पड़ता है और मनुष्य का अस्तित्व ही प्रकृति-व्यापार की असंभावित घटना (accident) मात्र है। इस सिद्धान्त का पर्यवसान 'डारविन' के विकासवाद में हुआ, जिसकी पूर्णाहुति उनके क्रान्तिकारी ग्रन्थ 'द डिसेन्ट ऑव मैन' (The Descent of man) ने की; क्योंकि इसमें डारविन ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि मनुष्य के पितामह बन्दर थे और एक प्रकार से मनुष्य बिना पूँछ का बन्दर है। इसके साथ ही साथ बाइबिल के व्याख्याकारों तथा अन्य वैज्ञानिकों ने उसके सभी मूल सिद्धान्तों का खण्डन करके उसके विशाल भवन ही को धराशायी कर दिया। इस क्रान्ति से जो क्षोभ तथा अशान्ति प्रकट हुई उसकी प्रतिध्वनि तत्कालीन साहित्य में एक कटु सत्य के समान वर्तमान है।

परन्तु साहित्य ने विज्ञान के नये विचारों को अपनाना आरंभ किया जिससे उनका ध्वंसात्मक रूप क्रियात्मक विचारों में परिवर्तित हुआ। जीव विज्ञान (Biology) के प्रभाव ने स्वच्छंदतावादी प्रतिभा तथा अङ्गाङ्गी एकत्व के रूप में समीक्षा के नये आधार को योग प्रदान किया तथा विकासवाद के आध्यात्मिक रूप से काव्य तथा साहित्य को नयी प्रेरणा प्राप्त हुई। विचारकों ने यह तर्क किया कि यदि विकास-शक्ति मनुष्य को पशु कोटि से मानव कोटि तक पहुँचा सकती है तो वही शक्ति मानव को महामानव की उच्चतर श्रेणी तक भी पहुँचा सकती

है। इस तर्क का प्रभाव हम वर्गसाँ के 'Elan vital' तथा 'शा' के जीवन-शक्ति (Life Force) में पाते हैं, जिसका अर्थ है कि सृष्टि में क्रियमाण विकास शक्ति सभी वस्तुओं को उन्नति की ओर अग्रसर होने के लिए प्रेरित करती रहती है। इसी सिद्धान्त से स्वर्णयुग की कल्पना को भी वल मिला और विज्ञान की अटूट प्रगति में विश्वास दृढ़ होने लगा। ऐसा प्रतीत हुआ कि विज्ञान स्वयं स्वर्ण-युग का अग्रदूत सिद्ध होगा, जैसा कि 'एच० जी० वेल्स' (H. G. Wells) के वैज्ञानिक उपन्यासों से प्रकट है। विज्ञान के प्रभाव से ही साहित्य में प्रकृतिवाद (Naturalism) का जन्म हुआ जिसके विशिष्ट प्रवर्तक थे फ्रांस के प्रसिद्ध उपन्यासकार 'जोलाँ' (Zola) और विज्ञान की मुख्य धारणा कि सृष्टि एक मशीन के समान चेतनाहीन (Unconscious) शक्तियों से चालित है तथा मनुष्य अपने परिवेश तथा जन्मजात संस्कारों का दास है न कि स्वतंत्र प्राणी 'टामस हार्डी' (Thomas Hardy) के निराशावाद की मूलभूत प्रेरणा है। विज्ञान की प्रगति इस युग में इतनी अप्रत्याशित तथा द्रुतगामी सिद्ध हुई है कि काव्य तथा साहित्य के लिए उसके नये सिद्धान्तों को अपनाना तथा पचाना असम्भव प्रतीत होने लगा है। यद्यपि साहित्य ने इस कर्तव्य को पूरा करने का सराहनीय प्रयत्न किया है। वीसवीं शताब्दी का नया भौतिक विज्ञान (Physics) आइन्सटाइन के आविष्कारों से विशेष रूप से प्रभावित है जिनकी दो मुख्य प्रस्थापनाएँ हैं—(अ) Time-Space Continuum जिसके अनुसार भूत, वर्तमान, भविष्य समयप्रवाह के कृत्रिम विभाजन मात्र हैं; क्योंकि उनमें मौलिक एकत्व है; (ब) प्रकृति में क्रम-वद्ध विकास नहीं है इसलिए प्रकृति की घटनाओं के वारे में कोई व्यक्ति विश्वास के साथ भविष्यवाणी नहीं कर सकता। इन सिद्धान्तों ने फ्रायड के मनोवैज्ञानिक आविष्कारों तथा मानव-चेतना के नये विवेचनों से साम्य रखने के कारण कला के नये वादों तथा शैली के नये रूपों का उदय संभव किया, जिनका विशिष्ट उदाहरण, क्यूबिज्म (Cubism), सुर्रियलिज्म (Surrealism), स्ट्रीम-ऑव् कान्शसनेस (Stream of Consciousness) तथा इन्टीरियर मोनोलोग (Interior monologue) माने जाते हैं।

इस संक्षिप्त विवरण से यह सिद्ध होता है कि विज्ञान तथा साहित्य का सम्बन्ध शताब्दियों तक घनिष्ठ तथा अटूट रहा है और वैज्ञानिक आविष्कारों ने वरावर पुरानी मान्यताओं को निर्मूल करते हुए भी साहित्य के विचार-पक्ष का पोषण किया है। हमें अब यह देखना है कि विज्ञान की प्रगति काव्य-प्रभाव के ह्रास का किस रूप में कारण हुई है। इसको समझने के लिए हमको स्मरण रखना चाहिये कि विज्ञान ने मनुष्य के व्यावहारिक जीवन पर गहरा प्रभाव

डाला है, जिसकी अभिव्यक्ति सामाजिक तथा बौद्धिक क्रान्ति के रूप में हुई है। इस क्रान्ति के फलस्वरूप मानव जाति में एक ऐसे दृष्टिकोण का आविर्भाव तथा विकास हुआ है जो कि काव्य-बोध तथा कला के प्रोत्साहन के लिए घातक सिद्ध हुआ है और विज्ञान की भावी प्रगति काव्य के आधारभूत परम्परागत भावों का भविष्य अन्धकारमय बनाती प्रतीत होता है। इस कथन की व्याख्या औद्योगिक क्रान्ति के विवेचन से आरम्भ होती है। औद्योगिक क्रान्ति विज्ञान के सामाजिक परिवर्तन का पहला व्यापक चरण मानी जाती है। इससे मशीन-युग का आरम्भ हुआ तथा देहाती सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन-व्यवस्था का विनाश और औद्योगिक नगरों तथा केन्द्रों का अप्रत्याशित विस्तार तथा अभिवर्धन संपन्न हुआ। इसका परिणाम स्पष्ट है—(अ) पूँजीपतियों के उत्कर्ष और धनवृद्धि के साथ-साथ आर्थिक लोलुपता का विकास और अन्त में धन की विनाशकारी महिमा, जिससे धनिक वर्ग पुराने शिक्षित कुलों के स्थान पर समाज का पथ-प्रदर्शक हुआ और सभी नैतिक तथा कलात्मक मूल्यों को धनसापेक्ष बना दिया; (ब) बहुसंख्यक श्रमिक वर्ग जो मशीन का गुलाम सिद्ध हुआ, अपने सांस्कृतिक संबन्धों से विरहित तथा मानवोचित महत्व से नितान्त वंचित रहा। इस तरह से नागरिक समाज मानव-अणुओं का समूह मात्र रह गया और स्वामी तथा श्रमिक का पुराना संबंध मुद्रा के अमानुषिक प्रभाव पर आश्रित हुआ। विक्टोरियन युग के प्रसिद्ध लेखक तथा राजनीतिज्ञ 'डिजराइली' (Disraeli) ने इस नये समाज का विवेचन करते हुए लिख दिया कि हमारे समाज में दो भिन्न जातियाँ हैं—एक धनिकों की जाति और दूसरी धनहीनों की जाति; और मैथ्यू आरनल्ड ने इस तथ्य के निष्कर्षरूप में लिखा कि समाज के सभी वर्ग संस्कृति तथा मानवता से हीन हैं और समाज-कल्याण के लिए कलाकार को जागरूक रहना पड़ेगा अन्यथा साहित्य-सृजन दुर्लभ होगा। इस भगीरथ प्रयत्न का उद्देश्य होना चाहिये पुराने सांस्कृतिक वर्ग का, जो कि बर्बर हो चुका है, आध्यात्मिक पुनरुद्धार, पशु-तुल्य निम्न वर्ग का मानवीकरण (Humanisation) तथा अभद्र मध्यम वर्ग के दृष्टिकोण का परिमार्जन।[१४७]

परन्तु इस उत्तम उद्देश की पूर्ति न हो सकी, मशीन ने मनुष्य पर प्रभुत्व स्थापित कर लिया तथा धीरे-धीरे उसके दैनिक जीवन तथा मनःस्थिति पर अपना

---

१४७ To spiritualize the materialized upper class; to humanize the brutalized lower class and to refine the vulgarized middle class.

गहरा प्रभाव अंकित किया। आज का मानव-समाज यंत्रों के माध्यम से ही संगीत, काव्य, समाचार, हर्ष, विस्मय की सामग्री इत्यादि प्राप्त कर रहा है और इनका प्रभाव सार्वभौमिक होने के कारण प्रत्येक नर या नारी अपनी विशिष्टता से रहित होकर भेंड़ के झुंड का एक आत्म-विश्वास-हीन जीव हो गया है जो केवल अपने गिरोह का अनुकरण ही कर सकता है। इसी तथ्य का विवेचन करते हुए एक निबंधकार ने कहा है कि पुराने यूनानियों की कल्पना थी कि गार्गन (Gorgon) नामी क्रूर देवियाँ जिस प्राणी पर दृष्टि स्थिर करती थीं, वह तुरत पत्थर हो जाता था। आज के मशीनी-युग में यह किंवदन्ती एक विचित्ररूप से चरितार्थ हुई है। आज के यन्त्र-जनित सौन्दर्य तथा संगीत नर-नारियों को पत्थर में नहीं, भेंड़ों में परिवर्तित कर रहे हैं।[१४८] ऐसी जनता के लिए काव्य-पाठ अरण्यरोदन के समान है।

इसके अतिरिक्त मशीन के व्यापक प्रभाव ने मृत्यु तथा अहिंसा से हमें इतना परिचित करा दिया है कि मानव-हृदय की संवेदनशीलता ही समाप्तप्राय हो गयी है। आज मोटर, ट्रेन, वायुयान की दुर्घटना में सहस्रों प्राणी प्रतिदिन मर रहे हैं और दो विश्वयुद्ध के हताहतों की संख्या तो मानव-बर्वरता की चरम सीमा का भी अतिक्रमण कर गयी, परन्तु अब भी विध्वंसक शस्त्रों की प्रलयंकारी शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ रही है और आज का 'तथाकथित' सभ्यसमाज ज्वालामुखी के मुँह पर आरूढ़ है और केवल एक भयंकर विस्फोट उसकी सत्ता को समाप्त करने के लिए पर्याप्त है। इस वातावरण में साहित्य-वर्णित शोक, भय, आशंका तथा करुणा सारहीन प्रतीत होते हैं। वर्ड्सवर्थ ने इस वातावरण का आभास सैकड़ों वर्ष पूर्व कर लिया था और इसके परिणाम की आशंका उनके एक कथन में स्पष्ट है—'आज के युग में अनेक कारण, जो कि अभूतपूर्व हैं, संयुक्त रूप से सक्रिय होकर मनुष्य की विवेक-शक्ति को कुण्ठित कर रहे हैं जिससे मानव-मन की नैसर्गिक कार्यशीलता पंगु हो गयी है और वह बर्बर अनुभूति-हीनता की दशा को प्राप्त हो चुका है। इन कारणों में सबसे अधिक प्रभावशाली हैं राष्ट्रीय घटनाएँ, जो प्रतिदिन घटित हो रही हैं, शहरों की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई जनसंख्या,

---

१४८ We read the same newspapers, are prompted by the same loud speakers, dance to the same music and stampede before decisions not our own. There may be more than we think in that myth of Gorgon's head, but instead of into stone its modern victims are changed into mutton.

जिसमें जीवन की एकरसता के कारण असाधारण घटनाओं के प्रति अस्वस्थ उत्कण्ठा जागृत होती है जिसका परितोष सूचना-प्रसारक माध्यमों द्वारा बराबर होता रहता है। आज की साक्षर जनता का हृदय इतना कुन्द हो गया है कि इसके क्षणिक स्पन्दन के लिए भी असाधारण प्रभावों की आवश्यकता अपेक्षित है।[१४९] यही कारण है कि आज के साहित्य में हिंसात्मक तथा उन्मादकारी अस्वस्थ मनोभावों तथा मनोविकारों का अधिकाधिक मात्रा में समावेश हो रहा है।

(स) वैज्ञानिक सभ्यता की प्रगति ने काव्य के आधार-स्तम्भों पर किस तरह आघात किया है इसकी व्याख्या कुछ उदाहरणों द्वारा की जा सकती है :

(१) साहित्य की एक विशिष्ट प्रेरणा प्रकृति-सौंदर्य तथा औदात्य से प्राप्त होती रही है। परन्तु आज की नागरिक सभ्यता ने मनुष्य तथा प्रकृति का सम्पर्क संकीर्ण तथा दुर्लभ कर दिया है और प्रगतिशील देशों के बड़े-बड़े नगरों में असंख्य बच्चे ऐसे हैं जो वर्षों तक पृथ्वी-तल पर पैर ही नहीं रख पाते हैं और प्रकृति-सौंदर्य तथा रहस्य इनके लिए 'अन्धे के सामने आरसी' के समान है। इस प्रकार काव्य में प्रकृति-प्रभाव दिनोंदिन घटता जा रहा है।

(२) आदि काल से प्रेम विभिन्न रूपों में साहित्य का मूलप्रेरक रहा है। इस पर आश्रित स्त्री-पुरुष-संबंध बहुमुखी तथा अनेक प्रगाढ़ तथा विरोधी भावों का पोषक होकर साहित्य के विविध अंगों का आधारस्तम्भ हुआ। साहित्य में इसकी सफलता कई बातों पर निर्भर रही है—जैसे, नैतिकता की भावना जिससे पाप-पुण्य का विचार उत्पन्न होता है। फ्रांसीसी कवि बोदेलेयर ने ठीक ही कहा है कि स्त्री-पुरुष का योनि-संबंध यदि नैतिकता की भावना से अछूता है तो वह पशुओं के मैथुन के समान है। इसके अतिरिक्त प्रेम-काव्य का मुख्य आकर्षण

---

[१४९] A multitude of causes, unknown to former times, are now acting with a combined force to blunt the discriminating powers of the mind and unfitting it for all voluntary exertions, to reduce it to a stage of savage torpor. The most effective of these causes are the great national events which are daily taking place, and the increasing accumulation of men in cities, where the uniformity of their occupations produces a craving for extra ordinary incident which rapid communication of intelligence hourly gratifies. The jaded hearts and minds of the reading public to-day require an abnormal stimulus even for their momentary motion.

नायिका की सहृदयता, लज्जाशीलता, गुरुजनों के प्रति भयमिश्रित श्रद्धा, प्रिय-मिलन की अनिश्चितता इत्यादि पर आश्रित है। परन्तु इस वैज्ञानिक युग में स्त्री-पुरुष का प्रेम पशुवत् मैथुन के तुल्य हो चुका है और फ्रायड् के मनोविज्ञान ने इस पर स्वीकृति की मुहर भी लगा दी है। आज की नायिका ने हमारे पुराने नायिकाभेदों को निरर्थक कर दिया है। वह प्रेमी के लिए न तो चिंतित रहती है और न रात के अन्धेरे में अभिसार की अपेक्षा करती है। वह तो साइकिल पर सवार होकर उसका पीछा करती है अथवा स्कूटर की पिछली सीट पर आरूढ़ होकर उसकी पीठ का आलिंगन करती है; उसके लिए लज्जा तथा असहायता पुरुषों के गुण हो चुके हैं और उसकी निगाह में हमारा समस्त रीतिकालीन साहित्य मूढ़ कवि—अफीमचियों के दिवास्वप्न के समान है।

(३) यूनान के एक प्रसिद्ध नाटक में एक नवोढ़ा विमाता अपने सौतेले पुत्र के प्रति आसक्त हो जाती है और उसके हृदय में नैतिक भावना तथा काम-वासना का घातक संघर्ष आरंभ होता है। इस नाटक का उल्लेख करते हुए एक प्रगतिशील आधुनिक महिला ने लिखा है कि यह संघर्ष नितान्त अमनोवैज्ञानिक तथा अभद्र है; क्योंकि एक युवती के हृदय में किसी आकर्षक युवक के लिए कामासक्ति पैदा होना स्वाभाविक है और उसे इसकी तृप्ति का प्रयास करना चाहिए न कि इसको नैतिकता के प्रपंच में डालकर मानसिक रोग का कारण बनाना चाहिए। इस विचार की मीमांसा व्यर्थ हैं; क्योंकि इसका आशय स्पष्ट है।

(४) प्रेम का प्रधान अंग है सन्तति-प्रेम जिसका भी साहित्य से घनिष्ट संबंध है। यह प्रेम भी दो संभावित घटनाओं के कारण अपना महत्व खो सकता है। समाजवादी विचारधारा की प्रगति के साथ ही यह धारणा भी दृढ़ होती जा रही है कि घरेलू जीवन का समाजीकरण आवश्यक है, इसलिए बच्चों का पालन-पोषण तथा शिक्षा-दीक्षा समाज के नियन्त्रण में होनी चाहिये न कि माता-पिता की स्वेच्छा से और यथासंभव बच्चे अपने माता-पिता से दूर ही रक्खें जायँ। यह विचार तो बहुत पुराना है और इसकी प्रतिध्वनि प्लेटो के 'रिपब्लिक' में भी स्पष्ट है, परन्तु इसको कार्यरूप में परिणत करने का प्रयास निकट भविष्य में हो सकता है।

इधर वैज्ञानिक भी यह दावा कर रहे हैं सन्तानोत्पत्ति के लिए स्त्री-पुरुष का संयोग आवश्यक नहीं है; क्योंकि प्रयोगशाला में स्वस्थ पुरुष का वीर्य स्त्री के गर्भ-स्थान तक ट्यूब द्वारा पहुँचाया जा सकता है। इस प्रयोग के अनेक लाभ भी बतलाये जा रहे हैं जिनका विवेचन यहाँ पर आवश्यक नहीं है। यदि उपर्युक्त विचारधाराएँ समाज द्वारा मान्य हुईं तो साहित्य का एक मूल विषय लुप्त हो

जायगा। ऐसे वातावरण में उच्चकोटि का काव्य जन-जीवन से अलग होकर अपना गौरव तथा अस्तित्व सुरक्षित रखने में कार्य-रत प्रतीत होता है। आज का साहित्य बौद्धिक प्रयोगशाला हो गया है और ज्ञानाडंबर तथा तकनीकी जटिलता के बोझ से आक्रान्त कवि-आशय उर्ध्वश्वांस लेता मालूम पड़ रहा है। पुराने दार्शनिकों ने अपने उत्तम विचारों की पवित्रता को सुरक्षित रखने के लिए जटिल प्रतीकों का आश्रय लिया था, आज का कवि भी प्रायः उसी उद्देश्य से अभिप्रेरित है। किसी ने ठीक ही कहा है कि आधुनिक कविता विशेषज्ञों द्वारा विशेषज्ञों के लिए लिखी जा रही है और उसके व्याख्याकार भी विशेषज्ञ हैं जिनकी व्याख्या जटिल शब्दावली से बोझिल है।

इस तरह "कहैं राम बूझैं हनुमंत" वाली कहावत चरितार्थ हो रही है। आशय यह है कि विज्ञान तथा साहित्य की जन-कल्याणकारी सहकारिता प्रायः समाप्त हो गयी है यद्यपि यह बात स्वयंसिद्ध है और विवेकशील लोगों ने इस पर आग्रह भी किया है कि मानव-सभ्यता की रक्षा और उत्कर्ष के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि विज्ञान-जनित बौद्धिक विस्तार तथा उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ वस्तुज्ञान उस आन्तरिक संवेदनशीलता तथा भावात्मक विकास से परिपोषित तथा अनुप्राणित हो जिसका मूल-स्रोत काव्य, साहित्य तथा धर्म में हैं। हृदय-अंकुश से एकदम मुक्त होने से मनुष्य का अहंकारी मस्तिष्क मानवता का अस्तित्व ही मिटा देगा।

अध्याय ६

काव्यालोचना

कवि तथा पाठकों के बीच की सुनहली कड़ी है काव्यालोचना जिसके द्वारा कवि का आशय तथा काव्य का रहस्यमय सौंदर्य साधारण पाठकों के लिए बोधगम्य होकर उनकी सहृदयता का विकास करता है। इसीलिए 'कारलाइल' ने आलोचक को दिव्य-द्रष्टा (Inspired) कवि तथा श्रद्धालु; किन्तु सामान्यमना पाठकों के बीच आवश्यक मध्यस्थ माना है।[१५०]

भारतीय काव्य-शास्त्र में भी भावक का स्थान कवि-तुल्य ही गौरवपूर्ण है और कहा तो यहाँ तक गया है कि आलोचक कवि का गुरु, पथ-प्रदर्शक तथा दोषादोष-विचारक है :—

स्वामी मित्रं च मन्त्री च, शिष्यश्चाचार्य एव सः।
कवेर्भवति चित्रं हि किं नु तद् यन्न भावकः॥

आलोचक ही वह विशिष्ट माध्यम है जिसके द्वारा कवि का यश चतुर्दिक् विस्तृत होता है और उसकी मनोकामना फलवती होती है।

काव्येन किं कवेस्तस्य, तन्मनोमात्रवृत्तिना।
नीयन्ते भावकैर्यस्य न निबन्धा दिशो दश॥

यूरोप में भी 'स्कैलिगर' (Scaliger) ऐसे आलोचकों का दावा था कि उनका काम है कवि का निर्माण करना (To create a poet) और अठारहवीं शताब्दी के आलोचक तो अपने को कवि का गुरु तथा काव्य का न्यायाधीश मानते थे और कवि-यश का जीवन-मरण उनके मन्तव्य पर निर्भर करता था। प्रोफेसर 'कैज़ामियन' (Cazamian) ने कहा है कि आलोचक कवि से किसी भी प्रकार न्यून नहीं है, केवल दोनों के व्यापार भिन्न हैं—कवि का काम है निर्माण और

---

[१५०] Criticism stands like an interpreter between the inspired and the uninspired, between the prophet and those who hear the melody of his words and catch some glimpse of his material meaning, but understand not their deeper import.

आलोचक का काम है पुर्नानर्माण। दोनों व्यापार प्रायः समकक्ष हैं। आलोचना-व्यापार के लिए विवेक, मूल्यांकन तथा बुद्धि-प्रखरता आदि गुण उतने उपयुक्त नहीं हैं जितने कि सहज ज्ञान (Intuition) तथा तदात्मीयता।[१५१]

अठारहवीं शताब्दी के प्रतिनिधि अंग्रेज कवि, पोप ने, कहा है कि कवि तथा आलोचक दोनों प्रतिभा-संपन्न व्यक्ति होते हैं अर्थात् दोनों की शक्ति ईश्वर-दत्त तथा संस्कारजन्य होती है, कवि जन्मना स्रष्टा होता है तो आलोचक भी जन्मना काव्य-पारखी होता है। भारतीय सिद्धान्त भी इस कथन से पूर्णतया सहमत हैं; क्योंकि अपने यहाँ भी प्रतिभा के दो भेद माने गये हैं—कारयित्री तथा भावयित्री अथवा सर्जनात्मक तथा आलोचनात्मक। एक काव्य की मूल प्रेरणा है और दूसरी आलोचना की। दोनों प्रकार की प्रतिभा में घनिष्ठ संबंध है और दोनों एक दूसरे की पूरक हैं। जो लोग कवि की दैवी-प्रेरणा के समर्थक हैं वे भी इस बात को स्वीकार करने के लिए विवश हैं कि कवि में भावयित्री प्रतिभा का होना भी नितान्त आवश्यक है; क्योंकि जब तक कवि अपना समालोचक स्वयं नहीं होगा तब तक उसका निर्माण-कार्य पूर्णता को प्राप्त नहीं हो सकता है। उसे अपने मुख्य भाव का पूर्ण ज्ञान होता है और उस भाव की भाषा में अभिव्यक्ति उसका ध्येय होता है, इसलिए उसे बार-बार सोचना पड़ता है कि उसके शब्द तथा अलंकार, विम्ब इत्यादि उपयुक्त हैं अथवा नहीं और उसके छंद, लय, ध्वनि इत्यादि तत्व कहाँ तक उसके भावों का परिष्कार तथा द्योतन करने में सफल हुए हैं। 'जॉन कीट्स' ने अपने आलोचकों को ललकारते हुए कहा था कि जिस व्यक्ति में कला-सौन्दर्य का प्रेम गहन तथा संतुलित है वह स्वयं अपनी अपरिपक्व रचना से संतुष्ट नहीं हो सकता। ऐसे व्यक्ति के लिए आत्म-तोष की भावना ही मुख्य है और आलोचकों का खण्डन-मण्डन गौण। 'टी० एस० इलियट' ने भी इस तथ्य पर आग्रह करते हुए बौद्धिक तथा भावात्मक तत्वों के सामंजस्य पर जोर दिया है और स्पष्ट कहा है कि कवि-कार्य का मुख्य अंग आलोचनात्मक होता है, जिसका

---

[१५१] The critic indeed ranks not necessarily second to the original writer, but some where on the same plane, their value being that of creation with one, of re-creation with the other—two perfectly equivalent processes. Judgement, appreciation, intelligence are inappropriate terms to denote the critic's activity. Intuition, sympathy would be more fitting words.

उद्देश्य है काव्य का संशोधन, उपयुक्त परिवर्तन, काटछाँट तथा भाव अथवा भाषा का परिमार्जन एवं स्पष्टीकरण।[१५२]

इस प्रकार काव्यकार काव्य-समीक्षक भी हो सकता है और विश्व-साहित्य इस तथ्य का प्रबल साक्षी है। परन्तु ऐसा प्रायः देखा गया है कि काव्य-समीक्षा में कवि प्रायः उन्हीं सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है जो कि उसकी काव्य-कृतियों की मूल प्रेरणा हैं और अनेक आलोचकों ने इस तत्व को स्वीकार किया है। इसके उदाहरण रूप में 'इलियट' का प्रसिद्ध कथन नीचे उद्धृत है।[१५३]

ऐसा माना जाता है कि 'आरनल्ड' की परिभाषा कि 'काव्य जीवन की व्याख्या हैं, अथवा वर्ड्सवर्थ का कथन कि 'काव्य का प्रादुर्भाव उन भावावेगों से होता है जो मन की शान्त स्थिति में अनुस्मृत होते हैं', मुख्यतः इन कवि-आलोचकों की अपनी कृतियों पर ही लागू होते हैं; ये सर्वमान्य सिद्धान्त नहीं हैं। भावक पक्ष से विचार करनेवाले चिन्तकों में प्रायः अधिकांश ऐसे हैं जो आलोचक तथा कवि के मूल साम्य को मानते हैं :—

प्रतिभातारतम्येन प्रतिष्ठा भुवि भूरिधा।
भावकस्तु कविः प्रायो न भजत्यधमां दशाम्॥

अंग्रेजी साहित्य में भी 'बेन जान्सन', 'ड्राइडन', 'हैज़लिट' प्रभृति अनेक समालोचकों ने इस धारणा का बार-बार अनुमोदन किया है कि काव्य के सफल पारखी कवि ही हो सकते हैं, वह भी साधारण कवि नहीं, अपितु प्रसिद्ध तथा उच्चकोटि के कवि। इस धारणा के पीछे मूल विश्वास यही है कि काव्य के रहस्यों तथा शब्द एवं शिल्प-चातुर्य इत्यादि को वही व्यक्ति ठीक-ठीक समझ सकता है जो काव्य-कर्म का स्वयं अनुभव रखता है और तत्संबंधी समस्याओं तथा कठिनाइयों का सामना कर चुका है। परन्तु इसके होते हुए भी विश्व के इतिहास में

---

१५२ The larger part of the labour of an author is critical, the labour of sifting, combining, constructing, expunging, correcting, testing. —*Selected Essays*—p. 30.

१५३ ......The critical writings of poets owe a great deal of their interest to the fact that at the back of the poet's mind, if not as his ostensible purpose, he is always trying to defend the kind of poetry he is writing or to formulate the kind that he wants to write......he sees the poetry of the past in relation to his own. —*The Music of Poetry*, 1942.

ऐसे अनेक चोटी के समीक्षक हो चुके हैं जो कवि-कोटि में परिगणित नहीं किये जा सकते। यूरोपीय समीक्षा के जनक, अरस्तू तथा आधुनिक आलोचना के विशिष्ट प्रवर्तक, जैसे आई० ए० रिचर्ड्‌स तथा एफ० आर० लेविस (Leavis) का नाम उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। कुछ लोगों ने तो यहाँ तक कह दिया है कि असफल कवि ही प्रायः काव्यालोचना की ओर आकृष्ट होता है; यद्यपि यह भी स्मरणीय है कि इस तरह का तिरस्कृत कवि समालोचक 'पुच्छ-हीन लोमड़ी' के समान दूसरों की मर्यादा का क्षयकारक ही हो सकता है, उससे किसी सार्थक मीमांसा की आशा नहीं की जा सकती। इस प्रसंग में महाकवि राजशेखर की धारणा उल्लेखनीय है कि प्रकृति ने एक व्यक्ति को एक ही काम के लिए उपयुक्त बनाया है; यदि कोई काव्य-सृजन की प्रतिभा रखता है तो उससे काव्य-व्याख्या की आशा नहीं करनी चाहिये और जो काव्य-रहस्य का पारखी है वह कवि-व्यापार के लिए असमर्थ हो सकता है। दोनों क्रियाएँ एक दूसरे से भिन्न हैं :—

कश्चिद् वाचं रचयितुमलं श्रोतुमेवापरस्तां
कल्याणी ते मतिरुभयथा विस्मयं नस्तनोति।
नह्येकस्मिन्नतिशयवतां सन्निपातो गुणानां
एकः सूते कनकमुपलस्तत्परीक्षाक्षमोऽन्यः॥

एक पत्थर सोना पैदा करता है और दूसरा उसके गुण की परीक्षा करता है।

इन दो विरोधी धारणाओं में मध्यस्थ विचार ही समीचीन माना जा सकता है। आलोचक के लिए यह आवश्यक है कि वह सहृदय हो और सर्वप्रथम काव्यांकन हृदय की अनुभूति से करे, तत्पश्चात् उस अनुभूति का विश्लेषण तथा व्याख्या। सहृदय की परिभाषा हम पहले दे चुके हैं, परन्तु उसकी पुनरावृत्ति यहाँ आवश्यक है :—

एषां काव्यानुशीलनाभ्यासवशाद् विशदीभूते मनोमुकुरे वर्णनीय-तन्मयीभावनायोगात् ते हृदयसंवादभाजः सहृदयाः।

पाश्चात्य साहित्य में भी यह एक दृढ़ तथा व्यापक धारणा रही है कि काव्य का विशिष्ट गुण 'grace' या 'प्रसाद' कहा जाता है जो कला तथा अभ्यास से नहीं, अपितु भगवत्प्रेरणा से प्राप्त होता है और इसकी परख आलोचक की अभिरुचि (Taste) से संभव होती है। 'अभिरुचि' काव्य की गुणदोषविवेकिनी नैसर्गिक शक्ति है, परन्तु इसका विकास व्यापक एवं निरंतर काव्य-मनन, चिन्तन

से होता है। कुछ स्वच्छन्दतावादी आलोचकों की यह धारणा थी कि सौन्दर्य-बोध एक स्वतंत्र शक्ति है जो मानव-मन में न्यूनाधिक रूप में विद्यमान रहती है, परन्तु कवि तथा सहृदय में इसकी पराकाष्ठा पायी जाती है। इस तरह काव्यालोचक में सहृदयता, साहित्य-अनुभव तथा काव्य-रहस्यान्वेषण का सतत प्रयास अपेक्षित है। इसके अतिरिक्त उसकी निष्पक्षता तथा व्यक्तिगत रागद्वेष तथा हठधर्मी से परे होना भी आवश्यक है। इस आवश्यकता पर पूर्व तथा पश्चिम के चिन्तकों ने शिशेष आग्रह दिखलाया है।

काव्य मीमांसाकार की प्रसिद्ध उक्ति नीचे उद्धृत है :—

> यः सम्यक् विविनक्ति दोषगुणयोः सारं स्वयं सत्कविः
> सोऽस्मिन् भावक एव नास्त्यथ भवेद्दैवान्न निर्मत्सरः॥

मत्सरहीन भावक के अभाव में कविता मौन रहती है।

यूरोप के प्रसिद्ध समीक्षकों ने भी इस तथ्य का अनुमोदन किया है। समालोचना के उद्देश्य की व्याख्या करते हुए 'मैथ्यू आरनल्ड' ने कहा है कि आलोचक का मुख्य कर्तव्य है निष्पक्षरूप से सर्वोत्तम विचारों तथा उनके मूल-स्रोत साहित्य का ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास और उस ज्ञान को दूसरों तक पहुँचाकर कविता के विकास के अनुकूल बौद्धिक वातावरण पैदा करना है। डॉ० 'जॉन्सन' तथा 'हैजलिट' आदि आलोचकों ने भी इसी आशय का मन्तव्य घोषित किया है जो निम्नाङ्कित उद्धरणियों में स्पष्ट है।[१५४]

इन सब गुणों को ध्यान में रखते हुए हम कह सकते हैं जिस प्रकार सत्कवि संसार में दुर्लभ हैं उसी प्रकार आदर्श आलोचक भी दुर्लभ हैं और काव्य-समीक्षा एक कठिन तपस्या का फल है :—

---

१५४ A disinterested endeavour to know the best that is known and thought in the world, in its turn making it known, to create a current of true and fresh ideas. Its business is to do this with inflexible honesty, with due ability. —M. Arnold.

To hold out the light of reason to the work of art, to discover its virtues and defects is the chief function of a critic. —Dr. Johnson.

A genuine criticism should reflect the colours, the light and shade, the soul and body of a work : —Hazlitt :

सन्ति पुस्तकविन्यस्ताः काव्यबन्धाः गृहे गृहे ।
द्वित्रास्तु भावकमनः शिलापट्ट-निकुट्टिताः ।।

—काव्य-मीमांसा ।

संस्कृत में 'भावक' शब्द की व्याख्या है 'भावयतीति भावकः', अर्थात् जो कवि के अभिप्राय को समझे तथा समझाये वही भावक है । इस व्याख्या का विस्तार करते हुए राजशेखर ने लिखा है :—

शब्दानां विविनक्ति गुम्फनविधीनामोदते सूक्तिभिः
सान्द्रं लेढि रसामृतं विचिनुते तात्पर्यमुद्रां च यः ।
पुण्यैः संघटते विवेक्तृविरहादन्तमुखं ताम्यतां
केषामेव कदाचिदेव सुधियां काव्यश्रमज्ञो जनः ।।

इसमें रसज्ञ तथा काव्य-मर्मज्ञ भावक के व्यापार का वर्णन है जो शब्द, अर्थ, निबंध, शैली का विवेचन करते हुए रसास्वादन करता है और पाठकों को इनसे अवगत कराता है । अब प्रश्न यह है कि क्या इस प्रकार की व्याख्या ही भावक-कर्तव्य की चरम सीमा है ? इस प्रश्न के समुचित उत्तर के संबंध में समीक्षकों में मत भेद है । यूरोप में वैज्ञानिक आलोचना के पक्षपाती इस विचार में सहमत हैं कि काव्य की व्याख्या तथा विश्लेषण ही आलोचक के कर्तव्य का आरंभ तथा अवसान है । प्रोफेसर मोल्टन (R. G. Moulton) ने इसको इण्डक्टिव क्रिटिसिज्म (Inductive criticism) कहा है और इसकी परिभाषा में इस तथ्य पर विशेष जोर दिया है कि बहुत दिनों तक काव्य-समीक्षा मूल्यांकन की भूलभूलैया में पड़ी रही है, परन्तु अब इसका मुख्य ध्येय कलाकृतियों का वैज्ञानिक अध्ययन करके कला के मूलभूत नियमों का आविष्कार होना चाहिए तथा साहित्य की विभिन्नता के साथ ही साथ उसकी मौलिक एकता तथा विकास का स्पष्टीकरण ।[१५५]

---

१५५ The inductive criticism will entirely free itself from the judicial spirit and its comparisons of merit, which is found to have been leading criticism during half its history on to false tracks from which it has taken the other half to retrace its steps. On the contrary, inductive criticism will examine literature in the spirit of pure investigations; looking for the laws of art in the practice of artists, and treating art, like the rest of nature, as a thing of contnuous

परन्तु अधिकांश समालोचक इस धारणा से सहमत नहीं हैं; उनके मतानुसार आलोचना का ध्येय काव्य की व्याख्या करके उसका मूल्यांकन करना है। आई० ए० रिचर्ड्स ने स्पष्ट कहा है कि आलोचक का अर्थ ही है मूल्य का पारखी और टी० यस० इलियट ने इस कथन का समर्थन करते हुए लिखा है, "साहित्य-समीक्षा का सदैव एक निश्चित ध्येय होता है, जिसके दो रूप माने जा सकते हैं—कलाकृतियों का स्पष्टीकरण तथा पाठकों की अभिरुचि का विकास तथा संशोधन।[१५६] मूल्यांकन का अर्थ है कलाकृतियों का उनके गुण तथा कलात्मक उत्कृष्टता के अनुसार वर्गीकरण तथा एक कलाकार का दूसरे के साथ तुलनात्मक अध्ययन जिससे उनके विशिष्ट गुणों के विवेचन के साथ ही उनके गौरव का आभास भी प्राप्त हो जाय। इसीलिए प्राचीनकाल ही से आलोचना के दो सबल सहायक माने गये हैं—व्याख्या तथा तुलना, जिनको 'इलियट' ने समीक्षा का मुख्य उपकरण (Tools) माना है। विश्लेषण से कला-कृति के विभिन्न अवयवों तथा उनके समन्वय की सफलता का ज्ञान होता है और तुलना (Comparison) द्वारा उनकी विशिष्टता तथा अच्छाई-बुराई, परिपक्वता तथा अपरिपक्वता का बोध होता है। पाश्चात्य साहित्य में तुलनात्मक अध्ययन तथा विश्लेषण समीक्षा के सदैव मुख्य अंग रहे हैं। प्रसिद्ध यूनानी नाटककार 'ऐरिस्टो फेनीज' (Aristo Phanes) के 'फ्रॉग्स्' नामी 'कामदी' में यूनान के दो प्रसिद्ध दिवंगत कलाकारों (Aeschylus and Euripides) की प्रतियोगिता वर्णित है जिसमें दोनों प्रतिद्वन्द्वी अपने गुणों की घोषणा करते हुए एक दूसरे के अवगुणों का प्रकाशन भी करते हैं। रोमन काल के प्रसिद्ध वाग्मिता-शास्त्री, लॉंजिनस, ने अपने 'ऑन द सबलाइम' में होमर के दो प्रसिद्ध महाकाव्यों का तुलनात्मक अध्ययन करके यह निष्कर्ष निकाला है कि उनकी 'इलियड' उनकी प्रतिभा की प्रौढ़ता

---

development, which may thus be expected to fall, with each author and school, into varieties distinct in kind from one another, and each of which can be fully grasped only when examined with an attitude of mind adapted to the special variety without interference from without.

—*Shakespeare as a Dramatic Artist*

[१५६] Criticism must always profess an end in view...... which appears to be elucidation of the works of art and the correction of taste.

का परिणाम है, परन्तु 'ओडेसी' तो उनके अस्त-काल की कृति है जब कवि-प्रतिभा की प्रबल धार पीछे हट रही थी।

काव्य के मूल्यांकन के संबंध में भी दो विरोधी विचारधाराएँ प्रचलित रही हैं। एक के अनुसार काव्य-परीक्षक के मन में उच्च काव्य का एक सुनिश्चित मापदण्ड रहता है जिसके द्वारा वह कलाकृति-विशेष का गुण-दोष बतलाकर उसको उचित कोटि में स्थान देता है। अभिनव-क्लासिकी (Neo-Classical) समीक्षा यूरोप में इसी विचारधारा का प्रतीक रही है और आज की मार्क्सवादी साहित्य-समीक्षा इसी का राजनैतिक संस्करण है। इसी के अन्तर्गत आरनल्ड की 'काव्य-कसौटी' का सिद्धान्त (Touchstone Method) भी आता है, जिसके अनुसार समीक्षक के लिए यह आवश्यक है कि वह लब्धप्रतिष्ठ तथा सर्वमान्य कवियों की उत्तम पंक्तियों को सदैव मन में प्रस्तुत रक्खे जिससे नयी कविता सामने आते ही उन पंक्तियों की कसौटी पर उनके गुण-दोष का निर्णय अपने आप हो जाय।

इसके विपरीत प्रभाववादी (Impressionism) विचारधारा के समालोचक हैं जिनकी धारणा यह है कि काव्य की अपनी स्वतंत्र सत्ता होती है जिसको हम बाह्य नियमों द्वारा नियन्त्रित तथा आबद्ध नहीं कर सकते। साहित्य-कला-प्रेमी सहृदय पाठक का यह कर्तव्य होना चाहिये कि वह अपने मन को व्यक्तिगत मान्यताओं तथा हठधर्मी से मुक्त करके उसे कलाकृति के मनन तथा चिन्तन में संलग्न करे और बार-बार प्रयास करने के पश्चात् यह निश्चय करे कि उस कृति का क्या विशिष्ट प्रभाव उसपर पड़ रहा है और यह प्रभाव दूसरी कृतियों के प्रभाव से किस प्रकार भिन्न है। अंग्रेजी समीक्षा-साहित्य में यह विचारधारा स्वच्छन्दतावादी समीक्षकों, हैजलिट 'लैम्ब' इत्यादि से आरंभ होती है परन्तु इसके मुख्य प्रतिनिधि 'वाल्टर पेटर' माने जाते हैं, जिन्होंने स्पष्ट कहा है कि समीक्षा-व्यापार के तीन मुख्य चरण हैं—निष्पक्ष तथा मनोयोगपूर्वक अध्ययन तथा अनुशीलन करने के बाद कवि या कलाकार की विशिष्टता का अनुभव करना; फिर इस मौलिक विशिष्टता को कलाकृति के गौण तत्त्वों से अलग करना और अन्त में इसको उपयुक्त शब्दों में अभिव्यक्त करके पाठकों को भी इससे अवगत तथा प्रभावित कराना।[१५७] इस तरह की समीक्षा, एक फ्रेंच विवेचक

---

[१५७] To feel the virtue of a poet or painter; to disengage it; to set it forth-these are three stages of the critic's duty.

के शब्दों में, समीक्षक की आत्मा का महाग्रन्थों के अन्तर्गत साहसिक तथा निर्भीक विचरण (Adventure of a soul among the masterpieces) है।

इस पद्धति का सबसे बड़ा दोष यह है कि यह काव्य का मूल्यांकन प्रत्येक समीक्षक की स्वेच्छा के वशीभूत करके सांस्कृतिक अराजकता का मार्ग प्रशस्त करती है। समीक्षा-व्यापार की दृढ़ता के लिए यह आवश्यक है कि उसके मूलभूत साहित्यिक सिद्धान्त केन्द्ररूप में विद्यमान हों जिससे विभिन्न समीक्षकों के स्वतंत्र व्यापार के होते हुए भी समीक्षा पतवाररहित नौका के समान भाव-तरंगों पर दोलारूढ़ न रहे। इसलिए यूरोप के प्रसिद्ध अंग्रेज समालोचक, 'कोलरिज' ने इस बात पर आग्रह किया है कि समीक्षक का मुख्य कर्तव्य है उन सिद्धान्तों को घोषित तथा प्रतिपादित करना जिसे वह काव्य का सामान्य रूप से मूल तत्त्व समझता है और उसके साथ ही साथ इस बात का भी विश्लेषण करना कि उनमें कौन से सिद्धान्त किस प्रकार के काव्य के लिए उपयुक्त हैं। समालोचना का चरम लक्ष्य लेखन-कला के मूल सिद्धान्तों का अवस्थापन है जो कि दूसरे की कृतियों के मूल्यांकन हेतु निश्चित नियमों के प्रतिप्रादन से अत्यधिक आवश्यक है।[१५८]

काव्य-समीक्षा साध्य नहीं, किन्तु साधन है। उसका ध्येय है पाठकों को काव्य के विशिष्ट गुणों तथा रहस्यों से अवगत कराकर उनकी जिज्ञासा को जागृत करना, उन्हें साहित्य के गुणदोष-विवेचन के योग्य बनाना जिससे वे अन्ततोगत्वा काव्यांकन के व्यापार में स्वयं अग्रसर हो सकें। एक शिक्षा-विशेषज्ञ ने ठीक ही कहा है कि लोगों के शिक्षण से बढ़कर उपयोगी काम है उनके हृदय में शिक्षा के प्रति इच्छा तथा उत्साह जागृत करना। यही काम समीक्षक का भी होना चाहिए। इसी को 'इलियट' ने Illumination अथवा बौद्धिक प्रकाश कहा है जिसका अर्थ है पाठकों की अन्तर्दृष्टि का उन्मीलन जिससे वह अपना पथ-प्रदर्शन स्वयं कर सके। दूसरे के विचारों पर सदैव आश्रित रहने का अर्थ है अपने को पंगु घोषित करना,

---

१५८ Philosophic criticism in which the critic 'announces and endeavours to establish the principles, which he holds for the foundation of poetry in general, with the specification of these in their application to the different classes of poetry.

The ultimate end of criticism is much more to establish the principles of writing, than to furnish rules how to pass judgement on what has been written by others.

जिसके लिए डंडे का सहारा सदैव अपेक्षित है। एच० ल० मेनकेन (Mancken) का एक सारगर्भित कथन इस तथ्य के पुष्टिकरण के लिए नीचे उधृत है।[१५९]

इस कर्तव्य के संबंध में भी दो विरोधी विचारधाराएँ प्रचलित रही हैं। एक को हम वैज्ञानिक या क्लासिकी कह सकते हैं, जिसके अनुसार समालोचक का काम है एक निष्पक्ष विश्लेषण प्रस्तुत करना जो कि पाठकों को साहित्य-तत्वों से परिचित करते हुए उन्हें अपना निर्णय करने के लिए स्वतंत्र छोड़ दे। उसके कथन में यह आभास कभी न हो कि वह पाठकों को अपने विचारों से प्रभावित करने के लिए इच्छुक है। इस पद्धति के प्रवर्तक हैं अरस्तू और इसके आज के प्रतिनिधि समीक्षक हैं इलियट जिनके कथनानुसार 'काव्य-व्याख्या तभी सार्थक होती है जब वह व्याख्यात्मक नहीं होती है और वह केवल पाठकों के समक्ष ऐसे तथ्यों को प्रस्तुत कर देती है जिससे वह अनभिज्ञ रहे हैं।[१६०]

इस आशय का विस्तार करते हुए जॉनडेवी (Dewey) ने लिखा है कि समीक्षा का मुख्य ध्येय है कलाकृतियों की परख करनेवाली दृष्टि (Perception) का पुनः शिक्षण; इस तरह से यह उस कठिन प्रयास का सहायक साधन है जिसे हम देखने तथा सुनने की उचित क्रिया कह सकते हैं।[१६१] इसके विपरीत समीक्षकों का वह

---

[१५९] The function of the genuine critic of art is to provoke the reaction between the work of art and the spectator. The spectator untutored stands unmoved; he sees the work of art, but it fails to make any intelligible impression on him; if he were spontaneously sensitive to it, there would be no need for criticism. Criticism as such stands or falls by its profitableness as an ancillary to direct appreciation.

[१६०] There is a large part of critical writing which consists in interpreting an author, a work.......But it is fairly certain that 'interpretation' is only legitimate when it is not interpretation at all, but merely putting the reader in possession of facts which he would otherwise have missed.

[१६१] The function of criticism is the re-education of perception of works of art; it is an auxiliary in the process, a difficult process of learning to see and hear.

वर्ग है जिसके अनुसार समीक्षा 'विज्ञान' नहीं, 'कला' है; एक प्रकार का सर्जनात्मक व्यापार जिसमें उन्हीं भावों तथा भाषा का समावेश होता है जो साहित्यिक कृतियों के उपयुक्त माने जाते हैं। इस वर्ग का आलोचक काव्य-सौन्दर्य का अन्वेषक है जिसकी सुधा को वह छककर पीता है और पाठकों को भी पिलाने का आयोजन करता है। उसका काव्यप्रेम हृदय के उत्साह से अनुप्राणित होता है और वह अपने उत्साह के वेग से पाठकों की उदासीनता का विनाश करके उनके निश्चल हृदय को तरंगित करने का प्रयास करता है। इस रुमानी (Romantic) पद्धति के आदि पुरुष हैं प्लेटो तथा लाँजिनस और उनके अनुयायियों में सर्वप्रसिद्ध हैं १९ वीं शताब्दी के स्वच्छंदतावादी समालोचक, 'हैजलिट', 'लैम्ब', 'विक्टर ह्यूगो' तथा 'हर्ड', 'शिलर' आदि जर्मन दार्शनिक समालोचक। इस भावात्मक समीक्षा का नमूना हमको प्रोः हुसमैन (Housman) की प्रसिद्ध उक्ति में मिलता है कि काव्य-जनित उत्साह का द्योतन मेरे लिए कतिपय शारीरिक लक्षणों द्वारा होता है, जैसे पुलकावलि, रीढ़ का स्पन्दन, कण्ठस्तंभन, नेत्रों का जलाकुल होना तथा पेट के अन्दर एक विशिष्ट प्रकार की उथल-पुथल। यह हमारे संस्कृत के गूढ़-भावक हैं जो :—

कवेरभिप्रायमशब्दगोचरं स्फुरन्तमार्द्रेषु पदेषु केवलम्।
वदद्भिरङ्गैः कृतरोमविक्रियैर्जनस्य तूष्णीं भवतोऽयमञ्जलिः॥

समीक्षा के मुख्य संप्रदाय

कला-कृति के कई मुख्य अंग होते हैं और विभिन्न अंगों को केन्द्र में रखते हुए अनेक समीक्षा-पद्धतियाँ अथवा संप्रदाय प्रचलित हो गये हैं। साधारणतः कलाकृति के मुख्य घटक हैं—कलाकार, कलाकृति के अंतरंग तत्त्व, पाठक तथा कलाकृति की उपादेयता। इसके अतिरिक्त कलाकृति किसी ऐतिहासिक युग से संबंधित है और उस समय की भाषा, सामाजिक आचार-विचार तथा सांस्कृतिक मान्यताओं इत्यादि का उस पर गहरा प्रभाव होना स्वाभाविक है। इसलिए काव्य की व्याख्या और मूल्यांकन में इस तथ्य की अवहेलना नहीं हो सकती। आज का युग विशेषज्ञों का युग है और इसकी मूल धारणा यह है कि किसी वस्तु का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि उसको कई भागों में विभाजित कर दिया जाय और एक विशिष्ट भाग ही एक वर्ग का अध्ययन-विषय हो। कुछ ऐसी ही बात आज की समीक्षा में भी हुई है यद्यपि इस अनुशासनहीन युग में, जब कि प्रत्येक विद्वान अपनी 'ढाई चावल की खिचड़ी' अलग पकाने में व्यस्त है, किसी प्रकार का भी वर्गीकरण सभी पद्धतियों का पूर्णरूपेण समावेश नहीं

करा सकता। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए 'एफ. ओ. मैथिसेन' (F. O. Mathiessen) ने कहा है कि आज का समीक्षा-क्षेत्र तो रविवार के एक पार्क के समान है जिसमें एक दूसरे के विरोधी वक्ता लोग आपस में वाद-विवाद करते हुए चिल्ला रहे हैं, परन्तु किसीको भी यह स्पष्ट ज्ञान नहीं है कि उनके विरोध का मूल कारण या स्वरूप क्या है।[१६२]

इस चेतावनी के साथ हम आज की मुख्य समीक्षा-पद्धतियों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करेंगे।

(अ) **ऐतिहासिक एवं सामाजिक समीक्षा**—इस सम्प्रदाय का मूल सिद्धान्त यह है कि साहित्य ऐतिहासिक तथा सामाजिक परिस्थितियों की उपज है और कोई भी कलाकार, चाहे वह कितना ही मेधावी क्यों न हो, किसी समाज का अंग होता है और उसके विशिष्ट वातावरण में पलता है, उस समय के साहित्य तथा साहित्यकारों से प्रभावित होता है तथा समसामयिक विचारधाराओं के प्रति उसकी अपनी प्रतिक्रियाएँ होती हैं, इसलिए उसकी रचनाओं का अध्ययन सामाजिक तथा ऐतिहासिक संदर्भ को ध्यान में रखते हुए ही किया जा सकता है। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन १८ वीं शताब्दी के समीक्षकों ने अपने ढंग से किया है और डॉ० जॉन्सन ने स्पष्ट शब्दों में घोषित किया कि किसी कवि की कृतियों का पूरा ज्ञान प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि कल्पना द्वारा हम उस काल में पहुँच जायँ जिसमें उसकी बुद्धि तथा कला विकसित हुई। इतना मानते हुए भी जॉन्सन की धारणा दृढ़ थी कि मानव-समाज का वास्तविक रूप सभी युगों में समान होता है और इसीलिए उत्तम साहित्य का प्रभाव सार्वभौमिक तथा सार्वकालीन होता है। परन्तु इस सिद्धान्त के माननेवालों का यह विशेष आग्रह है कि इतिहास गतिशील है और इससे प्रभावित साहित्य का भी गतिशील होना स्वाभाविक है; इसलिए बदलते हुए साहित्य-कलेवर को अटल नियमों के लौह कवच से नियन्त्रित नहीं किया जा सकता। १९ वीं शताब्दी के मध्य तक विज्ञान का व्यापक आधिपत्य स्थापित हो चुका था और 'जोला' ऐसे प्रतिभाशाली लेखक भी यह मानने के लिए विवश हो गये थे कि प्रकृति के अन्यप्राणियों की भाँति मनुष्य भी अपने परिवेशों (environments) तथा जन्म-जात संस्कारों (Heredity) से अधिकृत है और इन्हीं तत्त्वों के ऊपर

---

[१६२] A Sunday park of contending and contentious orators, who have not even arrived at the articulation of their differences.

उसकी भावी उन्नति तथा अवनति निर्भर करती है। यह विचार साहित्य में प्रकृतिवाद (Naturalism) का जनक सिद्ध हुआ और साहित्य-समीक्षा में इसके प्रबल समर्थक फ्रांस के 'टेन' (Taine) हुए जिनकी यह मूल धारणा थी कि साहित्य का स्वरूप तीन तत्वों द्वारा निर्णीत होता है—Race अथवा जाति, उसकी मूल संस्कृति तथा कलाकार का पारिवारिक जीवन और उसके अतीत का इतिहास। इस तत्व का विशेष समर्थन उसी काल के प्रसिद्ध समालोचक 'सांतेव्यूव' ने किया था। 'टेन' का दूसरा तत्व है Milieu जिसका अर्थ है कलाकार का परिवेश, उसकी शिक्षा-दीक्षा, आर्थिक परिस्थिति, साहित्यिक क्षेत्र का संघर्ष तथा सहकारिता इत्यादि। तीसरा तत्व है Moment अथवा सामाजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियाँ अथवा युगधर्म (Time Spirit)।

मार्क्सवादी सिद्धान्त के उदय तथा विकास के साथ इस पद्धति को विशेष बल प्राप्त हुआ और इसके रूप में भी मौलिक परिवर्तन हुआ। इस 'वाद' का मूल सिद्धान्त है कि साहित्य, संस्कृति, धर्म इत्यादि सभी बौद्धिक तथा आध्यात्मिक व्यापार आर्थिक व्यवस्था के आश्रित हैं और साहित्य के बदलते हुए रूप इसी आर्थिक पहलू के दर्पण मात्र हैं। प्रतिभाशाली लेखक इस मूल-भूत तथ्य की अवहेलना नहीं कर सकता, वह समाज का ऋणी है और उस ऋण-शोधन के लिए उसका यह पुनीत कर्तव्य होता है कि आर्थिक व्यवस्था में निहित वर्ग-संघर्ष (Class struggle) का स्पष्टीकरण करते हुए वह शोषित वर्ग को शोषक-व्यवस्था का अन्त करने के लिए प्रोत्साहित करे और उसको इस प्रयास की अनिवार्यता के प्रति जागरूक रक्खे।

(व) **मनोवैज्ञानिक समीक्षा-पद्धति**—आज का समीक्षा-साहित्य नवीन मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों तथा मान्यताओं से अत्यधिक प्रभावित है और इन मान्यताओं के दो मुख्य उद्गम-स्थान हैं, एक के प्रवर्तक हैं फ्रायड् और दूसरे के युंग। दोनों में मौलिक एकत्व के बावजूद सैद्धान्तिक अन्तर स्पष्ट है, इसलिए दोनों का अलग-अलग विवेचन करना ही उपयुक्त होगा।

फ्रायड् की मूल धारणा इस विश्वास पर आश्रित है कि मनुष्य एक चैतन्य पशु है जिसमें कामवासना नैसर्गिक तत्व है; क्योंकि यही उसकी जाति-वृद्धि तथा सुरक्षा की मूल प्रेरणा है। परन्तु मनुष्य सामाजिक प्राणी है इसलिए उसकी नैसर्गिक काम-वासना नैतिक तथा धार्मिक नियमों से नियन्त्रित है। इसलिए इस प्रवृत्ति की प्रेरणाओं का बराबर दमन होता रहता है जिसके फलस्वरूप ये कुण्ठित भावनाएँ चेतन-स्तर के नीचे अवचेतन के विशाल क्षेत्र में पहुँच जाती हैं

और धीरे-धीरे मानसिक ग्रंथियों का रूप धारण करती हैं। यही कुण्ठित भावनाएँ छद्म वेष में हमारे स्वप्नों में साकार होती हैं और यही हमारे वास्तविक चरित्र तथा व्यवहारों की मूल प्रेरणा हैं। मानव का अन्तर्मन (Psyche) एक आइस वर्ग के समान है जिसमें पानी के ऊपर का एक चौथाई भाग चेतन मन है; परन्तु उसके नीचे का तीन चौथाई हिस्सा अवचेतन अथवा अचेतन मन है, जिनके संतुलन पर ही मनुष्य का मानसिक स्वास्थ्य तथा वास्तविक सुख निर्भर करता है।

कला मानव का ऐच्छिक एवं सर्जनात्मक स्वप्न है और जिस प्रकार साधारण स्वप्नों के बदलते हुए चित्रों तथा बिम्बों का केन्द्र स्वप्नद्रष्टा का मन ही है, उसी प्रकार कलाकृति का प्राणभूत तत्व कलाकार का व्यक्तित्व है। कलाकार भी समाज के अन्य प्राणियों की भाँति एक कुण्ठित एवं अवमानित तथा अतृप्त प्राणी है, परन्तु वह कल्पना के धनी होता है और इसी कल्पना की जादू से वह काव्य में ऐसी सृष्टि करता है जिसके द्वारा वह स्वयं संतुष्टि प्राप्त करता है और समाज के असंख्य अतृप्त एवं कुण्ठित प्राणियों की तृप्ति तथा क्षति-पूर्ति का सुन्दर मार्ग भी प्रशस्त करता है। इस प्रकार स्वयं अस्वस्थ होते हुए भी वह समाज के स्वास्थ्य का सबल माध्यम होता है। इस काल्पनिक सृष्टि में कलाकार का योनि-संबंधी जीवन भी प्रतिबिंबित होता है, प्रत्यक्ष नहीं किन्तु परोक्ष रूप से और जिसको हम अनैतिक तथा अश्लील साहित्य कहते हैं वह भी पाठकों की कामेच्छा संबंधी मल के शोधन का एक सबल माध्यम है।

फ्रायडवादी समालोचना कवियों तथा साहित्यिक पात्रों के अध्ययन में विशेष उपयुक्त सिद्ध हुई है और इसने आलोचनात्मक शब्दावली को समृद्ध बनाते हुए अधिक वैज्ञानिक भी बनाया है। इससे शेक्सपियर तथा अन्य लेखकों के उन जटिल पात्रों की व्याख्या में विशेष योग मिला है जो विरोधी प्रवृत्तियों का समन्वय होने के कारण औचित्य (Propriety) का अपवाद समझे जाते थे। फ्रायड् ने इस बात पर विशेष आग्रह किया है कि मानव विरोधी तत्त्वों का योग है और उसके व्यवहारों में कोई निश्चित नियम द्रष्टव्य नहीं है। परन्तु इस पद्धति का सबसे बड़ा दोष है काम-वासना पर अतिशयाग्रह जिसके फलस्वरूप लेखक के व्यक्तित्व और शैली के विश्लेषण में इसी प्रवृत्ति का प्रभुत्व प्रत्यक्ष होता है और कलात्मक एवं उदात्त तत्त्वों की अवहेलना। इस सम्प्रदाय के परिसीमन (Limitation) की व्याख्या करते हुए फ्रायड् तथा युंग दोनों ने स्वीकार किया है कि मनोविज्ञान कलात्मक प्रतिभा एवं कला-पद्धति का

विवेचन करने में अथवा उसके रहस्य की व्याख्या करने में नितान्त असमर्थ है।[१६३]

'युंग' के सिद्धान्त कला तथा साहित्य के विशेष अनुकूल हैं; क्योंकि उनमें मानव के पशुत्व पर अधिक आग्रह नहीं है। युंग इतना मानते हैं कि मानव-जीवन का स्वस्थ उन्नयन चेतन तथा अवचेतन के सुखद समन्वय पर निर्भर करता है और अवचेतन अपनी सत्ता को स्वप्न के माध्यम से प्रकट करता है। परन्तु युंग का अवचेतन कुण्ठित मनोविकारों का आगार नहीं, अपितु मानव के जातिगत एवं व्यक्तिगत संस्कारों का आयतन है और मनुष्य की समस्त रचनात्मक तथा सर्जनात्मक शक्तियों का मूल-स्रोत। यही कला, धर्म तथा पुरावृत्त का उद्गम-स्थान है। इससे उद्भूत बिंब तथा प्रतीक (Images and symbols) archetypal अथवा जाति-गत मूल प्रेरणाओं के आदर्श रूप हैं और यही उच्च काव्य की आधारशिला हैं। कला का उद्भव अवचेतन की सर्जनात्मक शक्ति के चेतन-मन में उच्छलन से संभव होता है जिसमें कलाकार के व्यक्तित्व का आत्मनिहित मानवता में विलयन हो जाता है। इसलिए कला व्यक्ति-निरपेक्ष होती है और उसकी मूलप्रेरणा समस्त जाति के संस्कार-रूपेण विद्यमान अनुभवों तथा अनुभूतियों से पैदा होती है। कलाकार के चरित्र से कला का कोई संबंध नहीं है।

युंगवादी समालोचना तथा पुरावृत्त एवं प्रतीकवादी समालोचना में बहुत साम्य है और युंग का मनोविज्ञान मानव-शास्त्र (Anthropology) की मान्यताओं से विशेष समर्थित है। इन समालोचकों का अन्वेषण मौलिक प्रतीकों पर केन्द्रित है जो समस्त विश्व-साहित्य के एकत्व का समर्थन करते हैं क्योंकि मानव-जाति की मूल प्रेरणाएँ सार्वभौमिक हैं। उदाहरणस्वरूप हम जन्म-मरण-पुनर्जन्म की प्रक्रिया को ले सकते हैं जो प्रकृति-जीवन तथा मनुष्य के आध्यात्मिक जीवन का मूल तत्व है। जैसे प्रकृति में हेमन्त ऋतु (मृत्यु) के बाद वसन्त ऋतु (पुनर्जन्म) का आगमन होता है वैसे ही मानव-जीवन में भी आत्मिक ह्रास के

---

[१६३] Psycho-analysis can do nothing towards elucidating the nature of the artistic gift, nor can it explain the means by which the artist works, artistic technique. —Freud.

Any reaction to stimulus may be explained; but the creative act, which is the absolute antithesis of mere reaction will for ever elude the human understanding. —Jung.

पश्चात् पुनर्विकास संभव है। यही बात मृत्यु के बाद पुनर्जन्म की धार्मिक आस्था का भी आश्रय है। आत्मिक पुनर्जन्म अवचेतन के गर्भ से उद्भूत क्रियात्मक शक्ति द्वारा होता है जिसका प्रतीक स्त्री-रूप है; क्योंकि अवचेतन मातृतत्त्व है। इसीलिए दान्ते की 'डिवाइन कमेडी' तथा गेटे (Goethe) के 'फाउस्ट' (Faust) में स्त्री ही पथप्रदर्शक तथा उद्धारक है।

मनोविज्ञान की सर्वोत्तम उपलब्धि एक नई समीक्षा-पद्धति है जिसके सर्व-प्रसिद्ध प्रवर्तक आइ० ए० रिचर्ड्स हैं, जिनके आलोचना-सिद्धान्त की व्याख्या हम कर चुके हैं।

इस तरह ऐतिहासिक आलोचना पद्धति तथा फ्रायड्वादी मनोवैज्ञानिक सम्प्रदाय एक दूसरे के विरोधी हैं। एक का आग्रह युग धर्म (Time-spirit) पर है और दूसरे का कलाकार के स्वभाव तथा व्यक्तित्व पर। यह स्पष्ट है कि प्रत्येक एक तथ्यांश को पूर्ण तथ्य मानकर साहित्य-विवेचन करता है; परन्तु साहित्य की वास्तविकता दोनों दृष्टिकोणों के समन्वय में निहित है। इसीलिए 'आरनल्ड' ने कहा है कि उच्च कोटि की कला प्रतिभाशाली व्यवित तथा प्रगति-शील युग के सम्मिलन से उत्पन्न होती है। 'युग धर्म' का अपना महत्व है और कोई भी कलाकार इससे अछूता नहीं रह सकता, चाहे वह उस धर्म के पक्ष में हो अथवा उसके विपक्ष में। परन्तु एक ही वातावरण में रहनेवाले प्रतिभाशाली कलाकार व्यक्तित्त्व-वैषम्य के कारण भिन्न प्रकार की शैली अपनाते हैं। कलाकार की महत्ता तभी सिद्ध होती है जब वह अपने युग की मान्यताओं को स्वीकार करते हुए भी उनके शाश्वत तत्त्वों का आश्रय ग्रहण करता है जिससे उसकी कृति देश-काल से सीमातीत समस्त मानव-जाति के अध्ययन तथा मनन का विषय होती है। प्रायः कहा जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण है; यह कथन भ्रामक हो सकता है यदि इसका अर्थ केवल यही है कि साहित्य में समाज के बाहरी, स्थूल-रूप, की ही छाया अंकित रहती है। साहित्य की सार्थकता समाज के हृदय-तल की अभिव्यक्ति पर निर्भर करती है जहाँ मानवता के नित्य तथा अनित्य तत्वों का संगम संभव है। इसके सर्वोत्तम उदाहरण अंग्रेजी में शेक्सपियर हैं और हिन्दी में तुलसी। शेक्सपियर अपने युग के प्रतिनिधि कवि होते हुए भी समस्त मानव-जाति के हृदय-सम्राट् बने हुए हैं और तुलसी हिन्दू-संस्कृति की संकटकालीन परिस्थिति से पूर्णतया प्रभावित होते हुए भी एक महाकाव्य की रचना कर गये हैं जो यावच्चन्द्र-दिवाकरौ समस्त हिन्दू-जाति के आध्यात्मिक जीवन का भरण-पोषण करता रहेगा और संतप्त आत्माओं की तृप्ति तथा शान्ति का स्वच्छ शीतल सरोवर सिद्ध होगा। केवल युग-प्रतिनिधि कलाकार का भविष्य सदैव अनिश्चित रहता है।

(स) कला-स्वायत्तवादी सम्प्रदाय—आधुनिक समीक्षा-साहित्य में एक ऐसा सम्प्रदाय है जो कलाकृति को ही अध्ययन का मुख्य केन्द्र मानता है और इसको कलाकार के जीवन तथा युग-धर्म से नितान्त मुक्त रखना चाहता है। इसके लिए कलाकृति एक स्वतंत्र वस्तु है और पूर्णरूपेण आत्मनिर्भर एवं पराश्रय निरपेक्ष। इस पद्धति की मूलप्रेरणा 'इलियट' तथा 'आई० ए० रिचर्ड् स' से प्राप्त है, परन्तु इसका विशिष्ट रूप अमेरिका में विकसित हुआ जहाँ वह 'नवा-लोचना पद्धति' (New criticism) के नाम से प्रसिद्ध हुई है। इसमें कलाकार के कला पक्ष का समर्थन है और उसके भावों की तीव्रता तथा उसका पाठकों पर प्रभाव इत्यादि गौण प्रश्न हैं। इस सम्प्रदाय के समालोचक—अलेन टेट (Allen Tate), जॉन क्रो रैन्शम (John Crowe Ransome), राबर्ट पेन (Penn) इत्यादि—काव्य के संगठित रूप पर विशेष आग्रह करते हैं, परन्तु यह संगठन बाह्य (Structure) तथा आन्तरिक (Texture) दोनों है और इसकी गरिमा दो बातों पर निर्भर है—(क) विरोधी तत्वों की व्यापकता एवं संकुलता; (ख) इन सभी तत्वों का कलात्मक समन्वय। इस प्रसंग में कोलरिज के सर्जनात्मक कल्पना की परिभाषा का ध्यान होता है जिसके अनुसार कवि-प्रतिभा का सर्वश्रेष्ठ चमत्कार अनेकता में एकता तथा विषमता में निहित समता का बोध कराने में प्रत्यक्ष होता है। इस पद्धति की विशेषता है सूक्ष्म-विश्लेषण, जिसका अर्थ है प्रत्येक शब्द की वक्रता (Ambiguity) का अध्ययन, बिम्बों तथा प्रतीकों का वर्गीकरण एवं उनके पारस्परिक संबंधों की परीक्षा और तत्पश्चात् इन बिखरे हुए तत्वों का संकलन। इसके लिए कलाकृति का सतत मनन-चिंतन अनिवार्य है। इस पद्धति ने समीक्षा को एक वैज्ञानिक अनुशासन से नियन्त्रित कर दिया है और इसमें पारिभाषिक शब्दों का बाहुल्य है, जिनकी अर्थ-भिन्नता कभी-कभी पाठकों को भ्रम में डाल देती है। यह पद्धति प्रतिभाशाली समीक्षक के लिए एक सबल साधन सिद्ध हुई है, परन्तु इसमें मस्तिष्क की बहक तथा कल्पना की उड़ान के लिए पर्याप्त अवसर मिल सकता है। इस सम्प्रदाय की भाषा उत्तरोत्तर जटिल होती जा रही है और कभी-कभी तो ऐसा प्रतीत होता है कि यह व्याख्या कवि-आशय को प्रकाशित नहीं, अपितु उसको द्विगुणित दुरूहता से अवगुण्ठित कर रही है।

(द) शास्त्रीय समीक्षा (academic criticism)—इस पद्धति के पोषक प्रायः विशेषज्ञ तथा विद्यालयों के मान्य प्राध्यापक लोग हैं जो कई दृष्टिकोणों का समन्वय करके विद्वत्तापूर्ण, किन्तु स्व-व्यक्तित्वसापेक्ष, समालोचना प्रस्तुत करते हैं। इस पद्धति के कई अंग हैं, जिनका संक्षिप्त उल्लेख वांछनीय है। इसका एक वर्ग भाषा-

विशेषज्ञों का है जो पुराने तथा विवाद-ग्रस्त पाठों (Texts) का अध्ययन तथा अन्वेषण करके एक प्रामाणिक पाठ तैयार करता है। यह पद्धति अत्यन्त प्राचीन है और शेक्सपियर, होमर इत्यादि महाकवियों के पाठक उन विद्वानों के चिर ऋणी रहेंगे जिन्होंने इस शान्त, तिरस्कृत किन्तु अत्यन्त उपयोगी माध्यम के द्वारा उनके लिखित शब्दों का विश्वसनीय विन्यास निश्चित किया। कुछ लोग इसको साहित्य-समीक्षा की संज्ञा देने के लिए तैयार नहीं हैं, परन्तु इतना तो सर्वमान्य है कि यद्यपि यह शुद्ध समीक्षा नहीं भी है, तथापि यह समस्त समीक्षा का आधार है; क्योंकि प्रामाणिक पाठ के विना काव्य का अध्ययन तथा मूल्यांकन निराधार ही होगा।

एक दूसरा वर्ग साहित्य का क्रमबद्ध इतिहास प्रस्तुत करने में संलग्न रहा है जिससे साहित्य-विकास के बदलते हुए पहलुओं का दिग्दर्शन होता है और साहित्य-महारथी सामाजिक तथा साहित्यिक सन्दर्भ के माध्यम से अपने समकालीन लेखकों के मध्य उपस्थित किये जाते हैं जिससे उनकी विशेषता का पूर्ण ज्ञान संभव होता है। यह ऐतिहासिक अध्ययन भी आज कई भागों में बँट गया है और नाटक, काव्य, उपन्यास, लघु-कथा इत्यादि विभिन्न साहित्याङ्गों का अलग-अलग अध्ययन हो रहा है जिससे विषय का पूर्ण एवं तल-स्पर्शी विवेचन संपन्न हुआ है। साहित्य-सेवियों तथा स्रष्टाओं का वर्गीकरण कभी भी स्थायी नहीं होता है और समय-चक्र के अनुसार लेखकों की ख्याति का उत्कर्ष, अपकर्ष होता रहता है। इसलिए 'इलियट' ने कहा है कि कम से कम प्रत्येक शताब्दी के अन्त में ऐसे समालोचक की आवश्यकता होती है जो साहित्य का पूर्ण विवेचन करके कवियों तथा काव्यों का नया वर्गीकरण प्रस्तुत करे। साहित्य का विकास विविध परम्पराओं के संघर्ष का विवरण है; एक 'वाद' का विकास किसी पुराने वाद के अवसान पर निर्भर करता है। जैसे इंगलैण्ड में स्वच्छन्दतावाद (Romanticism) का भव्य भवन १८वीं शताब्दी की नवक्लासिकी (Neo-classical) परम्परा के खंडहर पर निर्मित हुआ और बीसवीं शताब्दी का नव-साहित्य स्वच्छंदतावाद के प्रति घोर विरोध से ही अनुप्राणित हुआ। इस प्रकार समीक्षा के पहलू बदलते रहे हैं और 'वादों' के विवाद तथा तुमुल संग्राम में सत्यान्वेषण कार्य दुरूह सिद्ध हुआ है। ऐसी परिस्थिति में इन विद्वानों का मुख्य और सबसे उपादेय कर्तव्य है पाठकों का सही पथ-प्रदर्शन करना।

आज का युग उद्योगों की वृद्धि तथा विकास का युग है और समीक्षा भी एक अत्यन्त अर्थकरी एवं रोचक उद्योग हो गयी है। इसका अधिकांश भाग 'वादों' के खंडन-मंडन अथवा समीक्षक के प्रिय 'वाद' तथा वैयक्तिक विचार-

धारा के समर्थन तथा प्रचार में तत्पर है। इस प्रकार एक साहित्योपजीवी उप-साहित्य का विशाल भाण्डार, जिसकी उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है, पाठकों के सामने तैयार हो गया है जिसका अनुशीलन स्वयं उनका समस्त अवकाश आत्म-सात् करने के लिए पूर्ण समर्थ है। फलतः मूलग्रन्थों का विवेचन या तो गौण हो गया है अथवा नितान्त उपेक्षित। यही आज के विकसित समीक्षा-साहित्य का विदग्ध व्यंग है; साहित्य में अभिरुचि पैदा करने के बजाय यह साहित्य का ही स्थान ले बैठा है और आज का साहित्य-ज्ञान बहुत कुछ समीक्षकों के विचारों की प्रतिध्वनि है। इस प्रसंग में सबसे भ्रामक बात है सुनिश्चित मापदण्डों का अभाव जिसके फलस्वरूप किसी एक काव्य के संबंध में कई विरोधी मान्यताएँ संभव होती हैं और सरलहृदय पाठक प्रकाश की खोज करते हुए अंधकार में टटोलता हुआ पथ-भ्रष्ट हो जाता है। प्रो० 'जॉन डेवी' (Dewey) ने कहा है कि समीक्षक का विशिष्ट महत्व इस बात पर निर्भर है कि वह पाठकों की रुचि उत्तेजित करे, उनकी अन्तर्दृष्टि (insight) तीव्र तथा व्यापक बनावे और उनकी योग्यता को इस प्रकार प्रशिक्षित करे कि वे स्वयं अपने परिश्रम तथा अनुभव से साहित्य का अध्ययन तथा मूल्यांकन करने के लिए समर्थ तथा सक्रिय हों। परन्तु इसके साथ ही 'स्टाफर' (Stauffer) महोदय की उक्ति भी स्मरणीय है कि यदि समीक्षक साहित्य का व्याख्याकार तथा प्रभासक है तो उसका यह प्रथम कर्तव्य है कि पाठकों के समक्ष अपने आदर्शों का स्पष्ट प्रतिपादन करे। कम से कम साहित्य के मूल तत्वों का ज्ञान तो प्रत्येक पाठक को होना ही चाहिये, नहीं तो साहित्य की व्याख्या प्रत्येक प्रेमी के स्वेच्छा-विलास का खिलौना मात्र रह जायगी। आज की समीक्षा का विशाल प्रासाद उस माया-महल के समान है जिसका या तो कोई सुनिश्चित आधार नहीं है अथवा ऐसा आधार है जो 'धूप-छाँह' के समान अपना रंग सदैव बदलता रहता है।

अध्याय ७

काव्य के भेद-प्रभेद

टी० एस० इलियट ने कवि के वाग्विलास के तीन रूपों का वर्णन किया है। पहला रूप ऐसे काव्य में प्रत्यक्ष होता है जिसमें कवि स्वयं तथा कल्पित पात्रों के माध्यम से किसी महान् व्यक्ति के कार्यों का वर्णन करता है। दूसरे रूप में वह कल्पित पात्रों के भाव, विचार तथा कार्य द्वारा (जिसका अभिनय भी अपेक्षित हो सकता है), एक क्रमबद्ध या धारावाहिक कथा प्रस्तुत करता है। तीसरे रूप में वह अपने को केन्द्र में रखकर स्वकीय भावों तथा अनुभूतियों की अभिव्यञ्जना करता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इन्हीं प्रकारों में काव्य के मौलिक भेदों 'एपिक', 'ड्रामा' तथा 'लिरिक' का निर्देश है जो यूरोप के परम्परागत स्थूल काव्य-भेद हैं और पाश्चात्य काव्य के क्रान्तिकारी परिवर्तनों के बावजूद आज भी अमान्य नहीं हुए हैं।

हमारे यहाँ काव्य-विभाजन कई दृष्टिकोणों से हुआ है, जिनमें सबसे अधिक वैज्ञानिक 'दृश्य' तथा 'श्रव्य' का स्थूल रूप और उनके अनेक भेद-प्रभेद हैं। हमारा विवेचन इन्हीं रूपों की संक्षिप्त व्याख्या से संबंधित है और इस विवेचन का श्रीगणेश रूपक अथवा नाट्य या ड्रामा से आरंभ होगा; क्योंकि इसका महत्व तथा व्यापकत्व पूर्व तथा पश्चिम में निर्विवाद रहा है।

रूपक या ड्रामा

अभिनवगुप्त का प्रसिद्ध कथन है कि 'काव्यं तावन्मुख्यतो दशरूपकात्मक एव' और इस कथन का अनुमोदन प्रायः सभी विचारकों ने किया है—'सन्दर्भेषु दशरूपकं श्रेयः। तद्विचित्रं चित्रपटवद् विशेषसाकल्यात्'। इसी तथ्य का सार प्रोफेसर 'निकल' (Nicoll) के एक विस्तृत कथन में स्पष्ट किया गया है :

'नाट्य काव्य के विभिन्न भेदों में सर्वाधिक विचित्र तथा हृदयस्पर्शी है। इसका रंगमंच तथा तत्संबंधी प्रेक्षकवृन्द से घनिष्ठ संबंध है और इस प्रकार इसका मुख्य आधार बाह्य तथा असाहित्यिक है, परन्तु इसी आधार के कारण इसका प्रभाव अत्यन्त व्यापक होता है और उद्देश्य सामाजिक। जिस देश में इसका उद्भव होता है उसकी अंतश्चेतना से इसका घनिष्ठ संबंध तो रहता ही है,

परन्तु इसके साथ ही साथ अन्य देशों तथा कालों के लोगों को प्रभावित करने के लिए इसमें अनुपम क्षमता होती है। यह प्रहसन तथा 'भाँण' के निम्न स्तर पर उतर सकता है, परन्तु अत्यन्त सरलता के साथ काव्यौदात्य के उच्चतम शिखर पर भी उठ सकता है। अतएव यह तथ्य असंदिग्ध तथा सर्वमान्य है कि नाट्य मानव-प्रतिभा से उद्भूत साहित्य के सभी प्रकारों में शीर्षस्थ है।[१६४]

इस प्रामाणिक कथन में नाट्य की बहुत-सी विशेषताएँ निर्दिष्ट हैं और उनकी संक्षिप्त व्याख्या द्वारा इसके स्वरूप का स्पष्टीकरण संभव है। नाट्य साहित्यिक होते हुए भी अति साहित्यिक तत्त्वों पर आश्रित है; क्योंकि इसके विविध अंग अभिनय द्वारा दृश्य होते हैं और फलतः रंगमंच की बनावट तथा दर्शकों की रुचि, स्वभाव, इत्यादि का इस पर गहरा प्रभाव पड़ता है यद्यपि रंगमंच की लोकप्रियता ही इसके महत्व का निकष नहीं है।[१६५] इस तथ्य का समर्थन कतिपय उदाहरणों द्वारा किया जा सकता है। भरत के 'नाट्यशास्त्र' से यह बात सर्वविदित है कि उनके मतानुसार नाट्य ही रस का स्रोत है जिसकी निष्पत्ति अभिनय की

---

१६४ The drama is at once the most peculiar, the most elusive and the most enthralling of all types of literature. It is so deeply associated with and dependent upon the whole material world of the theatre, with its thronging crowds and its universal appeal; it is so near to the deeper consciousness of the nation in which it takes its rise; it is capable of addressing itself so widely and so diversely to peoples of far distant ages and of varying climes; it is so social in its aim and in its appreciation, it is so prone to descend to the uttermost depths of buffoonery and farce and yet ascends so easily and gloriously to the most magnificent height of poetic inspiration, that it stands undoubtedly as the most interesting of the all the literary products of human intelligence.

—*The Theory of Drama*. p. 9.

१६५ मृदुललितपदार्थं गूढशब्दार्थहीनं,
बुधजनसुखयोग्यं बुद्धिमन्नृत्तयोग्यम्।
बहुरसकृतमार्गं सन्धिसन्धानयुक्तं,
भवति जगति योग्यं नाटकं प्रेक्षकाणाम्॥

—नाट्यशास्त्र

सफलता एवं प्रेक्षकों की सहृदयता पर निर्भर करती है। उनका प्रेक्षक-समुदाय सहृदय तथा अभिरुचि-पूर्ण अधिक से अधिक पाँच सौ सामाजिकों का समूह था, जिसके समक्ष भावों का सात्त्विक, वाचिक, आंगिक इत्यादि अनुकरण संभव था। परन्तु प्राचीन यूनानी रंगमंच राष्ट्रीय प्रतिष्ठान था जिसके सामने नगर के सहस्रों नर-नारी एकत्र होते थे तथा पात्रों के मुख पर चेहरा (Mask) लगा रहता था और उनको महामानव दर्शाने के हेतु ऊँची एड़ी के जूते तथा मोटे अंगावरण अनिवार्य थे। ऐसे पात्रों के लिए शरीरभंगी तथा चेष्टाओं द्वारा भावाभिव्यञ्जन असंभव था। परिणाम यह हुआ कि यूनानी नाटकों की विशेषता लम्बे संलापों तथा तर्कपूर्ण विवादों पर आधारित है। इसके विपरीत शेक्सपियर के रंगमंच की विशेषता यह थी कि राजधानी के विविध वर्गीय, शिक्षित, अर्ध-शिक्षित तथा अशिक्षित लोग पात्रों को तीन ओर से घेरकर खड़े या बैठे रहते थे। इसी परिस्थिति-विशेष के परिणाम हैं इन नाटकों का रूप-वैविध्य, प्रभावशाली घटनाओं का बाहुल्य, मुख्यपात्र के आभ्यांतरिक भावों की 'स्वगत' (Soliloquy) द्वारा अभिव्यक्ति तथा अभिनय की अतिनाटकीयता (Theatricality)। इसके अतिरिक्त इस रंगमंच पर स्त्री-पात्रों का काम पुरुष-पात्रों द्वारा सम्पन्न होता था इसलिए स्त्री-पात्रों का पुरुष का छद्मवेष (Disguise) धारण करने की परम्परा लोकप्रिय हुई और प्रेमी, प्रेमिका की आसक्ति काव्यमय व्यंग्यार्थ द्वारा न कि चेष्टाओं अथवा भावभंगी के माध्यम से प्रकट करने की पद्धति अनिवार्य हुई।

नाट्य का अभिनयावलम्बन यह स्पष्ट करता है कि इसके स्वरूप का सार है 'अनुकरण' अथवा 'अनुकृति'—'अवस्थाऽनुकृतिर्नाट्यम्;' यही बात अरस्तू के काव्य-शास्त्र में भी स्पष्ट की गई है जहाँ नाटक को मानव-कार्यों का अनुकरण कहा गया है। कुछ लोगों का मत है कि इन दोनों परिभाषाओं में पूर्व तथा पश्चिम के नाट्य-संबंधी विरोधी दृष्टिकोण परिलक्षित हैं; पूर्व का आग्रह मनोभावों के अनुकरण पर तथा पश्चिम का मनुष्य के बाह्य कार्यों पर। इस संबंध में स्मरणीय है कि यूरोप में भी ऐसे कई समीक्षक तथा नाटककार हैं जिन्होंने कार्य के अंतरंग पक्ष तथा मनोदशा पर ही विशेष बल दिया है। १७वीं शताब्दी के फ्रांसीसी क्लासिकी (classical) नाटकों का समर्थन करते हुए ड्राइडेन (Dryden) की 'ड्रमेटिक पोयजी' (Dramatic Poesy) का एक पात्र कहता है कि ध्येय का प्रत्येक परिवर्तन तथा उपस्थित बाधा, भावावेश का अप्रत्याशित उद्रेक तथा आवर्त कार्य का अंग है और सर्वोत्तम अंग। कुछ लोग 'कार्य' का संतोषपूर्ण रूप तभी देखते हैं जब रंगमंच पर पात्र 'स्थूल हस्थावलेपों' का उन्मुक्त विनिमय करने लगते हैं, ऐसा मालूम पड़ता है

कि कवि के लिए नायक के शारीरिक बल का प्रदर्शन उसकी मनोदशा के चित्रण से अधिक प्रशंसनीय या वांछनीय है"।[१६६] प्रसिद्ध रूसी नाटककार, चेकाव, (Chekov) के नाटकों में बाह्य कार्य अथवा शारीरिक भंगिमा का नितान्त अभाव है और पात्रों की निश्चल-प्राय मनोदशा ही दर्शकों का केन्द्र-बिन्दु है। यूरोप के प्रसिद्ध नाटककार तथा दार्शनिक, मेटरलिंक (Maeterlinck) तो 'मानसिक रंगमंच' (Mental theatre) के पक्षपाती रहे हैं और उनके लिए गम्भीर नाटक का वास्तविक रूप तभी निखरता था जबकि साहसिक कार्य, कठिनाइयाँ तथा बाह्य संघर्ष दृष्टि-ओझल होते थे।[१६७]

इसलिए 'कार्य' (action) में शारीरिक तथा मानसिक दोनों प्रकार की क्रियाओं का समावेश है और कार्य कभी-कभी लाक्षणिक भी होता है—जैसे 'गाल्सवर्दी' के 'सिल्वर वाक्स' में जोन्स दम्पति के जेल जाने के बाद सड़क पर घूमते हुए उनके बच्चे के रोने की ध्वनि उस सुसज्जित कमरे तक पहुँचती है जहाँ वार्थविक तथा उनकी प्रगल्भा पत्नी विराजमान है। करुण-ध्वनि से श्रीमती वार्थविक में स्त्री-सुलभ करुणा का संचार होता है और वे अपने पति से उन गरीबों पर दया करने की प्रार्थना करती हैं। पति महोदय चुपचाप उठते हैं

---

[१६६] 'Every alteration or crossing of a design, every new-sprung passion and turn of it, is a part of the action, and much the noblest, except we conceive nothing to be action till the players come to blows as if the painting of the hero's mind were not more properly the poet's work than the strength of his body.

[१६७] The mysterious chant of the Infinite, the ominous silence of the soul and of God, the murmur of Eternity on the horizon, the destiny or fatality that we are conscious of within us, though by what tokens none can tell—do not all underlie *King Lear*, *Macbeth*, *Hamlet*.........Is it beyond the mark to say that the true tragic element, normal, deep-rooted and universal, that the true tragic element of life only begins at the moment when the so-called adventures, sorrows and dangers have disappeared......Must we indeed roar like the Atrides, before the Eternal God will reveal himself in our life. ?

और खिड़की बन्द कर देते हैं जिससे करुण-क्रन्दन शान्त प्रतीत होता है और उनकी पत्नी का क्षणिक उदारभाव भी लुप्त हो जाता है। इसी एक छोटी सी घटना में आज के धनिकों की संतप्त गरीबों के प्रति नितान्त स्वार्थ-केन्द्रित भावना तथा दृष्टिकोण की तल-स्पर्शी झांकी प्रस्तुत है। इसी प्रकार शेक्सपियर के 'मैकबेथ' में लेडी मैकबेथ अपनी विक्षिप्तावस्था में अपने करतल को बराबर रगड़ती रहती हैं; क्योंकि उन्हें इस बात की भ्रान्ति हो गई है कि वृद्ध राजा 'डनकन' का रक्त-चिन्ह उन पर अंकित हैं, जो किसी प्रकार भी मिटाये नहीं जा सकते। अन्त में निराशा का उद्धगार करते हुए वे कहती हैं 'कौन सोच सकता था कि उस वृद्ध के शरीर में इतना रक्त भरा था !' इसी एक क्रिया में उस निर्मम हत्या की समस्त जघन्यता निहित है।

नाट्य की 'अनुकृति' का अर्थ है लोक-गत व्यापारों तथा भावों का कलात्मक अनुकरण यह बात भरतमुनि के 'लोकधर्मी' तथा 'नाट्यधर्मी' की व्याख्या में स्पष्ट है, जिसका उल्लेख 'रस-निरूपण' वाले अध्याय में हो चुका है और यहाँ उसकी पुनरावृत्ति अनावश्यक है। पाश्चात्य विवेचकों ने नाट्य को जीवन तथा प्रकृति का दर्पण बतलाया है और इस रूपक की सर्वमान्य व्याख्या प्रसिद्ध फ्रेंच लेखक ह्यूगो के बहु-विदित कथन में प्रस्तुत है, जिसमें उन्होंने कहा है कि नाटक वह विशिष्ट दर्पण है जिसमें जीवन की बिखरी हुई किरणें संकलित तथा घनीभूत की जाती हैं; नाट्य-कला की सार्थकता इसी प्रक्रिया पर निर्भर है। साधारण दर्पण तो जीवन-ज्योति को मन्द तथा धुंधला कर देता है।[१६८]

इस प्रकार नाट्य वास्तविक जन-जीवन तथा जन-स्वभाव की प्रतिकृति नहीं, अपितु उसकी वास्तविकता की भ्रान्ति (Illusion) है। शेक्सपियर के प्रसिद्ध पात्र, ड्यूक थीसियस, ने कहा है कि सर्वोत्तम अभिनय भी छाया मात्र है, परन्तु प्रेक्षक अपनी कल्पना से उसे वास्तविकता में परिणत कर सकता है। वैसे तो कला मात्र को छाया-चित्र मानने की धारणा उतनी ही पुरानी है जितनी कि साहित्य तथा

---

१६८ It has been said, 'The drama is a mirror in which nature is reflected'. But if this mirror is an ordinary mirror, a flat and polished surface, it will provide but a poor image of the objects, without relief—faithful but colourless. The drama, therefore, must be a focusing mirror, which, instead of making weaker, collects and condenses the coloured rays, which will make of a gleam a light, of a light a flame.'

समीक्षा, और यूरोप में इसके प्रसिद्ध प्रवर्तक हैं प्लेटो जो पाश्चात्य काव्य-समीक्षा के उद्भव-विन्दु माने जाते हैं। परन्तु नाट्य में इस भ्रान्ति के प्रादुर्भाव तथा विकास के लिए सर्वोत्तम साधन सुलभ होते हैं तथा 'सामाजिकों' के मन में इस तरह की भ्रान्ति उत्पन्न करना ही इसका मुख्य ध्येय है। ऐसा कहा गया है कि आँख से देखी हुई वस्तु सुनी हुई वस्तु से अधिक प्रभावशाली होती है (Thing seen is mightier than thing heard) और इस तथ्य का सबल उदाहरण नाट्य बतलाया जाता है। इसी तथ्य से प्रेरित होकर आज के यथार्थवादी कलाकारों ने रंगमंच पर अवतरित दृश्यों इत्यादि का ऐसा चित्र उपस्थित करने का प्रयत्न किया है जो प्रेक्षकों के लिए साधारण जीवन का सजीव अंग प्रतीत हो। परन्तु यह धारणा सारहीन सिद्ध हुई है। तथ्य यह है कि प्रेक्षकों की दृष्टि-भ्रान्ति के बल से ही उनको 'अनुकृति' को अनुकार्य मानने के लिए विवश नहीं किया जा सकता। ऐसे भावुक प्रेक्षक, जो नाट्यपात्रों को वास्तविक व्यक्ति मान बैठते हैं, दुर्लभ होते हैं यद्यपि उनके अस्तित्व का नितान्त अभाव नहीं है' क्योंकि नाट्य के इतिहास में ऐसी सरल आत्माओं का दर्शन यदा कदा होता रहा है—जैसे शेक्सपियर के प्रसिद्ध नाटक 'रिचर्ड थर्ड' के एक अभिनय में जब पराजित निरकुंश-नृप चिल्लाया ''घोड़ा, घोड़ा, मेरे समस्त राज्य के बदले में एक घोड़ा'', (A horse, a horse my kingdom for a horse) तब एक भावुक कृषक प्रेक्षक ने तुरत अपना घोड़ा देने का प्रस्ताव पेश किया और एक उदारहृदया महिला ने हैमलेट को मुक्त-कण्ठ से आगाह करने का प्रयास किया कि प्रतिद्वन्द्वी की असिधार विषाक्त है। नाट्य-भ्रान्ति को प्रभावशाली बनाने का सर्वोत्तम साधन प्रेक्षक के मन में ऐसी दशा का आविर्भाव करना है जिससे वह अपने व्यक्तिगत जीवन, उसकी समस्याओं तथा प्रभावों के ऊपर उठकर सामान्य मानवता के स्तर पर पहुँच जाय और नाटक के मुख्य पात्र से तादात्म्य स्थापित कर ले। भारतीय नाट्य-विवेचन में इस बात पर विशेष आग्रह है और नाटक के विशिष्ट साधन जैसे कथानक का क्रमिक विकास, संगीत, नृत्य तथा काव्यात्मक भाषा, भावभंगी तथा सजीव आंगिक अभिनय इत्यादि इसी उद्देश्य-पूर्ति के लिए प्रस्तुत किये जाते हैं। 'रस-निरूपण' के प्रसङ्ग में हमने अभिनव गुप्त की प्रसिद्ध व्याख्या का उल्लेख किया है जिसमें उस मनोवैज्ञानिक सोपान की चर्चा है जो प्रेक्षक की इन्द्रियों (आँख तथा कान) से उठता हुआ उस मानसिक अवस्था में समाप्त होता है जो रस-चर्वणा के उपयुक्त होती है।

पाश्चात्य मनीषियों ने भी इस बात का आग्रह किया है कि वास्तविक भ्रान्ति

के लिए यह आवश्यक है कि प्रेक्षक की तर्कबुद्धि भावाभिभूत होकर नाट्याभिनय के पूरे 'अन्तराल' तक निष्क्रिय तथा सुषुप्त हो जाय। इसी भावप्रवाह में बहते हुए प्रेक्षक इतना तन्मय हो जाते हैं कि उनको उन त्रुटियों तथा असंगत बातों का बिल्कुल ज्ञान नहीं होता जो नाटक के मननशील पाठक के लिए प्रायः सुलभ हैं। इस प्रसंग में कोलरिज का प्रसिद्ध सूत्र 'अनास्था का ऐच्छिक स्थगन' जिसको काव्यीय विश्वास कहते हैं, स्मरणीय है। अपने एक भाषण में उन्होंने यह स्पष्ट कहा है कि नाट्य-भ्रान्ति का यह अर्थ कदापि नहीं है कि रंगमंच पर उपस्थित वन को वास्तविक वन समझ लिया जाय, परन्तु 'यह वास्तविक वन नहीं हैं' इस विचार का अनुलम्बन अपेक्षित है (Willing suspension of disbelief) दर्शकों की चेतना को भ्रान्ति के भुलावे में भटकाने का प्रयत्न तो नितान्त-अकलात्मक है।[१६९]

'अभिनव भारती' में गुप्तपाद ने इस भ्रान्ति की व्याख्या इस प्रकार की है— 'तत्र नाट्यं नाम लौकिकपदार्थव्यतिरिक्तं तदनुकारप्रतिबिम्बालेख्यसादृश्यारोपाध्यवसायोत्प्रेक्षास्वप्नमायेन्द्रजालादिविलक्षणं तद्ग्राहकस्य सम्यग्ज्ञानभ्रान्तिसंशयानवधारणानध्यवसायविज्ञानभिन्नवृत्तान्तास्वादनरूपसंवेदनसंवेद्यं वस्तु रस स्वभावमिति वक्ष्यामः।' अर्थात् नाट्यरस-स्वभाव तथा अलौकिक है और इसकी 'अनुकृति' अनुकरण, प्रतिबिम्ब, आलेख्य, सादृश्य, आरोप, अध्यवसाय, संभावना, स्वप्न, माया, इन्द्रजाल आदि से सर्वथा विलक्षण है—ऐसा समझना चाहिये।

शिवागम में परमशिव अपनी पराशक्ति द्वारा विश्व का उन्मीलन करके उसके अवलोकन में वैसा ही आनन्द लेते हैं जैसे कलाकार अपने नाटक के अभिनय में। यह सृष्टि ही 'नटराज' की लीला है जिसका उदय तथा अवसान उस परम कलाकार की इच्छा-विलास पर निर्भर है। क्रीड़ा-प्रिय बालक धूल के महल को बनाने तथा दूसरे ही क्षण उसे बिगाड़ने की क्रिया-प्रक्रिया में सहर्ष संलग्न रहता है; यही दशा लीलामय सृष्टि-नियन्ता की भी है :—

इह सरजसि मार्गे चञ्चलो यद् विधाता
ह्यगणितगुणदोषो हेतुशून्यत्वमुग्धः।

---

[१६९] The true stage illusion.........consists—not in the mind's judging it to be a forest, but in its remission of the judgement that it is not a forest. For not only are we never completely deluded, but to attempt to cause the highest delusion possible to beings in their senses sitting in a theatre, is a gross fault incident only to low minds.

सरभस इव वालः क्रीडितैः पांशुपूरै-
र्लिखति किमपि किञ्चित् तच्च भूयः प्रमार्ष्टि ॥

जोवन के लिए रूपक का प्रतीक सामान्यतः मानव-विचार का एक अंग हो गया है। महाकवि शेक्सपियर में इस 'प्रतीक' का बाहुल्य है—यह संसार ही रंगमंच है जिस पर मनुष्य अपने क्षणिक जीवन में कई पात्रों की भूमिका में अभिनय करता है; कभी गर्व से अकड़ते हुए चलता है और कभी उलझनों से विक्षिप्त होकर डगमगाता प्रतीत होता है; इसी बीच मृत्यु आती है और उसके स्वप्न बुद्‌बुद की भाँति छिन्न-भिन्न हो जाते हैं और वह स्वयं अनन्त की नीरवता में विलीन हो जाता है। 'टेम्पेस्ट' (Tempest) में 'प्रासपीरो' (Prospero) की प्रसिद्ध उक्ति इसी तथ्य की मार्मिक व्याख्या है—'हमारा खेल समाप्त हुआ और हमारे पात्र वायु में विलीन हो गये। इस स्वप्नवत् माया-मिरीचिका के समान ही हमारी गगन-चुम्बी अट्टालिकाएँ, विशाल भवन तथा देवालय, किंवहुना यह समस्त विश्व ही एकक्षण में अन्तर्धान हो जायगा और इसका एक चिन्ह भी अवशेष नहीं रहेगा'। परन्तु इस मायामय जीवन में आस्था रखकर ही मानव इसको सफल बनाता है; जीवन की सफलता के लिए मृत्यु-भय का स्थगन प्रायः आवश्यक है।

यही बात नाट्य-भ्रान्ति में भी होती है, अभिनय की सफलता नटों के कौशल तथा प्रेक्षकों की कल्पनात्मक सहकारिता पर निर्भर करती है। इसी सक्रिय सहकारिता की ओर कवि का प्रयास उन्मुख होता है। सार्सी (Sarcey) ने ठीक ही कहा है कि नाट्य उन सब साधनों का समुच्चय है जिनके द्वारा हम रंगमंच पर जीवन की अनुकृति उपस्थित करते हैं और बारहसौ प्रेक्षकों में सत्य की भ्रान्ति उत्पन्न करते हैं।[१७०] इसी ध्येय की सिद्धि के लिए कथानक के विभिन्न अंगों का समन्वय किया जाता है जिससे प्रेक्षकों का मन उस पर सदैव केन्द्रित रहे और उनकी जिज्ञासा उत्तरोत्तर बढ़ती जाय तथा उनको यह अवसर ही न मिले कि वे अभिनय से ध्यान अन्यत्राकृष्ट करके तर्कबुद्धि के वशीभूत यह मान बैठें कि जो कुछ वह देख रहे हैं वह खेल मात्र है।

---

१७० Dramatic art is the sum total by the aid of which, in the theatre we represent life and give to the 1200 people the illusion of truth.

अन्वितित्रय

इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए यूरोप में तीन अन्वितियों का विधान हुआ और इसके समर्थकों तथा विरोधियों में सदियों तक संघर्ष चलता रहा। ये अन्वितियाँ स्थान, समय तथा कार्य से संबंधित हैं। स्थान-अन्विति (Unity of place) का अर्थ है कि नाटक का सम्पूर्ण कार्य एक ही स्थान में केन्द्रित हो—यह नहीं कि पहला अंक एशिया में हो और दूसरा अफ्रिका में पहुँच जाय।

समय-अन्विति (Unity of time) का अर्थ है कि जितना समय नाटक के अभिनय में अपेक्षित है उतने ही समय में घटित घटना पर कथानक अवलम्बित हो; यह नहीं कि रंगमंच पर दो घंटे के अन्तराल में बीस वर्ष की घटनाओं का दिग्दर्शन कराया जाय।

कार्य-अन्विति (Unity of Action) का आशय है कि कथानक में एक-ही कथावस्तु हो जिसके विभिन्न अंग सजीव अवयवों की भाँति एक दूसरे से आवद्ध हों; इसका अर्थ हुआ दुःख तथा सुखजनक विरोधी तत्त्वों के संयोग तथा प्रसंगान्तर का पूर्ण बहिष्कार।

अन्वितियों का प्रारूप अरस्तू के काव्य-शास्त्र में उपलब्ध है, यद्यपि अरस्तू का आग्रह कार्य के एकत्व पर ही केन्द्रित है। कालान्विति का निर्देश आनुषंगिक है और इस संबंध में उन्होंने केवल इतना ही कहा है कि दुःखान्त नाटक सूर्य के एक ही आवर्तन (a single revolution of the sun) पर आश्रित रहता है। स्थान-अन्विति का स्पष्ट उल्लेख नहीं है यद्यपि यूनानी रंगमंच की यह विशिष्ट परम्परा हो चुकी थी। अरस्तू के बाद रोमन कला में यह नियम संहिता का रूप धारण करने लगा और इसका उग्र रूप नव-जागरण काल में अरस्तू के व्याख्याकारों की टीकाओं में प्रकट हुआ। इस काल में इटली के विचारक ही यूरोपीय नाट्य-शास्त्र के प्रवर्तक थे और इनका प्रयास इन अन्वितियों को दृढ़ तथा स्पष्ट करके उन्हें वैज्ञानिक नियमों का अटल रूप देने पर केन्द्रित हुआ। स्थान-अन्विति के समर्थक तो कथानक का महल से महल के बाहर तक की सीमा का अतिक्रमण मानने के लिय तैयार नहीं थे और आदर्श (ideal) कालान्विति की यह परिभाषा हुई कि अभिनय के समय (The time of performance, two or three hours) तथा वास्तविक घटना के समय में पूर्ण साम्य होना चाहिए।

परन्तु इसी काल में पश्चिमी यूरोप में राष्ट्रीय नाटकों का विकास हो रहा था, जिसका शैशवकाल 'चर्च' (Church) की छत्रछाया में समुचित समर्थन

प्राप्त कर चुका था। इस नये नाटक की एक विशेषता थी अन्वितित्रय की पूर्ण अवहेलना, जिससे अरस्तू के अनुयायियों का क्षुब्ध होना स्वाभाविक था। इस काल के प्रसिद्ध अंग्रेज समालोचक, 'सर फिलिप सिडनी' के तत्संबंधी उद्गार उल्लेखनीय हैं। उन्होंने अपने 'डिफेन्स अथवा एपालोजी' शीर्षक प्रसिद्ध निबंध में समसामयिक स्व-देशीय नाटकों की कटु आलोचना करते हुए लिखा है कि हमने प्रकृति तथा कला के सभी नियमों को तिलाञ्जलि दे दी है; हमारे रंगमंच पर एशिया एक ओर होता है और अफ्रिका दूसरी ओर और मध्य में अनेक राज्य तथा उप-राज्य, जिनके व्यापक क्षेत्र में हमारे कथानक का विस्तार होता है। फिर वही स्थल एक 'दृश्य' में उद्यान है, परन्तु दूसरे में समुद्रतट जहाँ तूफान में टूटा हुआ पोत जलसमाधिस्थ हो चुका है। यही उदारता कालान्विति के संबंध में भी पायी जाती है। नव वयस्क राजकुमार तथा राजकुमारी प्रेमासक्त होते हैं और दूसरे अंक में प्रणय-सूत्र में बँधते हैं और तीसरे में सन्तति-सुख से कृतार्थ होते हैं। इस बीच शिशु पानी की धार के समान बढ़ता है और विवाह योग्य होकर एक सुन्दरी का सर्वस्व होता है और नाटक के अन्त तक पिता होने के स्वर्णकाल की सविश्वास अपेक्षा करता प्रतीत होता है; यह सब काम अभिनय-कार्य के दो घंटे में समाप्त समझा जाता है। इसी प्रकार हमारे नाटक शुद्ध दुःखान्त अथवा शुद्ध सुखान्त नहीं, बल्कि दोनों के मिश्रितरूप या वर्ण-संकरमात्र हैं जिनमें राजा तथा ग्रामीण एक-दूसरे से हाथ मिलाते हैं और विवाह का मंगलगान मृत्यु के शोकगीति से संगम करता है (Matching hornpipe and funerals.)

इस कटु आलोचना के बावजूद नये नाटक का विस्तार हुआ और इसकी महत्ता की पराकाष्ठा शेक्सपियर के लब्धप्रतिष्ठ नाटकों में हुई। इसलिए १७ वीं शताब्दी के मध्य तक पहुँचते-पहुँचते क्लासिकी संहिता तथा स्वच्छन्दतावादी नाटकों का सीधा संघर्ष प्रकट हुआ। इस काल में इंगलेंड का राजदरबार तथा नव-लेखकसमुदाय फ्रांस की सांस्कृतिक मान्यताओं से अत्यधिक प्रभावित हुए और फ्रांस की 'अकादमी' (Academy) ने अन्वितियों का पालन इतना अनिवार्य कर दिया था कि प्रसिद्ध से प्रसिद्ध लेखकों के लिए भी उसकी अवहेलना खतरे से खाली नहीं थी। इसके साथही इंगलेंड में शेक्सपियर तथा एलिजाबेथ-युगीन अंग्रेजी नाटकों के समर्थक जागरूक थे और उस काल के प्रतिनिधि समालोचक, जान ड्राइडेन ने अपने प्रसिद्ध निबंध 'ड्रमेटिक पोयजी' में फ्रांसीसी मान्यताओं का खंडन करते हुए शेक्सपियर के अपेक्षाकृत उन्मुक्त नाटकों का प्रवल समर्थन किया और इस समर्थन का पर्यवसान लगभग एक सौ वर्ष बाद डॉ० जॉन्सन के

प्रसिद्ध 'प्रिफेस' में हुआ। जॉन्सन ने तर्क प्रस्तुत किया कि तीन अन्वितियाँ नाटक के लिए अनिवार्य नहीं, बल्कि आनुषंगिक नियम हैं और इनका विधान इस गलत धारणा पर आश्रित है कि प्रेक्षक नाट्यानुकृति को वास्तविक जीवन समझता है। तथ्य यह है कि ऐसा पूर्ण भ्रम कभी भी संभव नहीं है और पदे पदे प्रेक्षक को कल्पना का आश्रय अपेक्षित होता है। ऐसी हालत में यदि प्रथम अंक में वह कल्पना करता है कि रंगमंच ऐथेन्स है तो उसी नियम से दूसरे अंक में उसे सिसली मान लेना स्वाभाविक है। मानव-कल्पना के लिए स्थूल देशान्तर नगण्य है। इसी प्रकार मानव-कल्पना समय-प्रवाह की दासी नहीं, किन्तु स्वामिनी है और उसके लिए वर्षों की अवधि उतनी ही साधारण है जितनी कि अंकों का घंटे आध घंटे का 'अन्तराल'। शेक्सपियर के सुखान्त दुःखान्त तत्त्वों के संमिश्रण का समर्थन भी उनके दो तर्कों पर आधारित है—(अ) यदि नाटक जीवन की अनुकृति है तो उसमें सुख-दुःख का संयोग स्वाभाविक है। (ब) इस प्रकार के नाटक दर्शकों के नेत्रों को अश्रुप्लावित तथा हृदयों को तीव्र भावावेगों से अभिभूत करने में सफल हुए हैं और इनकी लोकप्रियता ही इनके कला-कौशल का सबल निकष है।

१९ वीं शताब्दी के समीक्षकों ने कलाकृति के एकत्व की समस्या को एक नये दृष्टिकोण से सुलझाने का सफल प्रयास किया। उन्होंने तर्क किया कि परम्परा-गत अन्वितित्रय कृत्रिम तथा मशीनी (Mechanical) हैं; परन्तु वास्तविक अन्विति आन्तरिक तथा सजीव (Organic) होनी चाहिए। कोलरिज के मतानुसार शेक्सपियर के महान् नाटक अपने आन्तरिक नियमों के वशीभूत होकर उसी प्रकार विकसित हुए हैं जैसे कोई वृक्ष आभ्यंतरिक क्रियाओं तथा प्रक्रियाओं के प्रभाव से विकास प्राप्त करता है। उनके प्रत्येक दुःखान्त नाटक में एक केन्द्रीय भाव होता है जो प्रत्येक बाह्य अवयवों को अनुप्राणित करते हुए उन्हें एक सूत्र में अनुस्यूत करता है, जैसे एक ही जीवन-तत्त्व वृक्ष के तने, शाखाओं, पत्तियों, पुष्पों तथा फलों में प्राण-रस के समान संचारित रहता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह व्याख्या भारतीय नाट्य-सिद्धान्त के अनुरूप है; क्योंकि यहाँ भी स्थायीभाव का एकत्व अनिवार्य है और विभाव तथा संचारी भाव विविध रूप से इसके पोषक होते हैं।

आज के विचारकों ने इन दो विरोधी भावों का समन्वय श्रेयस्कर माना है। प्रसिद्ध जर्मन समीक्षक लेसिंग (Lessing) ने 'अन्विति-त्रय' की मौलिक सार्थकता की व्याख्या करते हुए लिखा है कि यद्यपि यूनानी रंग-मंच की विशेषता

के कारण ही इनका उद्भव संभव हुआ और इनका पालन क्लासिकी नाटक का परम्परागत धर्म माना जाने लगा, तथापि इस नियन्त्रण से उन्होंने नाटक के कथानक को अनावश्यक तत्त्वों तथा प्रसंगों से मुक्त करके उसे ऐसा सरल रूप दे दिया कि देश, काल की प्रेरणा से प्रभावित होने पर भी उसमें विस्तार की न तो कोई गुंजाइश थी और न उसकी आवश्यकता ही प्रतीत हो सकती थी। एफ० एल० ल्यूकस (Lucas) ने 'ट्रेजेडी' की व्याख्या करते हुए लिखा है कि यद्यपि अन्वितियों का पालन एक अनिवार्य नियम की भाँति विहित नहीं किया जा सकता तथापि एलिजाबेथयुगीन नाटककारों की तद्विषयक स्वतंत्रता भी समीचीन नहीं मानी जा सकती। कथानक को कई वर्षों में फैलाने का अर्थ है उसके आवश्यक तनाव (Tension) तथा प्रभाव की तीव्रता का विनाश करना।[१७१] इसी तथ्य के समर्थन में 'इलियट' की प्रसिद्ध उक्ति का भी उल्लेख किया जा सकता है कि अन्वितियाँ भविष्य में नाटक के लिए वांछनीय मानी जाँयगी; क्योंकि उनके द्वारा प्रभाव की प्रगाढ़ता संभव होती है।[१७२] आधुनिक यूरोपीय नाटक के महारथियों, जैसे 'इब्सन' (Ibsen) तथा 'जी० बी० शा' (G. B. Shaw) ने अपनी प्रसिद्ध कृतियों में इस तथ्य का प्रायः पालन किया है।

अन्वितियों की अवहेलना करनेवालों में शेक्सपियर का प्रथम स्थान है, परन्तु इनके नाटकों का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उन्होंने परोक्षरूप से कथानक के एकत्व तथा समय की अन्विति का पालन भी किया है। जैसे 'मैकबेथ' का उत्तरार्ध लगभग १७ वर्ष की घटनाओं से संबंधित है और समय-विस्तार का सूक्ष्म रूपेण निर्देश भी है, परन्तु कथानक का प्रवाह निर्बाध होने से हमको इसका विशेष ज्ञान नहीं होता। 'ओथेलो' में तो भावसंवेग इतनी तीव्रगति से चलता है कि हमको नायक का नायिका में चरित्र विषयक

---

१७१ The modern dramatist seldom takes these Elizabethan liberties with time and place. The fascination of form has grown stronger; by spreading the action over years we feel that the tension of a piece is weakened and that the magic cauldron goes off the boil.

१७२ The unities have for me a perpetual fascination. I believe they will be highly desirable for the drama of the future......The unities do make for intensity.

सन्देह नितान्त निराधार प्रतीत होता है। इसी प्रकार 'अभिज्ञान शाकुन्तल' में दुष्यन्त तथा शकुन्तला के वियोग एवं पुनर्मिलन के बीच वर्षों का अन्तराल है, परन्तु कथा के प्रवाह में बहते हुए हमारी तन्मयी चेतना इसका अनुभव नहीं करती। इसीको 'द्विमुखीकालव्यवस्था (double time scheme) कहते हैं जिसका अर्थ है कि नाटक में 'समय' के दो रूप होते हैं—एक मनोवैज्ञानिक और दूसरा ऐतिहासिक। नाटक की सफलता का आधार पहला रूप है।

कालिदास तथा शेक्सपियर ने काल-अन्विति-भंग का आध्यात्मिक समर्थन भी प्रस्तुत किया है। 'अभिज्ञान शाकुन्तल' में प्रेमोद्भव शारीरिक है और इसके आध्यात्मीकरण के लिए पर्याप्त समय की आवश्यकता है जिससे पृथ्वीतल से उठकर उस प्रेम का स्वर्ग में पर्यवसान संभव हो। प्रेमोन्मेष नायिका के शारीरिक सौन्दर्य से होता है परन्तु उसका अन्त शकुन्तला के तपस्विनी रूप की अलौकिक आभा से संभव है। इस प्रकार यह प्रसिद्ध नाटक 'प्लेटो' की दार्शनिक प्रेम-साधना तथा 'दान्ते' (Dante) की धार्मिक भावना का सुन्दर भारतीय संस्करण है। यहाँ भी स्त्री-प्रेम प्रेमी के आध्यात्मिक उत्कर्ष का सबल साधन प्रस्तुत किया गया है। इसी प्रकार शेक्सपियर के 'विंटर्स टेल' (Winter's tale) में पूर्वार्ध तथा उत्तरार्ध के बीच सोलह वर्ष का लम्बा समय अपेक्षित है जिससे कथानक दो भागों में विभक्त हो जाता है; परन्तु इसकी आन्तरिक एकता अक्षुण्ण है; क्योंकि अकारण सन्देह के वशीभूत नायक का अपनी सती पत्नी को लांछन लगाकर दण्डित करना एक घोर पाप है जिसके लिए लम्बे प्रायश्चित्त की आवश्यकता है जिसमें उसका कलुषित हृदय शुद्ध हो जाय और वह अपनी दुःखाग्नि-पूत पत्नी के दया तथा प्रेम का उपयुक्त पात्र होने में समर्थ हो।

इसी प्रकार शेक्सपियर में 'ट्रेजेडी' के मध्य प्रहसनपूर्ण घटनाओं का समावेश भी प्रभाव के एकत्व में बाधक नहीं होता। प्रायः यह तर्क किया जाता है कि गम्भीर तथा हास्योत्पादक तत्त्वों का संयोग दर्शकों के असहनीय तनाव को कम करने के लिए होता है; क्योंकि देर तक गम्भीर दृश्यों के अवलोकन से मस्तिष्क थक जाता है और उसके बाद उस प्रभाव को आत्मसात् करने की उसकी क्षमता घटने लगती है। इसलिए कुछ क्षण का मनोरंजन इस जड़ता को दूर करता है और मन को गंभीर प्रभाव का पूर्ण अनुभव करने की उपयुक्त दशा में बदल देता है। इसीसे 'ट्रेजेडी' में प्रहसन-जनित मनोरंजन (Comic relief) न्यायसंगत है। परन्तु शेक्सपियर का प्रयोग इस बात का साक्षी है कि निम्नकोटि का प्रहसन भी गम्भीरतर घटना के साथ संयुक्त होकर उसकी गंभीरता तथा तिग्मता

को घनीभूत करता है। 'मैकबेथ' में डन्कन की नृशंस हत्या के बाद ही 'प्रकरी' रूप में 'पोर्टर सीन' आता है जिसमें एक साधारण द्वारपाल कल्पना करता है कि वह नरक का द्वाररक्षक है और विभिन्न व्यवसायों के ठगों का स्वागत करते हुए उन्हें यातना-गृह में प्रवेश करा रहा है। देखने में इस प्रहसन का गंभीर घटना से कोई मेल नहीं है और 'कोलरिज' ऐसे सूक्ष्मदर्शी समालोचकों ने भी इसे 'क्षेपक' माना है, परन्तु वास्तव में द्वारपाल का अभिनय विद्युत-प्रकाश की भाँति इस गूढ़ तथ्य का बोध कराता है कि वह प्रासाद-कक्ष, जहाँ ऐसी हत्या संभव हुई है, नरक से किसी भी अर्थ में भिन्न नहीं है। इसी प्रकार 'किंग लियर' में गम्भीर नायक तथा वाचाल विदूषक (Fool) की संगति 'ट्रेजेड़ी' तथा 'कामडी' के समन्वय का एक सुन्दर प्रतीक है; क्योंकि विदूषक का प्रत्यक्षतः सारहीन कथन सारगर्भित है और एक तीव्र बाण के समान नायक के क्षुब्ध हृदय पर चोट करके उसे तिलमिला देता है। इस प्रकार विदूषक नायक का अन्तःकरण माना गया है जो उसको अपने अविवेक का निरन्तर स्मरण दिलाता हुआ उसकी अग्नि-परीक्षा की रूपरेखा प्रस्तुत करता है जिसमें उसका सम्पूर्ण कलुष भस्म होता है।

इस प्रसंग में 'वालपोल' का प्रसिद्ध कथन उल्लेखनीय है कि मानव-जीवन विचारक की दृष्टि में 'कामदी' है परन्तु भावुक की दृष्टि में 'ट्रेजेडी' है : (Life is comedy to those who think and tragedy to those who feel)। इसका आशय है कि शोक तथा हास्य मूलतः एक दूसरे से संयुक्त हैं और दृष्टिकोण के अन्तर से हास्योत्पादक दृश्य भी करुणोत्पादक हो जाता है। बच्चों के पक्ष से कीड़ों को मारना मनोरंजक है, परन्तु कीड़ों के पक्ष से यह घातक व्यापार है जो शोक तथा शंका की सृष्टि करता है। प्रोफेसर 'निकल' (A. Nicoll) ने ठीक ही कहा है कि साहित्य के सभी सर्जनात्मक युगों में इन दोनों तत्त्वों का कला के सभी क्षेत्रों में संयुक्त रूप से प्रयोग हुआ है। यूनान के प्राचीन नाटककारों ने इनको सर्वथा अलग नहीं किया और एलिजाबेथयुगीन कलाकारों ने तो इनका बेखटक संमिश्रण किया है। यह सिद्धान्त कि ये दोनों मूलतः विरोधी तत्त्व हैं वास्तव में बाद की समीक्षा की उपज है।[१७३] 'प्लेटो' के

[१७३] The fact is that tears and laughter lie in close proximity. In all essentially creative ages the two have been freely used together in every kind of literary art. The Greek dramatists did not confine them to water tight compart-

'सिम्पोजियम' (Symposium) में सुकरात ने स्पष्ट कहा है कि 'ट्राजडी' के प्रसिद्ध कलाकार 'कामदी' के भी प्रसिद्ध प्रर्वतक हो सकते हैं; क्योंकि 'हर्ष' तथा 'करुण' मूलतः एक तत्त्व के दो बाह्य अंग हैं।

इस प्रकार यह सिद्ध है कि नाटक में विरोधी तत्त्वों का समन्वय सिद्धान्ततः अमान्य नहीं हो सकता; क्योंकि उससे प्रभाव के एकत्व (Unity of impression) की हानि नहीं होती। प्रभाव एकत्व ही वांछनीय है जिसका विधान हमारे यहाँ किसी एक स्थायीभाव की प्रधानता में निहित है; स्थायीभाव एक ही होना चाहिये यद्यपि विभिन्न संचारी भाव अनेक हो सकते हैं। सार्सी (Sarcey) ने ठीक ही कहा है कि प्रगाढ़ तथा स्थायी होने के लिए प्रभाव का एकत्व अनिवार्य है। प्रसिद्ध नाटककारों ने इस तथ्य को सदैव ध्यान में रक्खा है कि प्रेक्षकों के हृदयतल का स्पर्श करने के लिए यह आवश्यक है कि उसके केन्द्र-स्थल पर निरन्तर प्रहार हो और प्रभाव का घनत्व उसी अंश में संभव है जिस अंश में उसके एकत्व का विधान हुआ है।[१७४]

नाट्य के मुख्य अंग

नाट्य के मुख्य अंगों का स्थूल रूप से चार तत्त्वों के अन्तर्गत विवेचन संभव है—कथा या वस्तु, पात्र तथा भाषा और भाव। कथा या इतिवृत्त (Plot) की परिभाषा करते हुए अरस्तू ने कहा है कि यह कुछ घटनाओं का एक ऐसा संघात है जिसमें विभिन्न संघटक एक दूसरे से इस प्रकार संयुक्त होते हैं कि उनमें से किसी का भी परिवर्तन अथवा विलोपन सम्पूर्ण कथानक के रूपविपर्यय का कारण हो सकता है।[१७५] इसीको कोलरिज ने 'आरगैनिक यूनिटी'

---

ments; the Elizabethans freely mingled them. The doctrine that the two are fundamentally opposed is largely the development of later criticism:

१७४ To be strong and durable an impression must be single......the dramatic poets have felt that in order to sound the depths of the soul of an audience they must strike always at the same spot; the impression would be stronger and more endurable in proportion as it was unified.

१७५ The action imitated should be single and whole, in which the structural union is such that if any one of them is displaced or removed, the whole will be disjointed or disturbed.

अथवा सजीव एकत्व कहा है जिसकी उपयुक्त मीमांसा 'प्लेटो' के प्रसिद्ध कथन में प्रस्तुत है; जिसके अनुसार प्रबंध का रूप एक जीवित शरीर के समान होना चाहिए, जिसमें शीर्षस्थान, मध्यभाग तथा अधोभाग यथास्थान स्पष्ट हो तथा एक दूसरे का संयोग भी सजीव हो।[१७६] भारतीय शास्त्रियों ने भी कथानक का विश्लेषण इसी तथ्य को ध्यान में रखकर किया है, जो निम्नांकित 'तालिका' से स्पष्ट है :—

अर्थप्रकृतियाँ	अवस्थाएँ	सन्धियाँ
१. बीज	आरम्भ	मुख
२. विन्दु	यत्न	प्रतिमुख
३. पताका	प्राप्त्याशा	गर्भ
४. प्रकरी	नियताप्ति	विमर्श
५. कार्य	फलागम	उपसंहृति

इस प्रकार यह स्मरणीय है कि कथानक का प्रवाह निर्बाध नहीं होता। आरम्भ तथा फलप्राप्ति के बीच विघ्न का होना आवश्यक है जिससे संशय (Suspense) का आविर्भाव होता है और यह संशय मनोवैज्ञानिक दृष्टि से कथानक के लिए अत्यावश्यक है। इससे प्रेक्षकों की जिज्ञासा तीव्र होती है तथा नाटक के भावी क्रम के प्रति जागरूकता को प्रेरणा मिलती है। विघ्न का उद्भव विपक्षियों से अथवा परिस्थितियों से अथवा अप्रत्याशित दैवी घटना से संभव होता है, जैसे 'अभिज्ञान शाकुन्तल' में मुनि का शाप और मुद्रिका-स्खलन तथा 'रत्नावली' में सामुद्रिक तूफान। इस अप्रत्याशित तत्त्व से 'आश्चर्य' (Surprise) का सन्निवेश कथानक में होता है, जो नाटक का मुख्य अंग है और अरस्तू ऐसे वैज्ञानिक समीक्षक को भी इसे स्वीकार करना पड़ा है, यद्यपि 'काव्य-शास्त्र' में उन्होंने इतनी चेतावनी दे दी है कि यथासंभव आकस्मिक घटनाएँ भी युक्तिसंगत आभासित हों।

विघ्न के गर्भ से नाटक के मूल-तत्व; 'संघर्ष'। (Conflict) का जन्म होता है। शेक्सपियर के एक पात्र का कथन है कि प्रेमपथ सदैव कण्टकाकीर्ण रहता

---

[१७६] Every discourse must be organized, like a living being, with a body of its own, as it were, so as not to be headless or footless, to have a middle and members, composed in fitting relations to each other and to the whole.

है और इसमें निर्विघ्न फलप्राप्ति असंभव है। इसलिए हमारे यहाँ के सुखान्त-प्रधान नाटकों में भी संघर्ष कथानक की मूल प्रेरणा है। परन्तु पश्चिम के गम्भीर नाटकों में जहाँ मनुष्य के भयंकर भावावेशों का ताण्डव-नृत्य प्रत्यक्ष होता है, संघर्ष का रूप भी गंभीर तथा व्यापक होता है और कभी-कभी तो मानव तथा नियति का सीधा संघर्ष होता है जिसके फलस्वरूप नायक की भौतिक पराजय; किन्तु आध्यात्मिक उत्कर्ष संभव होता है। शेक्सपियर की त्रासदियों (Tragedies) में इस बाह्य संघर्ष के साथ-साथ आन्तरिक संघर्ष भी अपेक्षित है, जिसका अर्थ है नायक के हृदय में दो विरोधी भावों तथा विचारों का द्वन्द्व जिसका वर्णन करते हुए जूलियस सीज़र में 'ब्रूटस' ने कहा है कि मनुष्य के संकटकाल में अन्तश्चेतना की अवस्था ऐसे राज्य के समान हो जाती है जिसमें गृह-युद्ध चल रहा है; क्योंकि उदात्त भावों तथा विवेकहीन किन्तु अत्यन्त प्रबल भावसंवेगों का इसमें संघर्ष चलता रहता है और एक दुःस्वप्न की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। मनोविज्ञान के प्रभाव से यह अन्तर्द्वन्द्व त्रासदी की आत्मा घोषित की गई है और जर्मनी में प्रथम महायुद्ध के बाद ही एक ऐसे प्रकार की 'त्रासदी' का जन्म हुआ जिसमें अवचेतन की स्वप्नवत् तथा तर्कागम्य प्रक्रियाओं का विलास ही मुख्य ध्येय है। इसको एक्सप्रेशनिस्टिक (Expressionistic) नाटक कहते हैं जिसके विशिष्ट उदाहरण अमेरिका के प्रसिद्ध नाटककार 'यूजिनी ओनील' की कृतियों में उपलब्ध हैं। प्रधान कथावस्तु के साथ प्रासङ्गिक वस्तुओं का संयोग होता है जिसकी व्याख्या दश रूपक के प्रसिद्ध सूत्र में इस प्रकार है—'प्रासङ्गिकं परार्थस्य स्वार्थो यस्य प्रसंगतः' अर्थात् वह कथावस्तु जो दूसरे (मुख्य कथावस्तु) का प्रयोजन सिद्ध करते हुए स्वार्थसिद्धि भी प्राप्त करती है। इसके दो भेद—'पताका' तथा 'प्रकरी' अंग्रेजी के 'अन्डर प्लाट' तथा यपीसोड पर्याय माने जा सकते हैं।

मुख्य तथा प्रासङ्गिक कथावस्तुओं का योग अनेकत्व में एकत्व के नियम से प्रेरित होता है और इसका व्यापक तथा बहुमुखीरूप पश्चिम में शेक्सपियर की प्रसिद्ध कृतियों में उपलब्ध है। 'हैमलेट' तथा 'किंगलियर' में प्रासङ्गिक कथावस्तुएँ मुख्यकथा से अभिप्रेरित होती हैं और उसके साथही साथ विकसित होती हुई उसके विकास में सहायक होती हैं। दोनों के संयोग से वातावरण में एकत्व के साथ घनत्व का समावेश होता है तथा उनके प्रत्यक्ष या परोक्ष वैषम्य से मुख्य भाव का परिष्कार तथा तीव्रीकरण संभव होता है। 'हैमलेट' में 'लेयरटीज' (Laertes) की प्रतिशोधाभिप्रेरित त्वरिता नायक की निष्क्रियता पर प्रकाश

डालती है और 'लियर' में ग्लोस्टर की मूक सहिष्णुता 'लियर' की प्रचण्ड तथा निरन्तर उद्घोषित प्रतिक्रिया का रूप तीव्रतर करती है।

इसके साथही साथ मुख्य तथा प्रासङ्गिक कथावस्तुओं का योग दो विरोधी भावों का संघात हो सकता है जिनका समन्वय संतुलित जीवन-बोध के लिए अनिवार्य है। जैसे 'हेनरी फोर्थ', (भाग १) में मुख्य कथा राजनीतिक संघर्ष से ओतप्रोत है जिसके मुख्य पात्र 'हाटस्पर' (Hotspur) शौर्यजनित ख्याति के लिए जीवन के सभी साधनों तथा सुखों का बलिदान करने के लिए उत्सुक हैं। परन्तु प्रासङ्गिक कथा के मुख्य पात्र हास्यरसावतार, 'फाल्सटाफ' (Falstaff) हैं जो जीवन के समर्थक हैं और अपने कथनों तथा कार्यों द्वारा यह साग्रह घोषित करते हैं कि युद्धजन्य प्रतिष्ठा (Honour) का क्या महत्व जब सैनिक वीर या तो दिवंगत हो चुका है अथवा अंगभङ्गी के कारण उसका उपभोग करने में असमर्थ हैं। परन्तु इस विरोध का अर्थ यह नहीं है की प्रभाव के एकत्व में किसी प्रकार की हानि संभव है, क्योंकि राजनीतिक अराजकता तथा 'फाल्सटाफ' गुट की सामाजिक अराजकता एकही भाव के दो विभिन्न रूप हैं।

इसी प्रकार उनकी प्रसिद्ध कामदियों (Comedies) में प्रधान कथावस्तु प्रेम-व्यापार को ही जीवन-सर्वस्व घोषित करती है, परन्तु प्रासंगिक कथा के पात्र अथवा हास्य के प्रवर्तक पात्र, जैसे 'ऐज यू लाइक इट' के 'टचस्टोन' इस प्रेम-तन्मयता का विरोधी पक्ष दर्शाते हुए भावुकता की विवेकहीनता अभिव्यंजित करते हैं, परन्तु दोनों विरोधी तत्व वातावरण के एकत्व की पुष्टि करते हैं; क्योंकि प्रेमियों के आत्म-सुख की उत्कट अभिलाषा तथा अमुख्य पात्रों का 'खान-पान-आराम' का निरन्तर प्रयास एकही विशिष्ट उद्देश्य के दो भिन्न माध्यम हैं।

कथा या वस्तु के पश्चात् पात्रों का विवेचन आवश्यक है, जिनमें विशिष्ट स्थान नायक का होता है। भारतीय काव्य-शास्त्र में नायक-नायिका-भेद-प्रभेद तथा उनके गुण या अवस्थाओं का विशद तथा वैज्ञानिक विवेचन हुआ है। परन्तु पश्चिम में इस तरह का कोई उल्लेख नहीं है। अरस्तू ने अपने काव्य-शास्त्र में त्रासदी के नायक के संबंध में सामान्य रूप से कुछ विशेषताओं का उल्लेख किया है, परन्तु नायिका के बारे में तो यूरोपीय काव्य-शास्त्र में कोई भी विधान उपलब्ध नहीं है। इसी कारण भारतीय रूपक परम्पराबद्ध है, परन्तु पश्चिमी नाटक स्वच्छन्द, विकासशील और बहुमुखी है।

अरस्तू के काव्य-शास्त्र में नाटक-गत पात्रों की चार विशेषताओं पर आग्रह है—उदात्त भाव, उपयुक्तता, मानव-स्वभाव से अनुरूपता तथा संगति। उदात्त

भाव का अर्थ है कि विभिन्न वर्गीय पात्र यथाशक्ति उदार भाव से प्रेरित हों। उपयुक्तता का अर्थ है कि उनका गुण तथा व्यवहार उनके वर्ग तथा 'लिंग' के अनुसार हो, जैसे स्त्री में स्त्रीसुलभ गुण तथा पुरुषपात्र में पुरुषोचित गुण। बाद को इसकी व्याख्या करते हुए रोम के प्रसिद्ध समीक्षक 'होरेस' ने यह विधान बनाया कि विभिन्न अवस्था के पात्र—बालक, कुमार, युवा तथा वृद्ध—उस अवस्था के उचित, नैसर्गिक तथा परम्परा-विहित गुण या दोष से संयुक्त होने चाहिएँ। मानव-स्वभाव से अनुरूपता का आशय है कि उनकी बात-व्यवहार से यह प्रकट हो कि वे वास्तविक जीवन के स्त्री-पुरुषों के समान हैं। इससे सत्य की भ्रान्ति (illusion of truth) संभव होती है। संगति का अर्थ है कि पात्र का चरित्र विभिन्न अवसरों पर न्यायसंगत हो और यदि उसके व्यवहार में कोई परिवर्तन अपेक्षित हो तो उसका मूल-कारण स्पष्ट होना चाहिए। पात्र का अकारण परिवर्तन अरस्तू की दृष्टि में अमान्य तथा अकलात्मक है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि अरस्तू का विधान पूर्ण तथा व्यापक नहीं है; क्योंकि नाट्य तथा जीवन में अनेक लोग दुष्टभावना से प्रेरित होकर कार्यशील रहते हैं और आधुनिक मनोविज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि मानव-स्वभाव विरोधी प्रवृत्तियों का संघात है और एक ही व्यक्ति में बर्बरता तथा सभ्यता का समन्वय संभव है। मनुष्य के व्यवहार तर्क से परे हैं जिसके उदाहरण शेक्सपियर के 'ओथेलो' तथा 'हैमलेट' ऐसे प्रसिद्ध पात्र माने जा सकते हैं। परन्तु अरस्तू का चरित्र-संगति का नियम प्रभाव के एकत्व के लिए नितान्त आवश्यक है। नाटक में पात्रों का चित्रण कई माध्यमों से संभव है जिससे अनेक दिशाओं से उसके ऊपर प्रकाश पड़ता है। ये माध्यम हैं—पात्र का अपने तथा दूसरे पात्रों के विषय में कथन, दूसरे पात्रों का उस पात्र के संबंध में कथन तथा पात्र का कार्य एवं व्यवहार। इन सभी सूत्रों से प्राप्त सूचनाओं के गहन परीक्षण के बाद ही पात्र के संबंध में निश्चित धारणा बनाई जा सकती है।

चरित्र-चित्रण का एक विशिष्ट माध्यम 'स्वगत' भी है जिसमें कोई पात्र अपनी मनोगत भावना का उद्घाटन एक उच्छ्वास में करता है जो केवल प्रेक्षकों के श्रवण के लिए होता है। परन्तु इसको विशद एवं विकसित रूप शेक्सपियर की महान् कृतियों में आत्म-निवेदन (Soliloquy) के रूप में होता है जिसे हम पात्र के गूढ़तम भावों अथवा विचारों की मुखरित मीमांसा कह सकते हैं जिसके माध्यम से हृदय का अन्तर्द्वन्द्व दर्शकों के लिए द्रष्टव्य होता है। इसके लिए प्रेक्षकों का सान्निध्य अपेक्षित है जिससे वे पात्र के विश्वासभाजन मित्र बनने में समर्थ

होते हैं। पात्रों के स्वभाव वैषम्य (Contrast) द्वारा भी उनका रूप निखरता है। पात्रों की सजीवता उनके चरित्र-विकास पर निर्भर करती है; क्योंकि प्रत्येक सजीव वस्तु बाह्य अथवा आन्तरिक प्रभावों की क्रिया-प्रतिक्रिया के फलस्वरूप परिवर्तित होती है। 'अभिज्ञान शाकुन्तल' के नायक, नायिका वियोग-जन्य दु.ख से कायिक तथा मानसिक परिवर्तनों के वशीभूत आध्यात्मिक विकासोन्मुख होते हैं और अन्त तक उनके पार्थिव प्रेम का वासनांश पूर्णरूपेण धुल जाता है। शेक्सपियर इत्यादि प्रसिद्ध यूरोपीय नाटककारों में तो गतिशील पात्रों का निर्माण विकसित कला का प्रधान अंग ही हो गया है और 'हैमलेट', 'मैकबेथ', 'लेडी मैकमेथ' आदि बहु-विदित पात्रों की सजीवता का यही रहस्य भी है। इसी विशेषता के कारण शेक्सपियर के समीक्षकों ने प्रायः डेढ़ सौ वर्षों तक उनके प्रसिद्ध पात्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन बड़े मनोयोग से किया मानो वे नाटक के पात्र नहीं, बल्कि संसार के जीवित प्राणी हों और यद्यपि आज इस स्वच्छन्दतावादी समीक्षा का काफी विरोध तो रहा है तथापि चरित्र-अध्ययन की प्रमुखता अभी भी अक्षुण्ण बनी है।

इस प्रसंग में अरस्तू के प्रसिद्ध कथन का स्मरण होना स्वाभाविक है जिसके अनुसार नाटक में कथानक ही आत्मा है और पात्रों की महत्ता इसके बाद ही मान्य हो सकती है। वैसे तो नाटक के ये विभिन्न अंग हैं और प्रत्येक अपनी विशेषता रखता है तथा एक दूसरे का पूरक एवं सहायक है। घटनाओं द्वारा पात्र प्रभावित होता है, उसके विचारों तथा कार्यों में परिवर्तन होता है और वह प्रतिक्रियास्वरूप घटना-क्रम को 'स्वेच्छानुसार मोड़ना चाहता है। कथानक तथा पात्र की क्रिया-प्रतिक्रिया से ही नाटक गतिशील होता है और उसमें सजीवता विकसित होती है। परन्तु विभिन्न नाटकों में कथानक तथा पात्र का संबंध भिन्न रूप में प्रकट होता है, कहीं प्राथमिकता कथानक की प्रतीत होती है और कहीं इसका आभास पात्रों में मालूम पड़ता है। यूनानी तथा भारतीय नाटकों में जहाँ पात्र प्रायः ऐतिहासिक अथवा धार्मिक परम्परा से प्राप्त रहे और कथानक भी अपेक्षाकृत सामान्य थे, चरित्र-विश्लेषण अथवा प्रकाशन नाट्य का केन्द्र हो ही नहीं सकता था। हमारे यहाँ रस ही नाट्य की आत्मा रहा और नायक-नायिका तथा उनका प्रेम-व्यापार इस रस-निष्पत्ति के कारणमात्र अथवा माध्यम रहे, इसलिए उनका सामान्य रूप ही मान्य रहा। यूरोप में पुनर्जागरण काल इटली के 'चाणक्य' 'मैकियावेली' (Machiavelli) से प्रभावित रहा जिसके राजनीतिक दर्शन में मनुष्य के 'स्व' (Ego) पर ही विशेष आग्रह रहा और

इसका प्रतिबिंब हम 'मारलो' तथा' शेक्सपियर' के पात्रों में पाते हैं। परन्तु डॉ० जॉन्सन ने ठीक ही कहा है कि शेक्सपियर के पात्र विशिष्ट व्यक्तित्व के बावजूद मानव-जाति के प्रतिनिधि हैं। आज एक ओर तो फ्रायडवादी लेखक पात्रों का विवेचन ही नाटक का मुख्य ध्येय मानते हैं, परन्तु दूसरी ओर मार्क्सवादी लेखक तथा समीक्षक विभिन्न पात्रों को समाज की दो विरोधी शक्तियों (शोषक तथा शोषित) का प्रतोक होने का आग्रह करते हैं और समाजशास्त्रीय (Sociological) विचारधारा से प्रभावित लेखकों ने सिद्धान्ततः इसका अनुमोदन किया है। परन्तु कोलरिज ने ठीक ही कहा है कि नाटक का नायक प्रभावशाली व्यक्ति होते हुए भी मानव-जाति का 'प्रतीक' होता है और उसका महत्व सर्वदेशीय होता है।

'कथानक' तथा 'पात्र' के बाद नाटक की 'भाषा' पर संक्षिप्त विचार अपेक्षित है। नाट्य-भाषा के विभिन्न अंग हैं कथोपकथन, काव्यात्मक अंश तथा गीति इत्यादि। पूर्व तथा पश्चिम के नाटकों में उच्च तथा निम्नवर्ग के पात्रों के लिए भिन्न भाषाओं का विधान है—जैसे हमारे यहाँ उच्चवर्ग के पात्र संस्कृत में बोलते थे, परन्तु साधारण तथा निम्नवर्ग के पात्रों का माध्यम 'प्राकृत' तथा उनकी प्रान्तीय भाषा होती थी। शेक्सपियर में निम्न पात्रों की भाषा प्रायः साधारण गद्य है; परन्तु ऊँचे वर्ग के पात्र अतुकान्त पद्य (Blank Verse) का प्रयोग करते हैं। तथापि शेक्सपियर की व्यवस्था नियमबद्ध नहीं की जा सकती; क्योंकि उनके उच्चपात्र भी साधारणतया गद्य में ही बातचीत करते हैं, परन्तु भावातिरेक में गद्य से ऊपर उठकर पद्य में बोलने लगते हैं। गद्य भी बहुमुखी है—इसके निम्नतम स्तर पर विदूषक तथा भाणों (Clown) का ग्रामीण गद्य है, मध्य में तीव्र बुद्धिवाले कामदी पात्रों जैसे 'टचस्टोन', 'फालसटाफ' तथा 'रोजलिन' और बियेट्रिस (Beatrice) का परिष्कृत एवं वैदग्ध्यपूर्ण गद्य, और सर्वोच्च स्तर पर भावावेग से अनुप्राणित गद्य है 'शाइलाक' तथा 'हैमलेट' का। कथोपकथन (Dialogue) को भी नाटकीय (Dramatic) होना चाहिये और इसलिए यह कहा गया है कि इसका मुख्य काम है पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालना अथवा कथानक-क्रम के विकास की ओर स्पष्ट इंगित करना। इसके अतिरिक्त 'वक्रोक्ति-प्रधान कामदियों में—जैसे लिली (Lyly), कांग्रीभ (Congreve) तथा शेरिडन (Sheridan) को प्रसिद्ध कृतियों में—कथोपकथन इतना रोचक है कि उसका उक्ति-सौष्ठव आनन्द का एक स्वतंत्र माध्यम हो गया है; परन्तु इसकी स्वतंत्रता नाटक के लिए श्रेयस्कर नहीं है।

नाट्य में भाषा का मिश्रित रूप सामने आता है। इसमें कुछ अंश, जैसे

साधारण कथोपकथन, नाटकीय होता है, कुछ अंश, जैसे दूत द्वारा सूचना इत्यादि वृत्तात्मक होता है, परन्तु काव्यात्मक नाटय में अधिकांश गीतात्मक (Lyrical) होता है और यथास्थल गीतों का अलग से सन्निवेश भी होता है। परन्तु यह स्मरण रहे कि यह सभी नाटय के अंग हैं और इनका स्वतंत्र विकास नाटय-सिद्धान्त के प्रतिकूल हो सकता है। भारतीय नाटय में रस की प्रधानता होने के कारण गीतात्मक (Lyrical) तत्त्व नाटय का मुख्य अंग होता है, परन्तु वृत्तियों का विधान यह स्पष्ट करता है कि भावपरिवर्तन के साथ ही इस तत्त्व का रूप बदलता रहता है और भावों का ऊहापोह कथानक के उतार-चढ़ाव पर आश्रित है। इसी प्रकार स्वतंत्र गीति (song) भी कथानक से संबंधित होनी चाहिये; और यह संबंध अनुकूल वातावरण के विकास तथा कथानक के प्रवाह में निहित रहता है। कालिदास का 'अभिज्ञान शाकुन्तल' तथा शेक्सपियर के मुख्य नाटक इस कथन के सबल उदाहरण हैं। शेक्सपियर के छत्तीस नाटकों में इन काव्यात्मक तत्त्वों का नाटकीय रूप निरन्तर विकसित हुआ है और इस विकास-क्रम का अध्ययन एक रोचक विषय है, परन्तु गीतात्मक तत्त्व के आधिक्य तथा संघर्ष-तत्त्व के अभाव में नाटय नाटकीय काव्य (dramatic poem) की कोटि में आता है और शुद्ध नाटक की संज्ञा से वंचित होता है। महाकवि शेली का 'प्रोमिथ्यूज अनबाउण्ड' (Prometheus Unbound) तथा भवभूति का 'उत्तररामचरित' इसके उदाहरण हैं। 'उत्तररामचरित' में नायक का विघ्न, बाधा से संघर्ष नहीं दर्शाया गया है; उन्हें तो विभिन्न परिस्थितियों में रखकर करुणरस का पोषण किया गया है। इसे हम अरस्तू के शब्दों में नायकनिष्ठ अन्विति (Unity of the hero) कह सकते हैं जो नाटय की कार्यान्विति से निम्नतर मानी गई है। नाटय की कार्यान्विति दो विरोधी तत्त्वों के संघर्ष से विकसित, पल्लवित तथा पुष्पित होती है और उसके विभिन्न घटकों में कार्य-कारण का संबंध होता है। यही नाटयान्विति तथा महाकाव्यान्विति (Dramatic unity and epical unity or structure) का मुख्य अन्तर है। महा-काव्य में नायक के विभिन्न कार्यों तथा मनोदशाओं का वर्णन होता है, परन्तु नाटक का कथानक कई द्वन्द्वात्मक इच्छाओं का समन्वय होता है जिसमें अप्रधान पात्रों का योग भी विचारणीय होता है।

अभीतक हमने नाटय-शरीर का वर्णन किया है, परन्तु अब उसकी आत्मा का भी विवेचन कर लेना चाहिये। हमारे यहाँ नाटय की आत्मा रस है, जिसके मुख्य आधार स्थायीभाव, विभाव तथा अनुभाव हैं।

इसका अर्थ है कि हमारे यहाँ नाट्य में भावात्मक (Emotional or sentimental) पक्ष प्रधान है और यह विधान पश्चिम के विचारकों की दृष्टि में भी समीचीन है; क्योंकि वहाँ भी विशिष्ट नाटक भावपक्ष की प्रधानता पर ही आश्रित हैं। केवल 'कामदी' में बौद्धिक पक्ष का प्रभुत्व कभी-कभी प्रकट हुआ है; क्योंकि 'हास्य' रस होते हुए भी भाव या Sentiment का विरोधक तत्त्व है और इस रूप में भी शृंगार से हास्य का उद्भव तर्क-संगत है। शेक्सपियर की 'रोमान्टिक कामदी' में मुख्य पात्र तो प्रेम-व्यापार में इतने दत्तचित हैं कि उनको अपने व्यवहारों की हास्यास्पदता का कोई ज्ञान नहीं है. परन्तु हास्य-प्रेमीपात्र शृंगार के इस परोक्षरूप का उद्‌घाटन करने में प्रयत्नशील रहते हैं। 'जैसे 'ऐज यू लाइक इट' में विदूषक 'टचस्टोन'—जो सभी पात्रों के व्यवहारों का निकष है—दरबारी प्रेम-परम्परा का व्यंगानुकरण (Parody) करते हुए अपनी ग्रामीण नायिका से कहता है—'प्रेमी होने के नाते मुझे तुम्हारा हाथ चूमना चाहिये; परन्तु यह कैसे संभव है, उसमें गोबर लगा है तथा भेड़ों के दुहने से हथेली भी खुरदरी हो गई है'। नायिका—'रोजलिन'—स्वयं प्रेम में आकण्ठमग्न होने पर भी अपने प्रेमी को हास्य तथा व्यंग का निशाना बनाती है—'तुम प्रेमी होने का स्वांग करते हो, परन्तु प्रेम का कोई चिन्ह तुम्हारे व्यवहार से परिलक्षित नहीं होता; तुम्हारे बाल रूखे होने चाहिये, दाढ़ी बढ़ी हुई, जाकेट के बटन तथा जूतों के फीते भी खुले होने चाहिये। तुम कहते हो कि प्रेम-विरह तुम्हारी मृत्यु का कारण हो सकता है, परन्तु यह कोरी बकवास है। संसार लगभग छ हजार वर्ष पुराना हो चुका है और इसमें अनेक प्रेमी मरे हैं, दफन हुए हैं, और उन्होंने कोड़ों के भरण-पोषण की सामग्री भी प्रस्तुत की है; परन्तु प्रेम उनकी मृत्यु का कारण कदापि नहीं रहा है।' परन्तु इन नाटकों में शृंगार तथा हास्य एक दूसरे के पोषक हैं; ऐसे हास्य से शृंगार संतुलित एवं दृढ़ होता है।

बीसवीं शताब्दी में यथार्थवाद के विकास तथा विस्तार के साथ एक नये प्रकार के सामाजिक नाटकों का उद्भव हुआ है जिसको कालान्तर में 'विचार प्रधान नाटक' (Drama of ideas) की संज्ञा मिली और इसका मुख्य उद्देश्य था नाटकों को सामाजिक तथ्यों तथा मौलिक विचारों से अनुप्राणित करना। इसके मुख्य स्तंभ 'इब्सेन' (Ibsen). 'बर्नार्डशा' तथा 'गालसवर्दी माने जाते हैं; परन्तु 'इब्सेन' तथा 'गालसवर्दी' की सफलता विचारों को भाव-सिक्त करने पर निर्भर है और बुद्धिवादी 'शा' को भी अपने गम्भीर तथा तर्कपूर्ण विचारों को प्रहसन के अधिकृत करना पड़ा जिसके फलस्वरूप उनका विचार-गाम्भीर्य हास्य में विलीन हो गया और उनको दार्शनिक विदूषक की उपाधि मिली।

कई आधुनिक नाट्यकारों ने यथार्थवाद को नाट्यकला की अवनति का मुख्य कारण माना है। ईट्स (Yeats) इस युग के मूर्धन्य कलाकारों में हैं और उनकी यह दृढ़ धारणा थी कि यथार्थवाद का विकास नाट्य के अवसान का समकालीन है;[१७७] और सोमरसेट माम (Maugham) ने कहा है कि नाट्यकार को यह कभी नहीं भूलना चाहिये कि प्रेक्षक-समुदाय का बहुसंख्यक भाग सुशिक्षित बुद्धिजीवियों से निम्नतर स्तर पर स्थित रहता है। जो वस्तु इन प्रेक्षकों को एक सूत्र में बाँधती है वह ऐसे सामान्य विचारों (जैसे प्रेम, मृत्यु, भाग्य) और काव्य के मौलिक तत्वों की अभिव्यक्ति है जो भावों की कोटि में आते हैं।[१७८]

इस प्रकार भावान्विति (Emotional unity) नाट्य का प्राण है, परन्तु इसकी प्रगाढ़ता विरोधी तत्त्वों के सामंजस्य से पोषण प्राप्त करती है। किसी एक भाव की समस्त नाट्य में परिव्याप्ति एकरसता की जननी होती है। इसलिए 'दशरूपक'कार ने स्थायीभाव की परिभाषा देते हुए इसे समुद्र की उपमा दी है जिसमें खारा तथा मीठा इत्यादि विविध स्वाद का जल मिलकर तद्रूप हो जाता है:—

विरुद्धैरविरुद्धैर्वा भावैर्विच्छिद्यते नयः।
आत्मभावं नयत्यन्यान् स स्थायी लवणाकरः॥

शेक्सपियर के प्रेम-प्रधान कथानकों में हास्यरसात्मक 'पताका' के अतिरिक्त प्रेम के विविध रूपों के प्रतीक भिन्न स्वभाव के प्रेमी तथा प्रेम-व्यापार सन्निविष्ट हैं जिनके समन्वय से प्रेम का बहुमुखी रूप स्पष्ट होता है—उसकी प्रखरता, उन्माद, स्वच्छन्दता, अप्रत्याशित उद्भव, पवित्रता तथा तज्जनित सन्ताप, घुटन एवं विक्षिप्तता। जैसे, 'ट्वेल्फथ नाइट' (Twelfth Night) में 'आरसिनो',

---

१७७ Realism came in and every change towards realism coincided with a decline in dramatic energy.

१७८ The fact that the general mentality of an audience is so very much lower than that of its more intellectual members is a factor that the author must deal with......The only idea that can affect them when they are welded together in that unity which is an audience are those commonplace, fundamental ideas which are almost feelings. These, the roots of poetry, are love, death and the destiny of man.

'ओलिविया', 'वायला',' मौलवोलिवो' चारप्रेमी प्रधान कथा में हैं और इन सब के विपरीत प्रासङ्गिक कथावस्तु में 'सरटोवी' तथा 'मेरिया' का मूक प्रणय है।

अन्त में दो शब्द नाट्य तथा रंगमंच के सम्बन्ध में भी कह देना उचित होगा। संसार के प्रसिद्ध नाटक रंगमंच पर अभिनीत होने के लिए ही लिखे गये थे और अध्ययन-कक्ष के नाट्य (Closet play) नाट्य के वास्तविक अर्थ के अपवाद रूप हैं। परन्तु विश्व के महान् समीक्षकों का इस विषय में मत्यैक्य नहीं है। भरत मुनि ने नाट्य का सार अभिनय ही में निहित किया, परन्तु यूनान के 'प्लेटो' और 'अरस्तू' जैसे महारथी इस सिद्धान्त के विरुद्ध रहे और इनके पक्ष का समर्थन स्वच्छन्दतावादी नाट्य-प्रेमी समीक्षकों—'लैम्ब' (Lamb) तथा 'हैजलिट' (Hazlitt) इत्यादि ने किया। आज के पाश्चात्य नाट्य-शस्त्रीय तथा नाट्य-कला विशारद प्रायः भरतमुनि के समर्थक हैं और उनका कहना है कि नाट्य का उद्देश्य सामाजिक है और उसके प्रेक्षक भावात्मक एकत्व के वशीभूत होते हैं और तभी नाट्य का पूर्ण रस आस्वाद्य होता है। इस सामाजिक एकत्व में अत्यन्त जागरूक विवेकी प्रेक्षक ही अपनी वैयक्तिक चेतना का विलयन रोक सकता है। कवि तथा नट की संतुलित सहकारिता ही से नाट्य में निहित भाव का 'भावन' संभव है। इसका अर्थ है कि प्रधानता कवि के भाव की ही है और नट का मुख्य कर्तव्य है उस भाव को समझना तथा उसकी उपयुक्त व्याख्या करना। इस प्रकार नाट्य की सफलता एक ओर नट के कवि से तादात्म्य और दूसरी ओर प्रेक्षकों के अभिनीत कथावस्तु के तादात्म्य पर आश्रित होता है। नाट्य का रहस्य उसके साहित्यिक महत्व में निहित है; अभिनय द्वारा उस महत्व की अभिव्यंजना तथा प्रगाढ़ीकरण संभव है, परन्तु कोरे अभिनय से प्राप्त लोकप्रियता नाट्य का नित्य अंग कदापि नहीं हो सकती। 'लैम्ब' (Lamb) के तर्क में यह स्मरणीय तत्त्व निहित है कि नाट्य के गूढ़तम तत्वों का रहस्योद्‌घाटन अध्ययन-कक्ष के शान्त मनन-चिन्तन पर निर्भर करता है और उत्कृष्ट अभिनय भी इसके उद्‌घाटन के प्रयास में सफल नहीं हो सकता। परन्तु इसके साथ ही यह भी एक सर्वमान्य सत्य है कि ऐसी बारीकियों के साथ ही नाट्य में ऐसे तत्वों का समावेश अनिवार्य है जो अभिनय की सफलता में सहायक होते हैं। उत्तम नाट्यकार सफल कवि होने के साथ ही चतुर नट एवं जागरूक प्रेक्षक भी होता है, वह रंगमंच के स्वरूप का पूर्ण ज्ञान रखता है और लौकिक मनोविज्ञान का भी ज्ञाता होता है। इंगलैण्ड में उन्नीसवीं सदी के प्रसिद्ध कवियों के अनेक नाटकों की असफलता इस बात की द्योतक है कि कोरी कवित्व शक्ति सफल नाटक-

कार का सक्षम आधार नहीं हो सकती। रंगमंच का ज्ञान कवि को आगाह करता है कि नाटक का मुख्य प्रभाव आँख, कान के प्रभाव तथा हृदय के उतार-चढ़ाव पर निर्भर करता है और इसके लिए वस्तु की गतिशीलता के साथ प्रभावशाली वाचिक तथा आंगिक क्रियाओं का योग आवश्यक है।

नाट्य के भेद-प्रभेद

हमारे यहाँ रूपक के दस मुख्य भेद माने गये हैं, जिनका नामकरण 'दश रूपक' के एक प्रसिद्ध श्लोक में लिपिबद्ध है :—

नाटकमथ प्रकरणं भाणव्यायोगसमवकारडिमाः।
ईहामृगांकवीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश॥

इनके तीन भेदक हैं—वस्तु, नेता, रस। इसका स्पष्टीकरण २३८वें पेज की तालिका द्वारा बोधगम्य हो सकता है।

इनके अतिरिक्त अन्य भेद-प्रभेद भी किये गये हैं जिनका उल्लेख करना संभव नहीं है। हम केवल एक विशिष्ट प्रकार के नाटक का निर्देश मात्र कर देना चाहते हैं; क्योंकि ये मध्यकालीन यूरोप के 'मोरलिटी' नामक नाटकों (Morality Plays) से साम्य रखते हैं और प्रतीक-नाटक कहे जा सकते हैं। उदाहरण के लिए हम ११ वीं शताब्दी के कृष्ण मिश्र विरचित 'प्रबोध चन्द्रोदय' को ले सकते हैं, जिसका आशय धार्मिक है तथा अमूर्त भाव (Abstract qualities or powers) मूर्त्त तथा सजीव पात्रों के समान समाविष्ट हैं। 'मोरलिटी' नाटकों के समान यहाँ भी मानव-आत्मा पर अधिकार प्राप्ति के लिए दैवी तथा आसुरी शक्तियों का संघर्ष अपेक्षित है।

पश्चिम में नाटक के मुख्य भेद 'त्रासदी' (Tragedy) तथा 'कामदी' (Comedy) माने गये हैं, जिनका आरंभ में वस्तु, पात्र तथा भाव के आधार पर भेद किया गया था। 'त्रासदी' का मुख्य पात्र उच्चवंशीय असामान्य पुरुष होता था। कथानक गंभीर तथा शोक, संघर्षमय दुःखान्त, तथा भाव, करुण एवं भय होते थे। 'कामदी' में साधारण तथा निम्न कोटि के पात्रों द्वारा मनुष्योचित त्रुटियों तथा अवगुणों का अनावरण किया जाता था और मुख्य भाव हास्य होता था। दोनों तत्त्वों के संमिश्रण से एक तीसरे प्रकार का नाटक प्रसिद्ध हुआ जिसको 'ट्रैजी-कमेडी' (Tragi-Comedy) अथवा शोक-हास्ययुक्त सुखान्त कहते हैं। त्रासदी का विकृतरूप 'मेलोड्रामा' (Melodrama) हुआ जिसमें घटनाएँ विस्मय, भय तथा वीभत्सरसाकुल होती हैं तथा नायक और खलनायक का

नाम	वस्तु	नायक	रस	
१. नाटक	पंचसन्धियुक्त पौराणिक या ऐतिहासिक पाँच से १० तक अंक	धीरोदात्त	शृङ्गार या वीर	(कैशिकीवृत्ति).
२. प्रकरण	पंचसन्धियुक्त कल्पित ५ से १० तक अंक	धीरशान्त	शृङ्गार	(कैशिकी)
३. भाण	धूर्त चरित विषयक कल्पित एक अंक	कलावित् विट एक पात्र की उक्ति-प्रत्युक्ति	वीर तथा शृङ्गार	
४. प्रहसन	एकाङ्की कल्पित वस्तु	पाखण्डी, कामुक, धूर्त पात्र	हास्य	
५. डिम	पौराणिक, चार अंक	धीरोदात्त	हास्य तथा शृङ्गार के अतिरिक्त ६ रस	सात्वती तथा आरभटी वृत्ति
६. व्यायोग	प्रसिद्ध पौराणिक वस्तु गर्भ, विमर्श के अतिरिक्त तीन सन्धियाँ, एक अंक	धीरोदात्त, स्त्री-पात्रों की अधिकता	,,	,,
७. समवकार	देव-दैत्य संबंधीपौराणिकविमर्शरहित चार सन्धियाँ और तीन अंक	धीरोदात्त तथा धीरोद्धत १२ नायक	वीर रस	सात्वती तथा आरभटी वृत्ति
८. वीथी	कल्पित वस्तु एकाङ्की	श्रृंगारप्रिय नायक	शृङ्गार रस	कैशिकी
९. अङ्क	प्रसिद्ध पौराणिक वस्तु एकाङ्की	प्राकृत पुरुष	करुण रस	सात्त्वती
१०. ईहामृग	मिश्रित कथावस्तु, चार अंक, गर्भ, विमर्श रहित ३ संधियाँ	धीरोद्धत नायक	शृङ्गार रस	

संघर्ष अपेक्षित है। इसमें गंभीरता का अभाव होता है और मुख्य केन्द्र घटनाओं के विस्मयकारी परिवर्तनों में निहित होता है। इसी प्रकार 'कामदी' का विकृतरूप 'फार्स' (Farce) कहलाता है जिससे सर्वत्र हास्य का अतिरेक प्रत्यक्ष होता है। पात्रों के कार्यों तथा व्यवहारों में संगति का अभाव होता है और हास्य के स्रोत भी स्थूल, अशिष्ट तथा घटनावलम्वित होते हैं।

हमारे यहाँ संस्कृत नाटक का इतिहास परम्पराबद्ध है और उसके रूपों में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं हुआ, परन्तु पश्चिम में साहित्य के विविधरूप परिवर्तन-शील रहे हैं, जिसके फलस्वरूप उनके परिवर्तन-क्रम का पूर्ण ज्ञान न होने पर उनका स्पष्ट बोध असंभव है। इसलिए हम नाटक के मुख्य भेदों—'त्रासदी' तथा 'कामदी' का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करेंगे और दोनों के विभिन्न रूपों पर संक्षिप्त प्रकाश डालकर नाटक का विवेचन समाप्त करेंगे।

'ट्रेजेडी' अथवा 'त्रासदी' अथवा 'दुःखान्त' (Tragedy)

आधुनिक भारतीय समीक्षकों ने पश्चिम में 'त्रासदी' के विशिष्ट महत्त्व, परन्तु हमारे यहाँ उसके नितान्त अभाव की व्याख्या करते हुए प्रायः कहा है कि भारतीय दृष्टिकोण मूलतः आशावादी है और फल-प्राप्ति की सम्भाव्यता में उसका दृढ़ विश्वास होना स्वाभाविक है, परन्तु यूनानी लोग निराशावादी थे, इसलिए उन्होंने दुःखान्त नाटकों को ही प्रधानता प्रदान की। इस एक धारणा में बहुत सी भ्रांतियाँ सर्प-शिशुओं के समान एक दूसरे से गुथी हैं और उनका निराकरण करके ही हम आगे बढ़ सकते है। इस संबंध में निम्नांकित तथ्यों का स्मरण आवश्यक है :—

(अ) यूनानी अथवा पश्चिम के अन्य-देशीय लेखकों ने सुखान्त और दुःखान्त दोनों प्रकार के नाटकों में समान कौशल दिखलाया है। पश्चिमी नाटक-साहित्य के इतिहास में तीन स्वर्णयुग माने गये हैं—शुद्ध यूनानी काल (Hellenic period), ईसा के पूर्व पाँचवीं शताब्दी, जब 'एथेन्स' नगर-राष्ट्र (City state) अपने चर्मोत्कर्ष पर था और यूनानी नाटक का सर्वोत्तम विकास संभव हुआ; दूसरा सोलहवीं शताब्दी में महारानी एलिजाबेथ का युग; जिसमें महाकवि शेक्सपियर तथा उनके समसामयिक नाटककारों की प्रसिद्धि हुई और तीसरा, सत्रहवीं शताब्दी में फ्रांस के सम्राट लुई चतुर्दश और उनके महामात्य रिचल्यू का समय, जिनके संरक्षण में फ्रेंच रंगमंच चरमोत्कर्ष पर पहुँचा। इन तीन युगों में सुकरात की प्रसिद्ध उक्ति का समर्थन स्पष्ट है—कि जो प्रतिभा

दुःखान्त में सफल होती है वह सुखान्त में भी उसी प्रकार अपना प्रभुत्व प्रदर्शित कर सकती है। इसलिए दुःखान्त नाटकों के आधार पर निराशावाद का विधान न्यायसंगत नहीं है।

(ब) शोकपर्यवसायी (Tragic) तथा निराशावादी (Pessimistic) दृष्टिकोण मूलतः भिन्न हैं और उनका समीकरण नितान्त असंगत है। निराशावादी यह समझता है कि मानव-जीवन एक दुःखान्त नाटक है जिसमें सुख केवल 'प्रकरी' रूप में उपस्थित होता है, परन्तु उसके साथ ही वह मनुष्य को भी नियति के अधीन करके उसको स्वतंत्र इच्छाशक्ति एवं महत्व से रहित कर देता है। मनुष्य में निहित शक्ति तथा सहज गरिमा में अविश्वास ही निराशा वाद का मुख्य आधार है, परन्तु 'त्रासदी' मानवनिष्ठ होती है, यद्यपि ईश्वर में विश्वास अथवा अविश्वास इसके लिए गौण है। आई. ए. रिचर्ड्स ने तो यहाँ तक कहा है कि धार्मिक आस्था का लवलेश भी त्रासदी का विनाश कर सकता है। इसलिए यूनानी तथा शेक्सपियर के दुःखान्त नाटकों में, जहाँ पर कि दैवी तथा अतिमानवीय (Supernatural) तत्त्वों का समावेश हुआ है और कथानक में उसकी प्रेरणा भी परिलक्षित है, हमारे ध्यान का केन्द्र-विषय नायक ही है जो नियतिकृत विघ्नों से जूझता हुआ अग्रसर होता है, उसका शरीर क्षत-विक्षत तथा हृदय जर्जर हो जाता है और अन्त में वह मृत्यु का आलिंगन करता है; परन्तु शारीरिक पराजय में उसकी आत्मिक विजय निहित है और उसके साहस के अवलोकन से हमारे हृदय में मानवता के नैसर्गिक महत्व में विश्वास होता है और शोकाकुल होते हुए भी हम नतमस्तक नहीं होते हैं। कवि 'वर्ड्सवर्थ' ने अपने भावी विकास का उल्लेख करते हुए 'प्रेल्यूड' (Prelude) में लिखा है कि मैं उस शोक का चित्रण करूँगा जो दुःख नहीं, अपितु हर्ष का उद्भव करेगा (Sorrow which is not sorrow but delight) क्योंकि उससे मानव-चरित्र का औदात्य स्पष्ट होगा। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए 'जॉन कीट्स' ने संसार को 'आंसुओं की घाटी (Vale of tears) नहीं, अपितु आत्मिक निर्माण की घाटी (Vale of soul-making) कहा है, जिसकी व्याख्या करते हुए उत्कट आशावादी 'ब्राउनिंग' ने संसार की शोकमय परिस्थितियों को कुम्हार का चक्र माना है जिसपर मानव-आत्मा गीली मिट्टी के समान पड़ी हुई अन्त में उस प्याले का रूप धारण करती है जिसमें भरा हुआ 'मधु' ईश्वर के पान की वस्तु होता है। यही 'त्रासदी' का मौलिक 'विरोधाभास' (Paradox) है और इसीलिए उत्तम 'त्रासदी' एक दुर्लभ वस्तु है। इस तथ्य का विवेचन करते हुए

एक प्रसिद्ध नाट्य-मर्मज्ञ ने लिखा है, कि 'त्रासदी' में हमारे समक्ष असीम (Infinite) तथा ससीम (Finite) का पारस्परिक विरोध प्रत्यक्ष होता है। ये अतिमानवीय शक्तियाँ मानव-नियम अथवा तर्क के परे हैं; ये समस्त परिवार को बर्बाद कर सकती है; निर्दोष और उदारप्रकृति प्राणियों का अकारण विनाश कर सकती हैं तथा तुच्छातितुच्छ अपराध अथवा त्रुटि के लिए अप्रत्याशित दण्ड भी दे सकती हैं। परन्तु उनका सामना करनेवाला मानव भी अपने गौरव में उनका समानधर्मा प्रतिद्वन्द्वी प्रतीत होता है। इस मानव में मानवोचित त्रुटियाँ अथवा अपूर्णताएँ हो सकती हैं, परन्तु ये उसकी सहज गरिमा के ही द्योतक सिद्ध होती हैं। ऐसे नायक का अवलोकन करने से हमे प्रतीत होता है कि असाधारण होते हुए भी वह हमारे समान ही एक मानव है और प्रेक्षकों की मण्डली में बैठे हुए हम भी एक क्षण के लिए देवत्व के उच्च स्तर पर पहुँच जाते हैं।[१७९] इस प्रकार 'त्रासदी' जीवन-सुलभ यातनाओं तथा विषमताओं के तल को स्पर्श करती हुई मानव-स्वभाव की सहज गरिमा के प्रति आशान्वित रहती है। जिस दुःखान्त में इस प्रच्छन्न आशा का पुट नहीं रहता उसमें 'त्रासदी' का बाह्यांग ही रह सकता है, आत्मा का नितान्त अभाव होगा।

---

[१७९] In tragedy we are confronted by infinity and the finite, by the unseen pressure of unfathomable forces and by men. These forces, being infinite, have a power which far exceeds the power of humanity and they express themselves in ways which pass beyond the ordinary morality governing our-lives. They may bring a universal doom upon an entire house; they may permit the humanly worthy to perish......they may measure our death for faults which to our eyes seem either trivial or for which the individual cannot be held responsible.

Yet central upon the stage stands a man of such magnitude that we feel the infinite is being almost matched by the finite. This man may exhibit fault and be guilty of errors or even crimes; but their very presence serves to emphasize his humanity. Contemplating the hero, we regard, him as a man more grandly drawn than ourselves, yet still a man, and at the same time, set within a serried audience, we are for the moment transformed into gods."

A. Nicoll : *The Theatre and Dramatic Theory*. pp. 105-106

(स) डॉ० जान्सन ने ठीक ही कहा है कि नाट्य का विधान नाट्य के संरक्षकों द्वारा निर्णीत होता है (Drama's laws the Drama's patrons give); क्योंकि उनकी सन्तुष्टि तथा तृप्ति ही नाट्य का मुख्य उद्देश्य होता है। भारतीय काव्य तथा नाटक दरबारियों तथा कलाविद् राजाओं की छत्रछाया में अति काल तक विकसित होते रहे हैं और उनका चरम लक्ष्य रसिक 'सामाजिकों' का मनोरंजन तथा आनन्द रहा है। हमारे यहाँ श्रृङ्गार रसराज माना गया है और नायक-नायिका का भेद इसी सिद्धान्त पर आश्रित है। इस प्रकार प्रेम हमारे नाट्य की नाभि है और ऐसे नाटकों में प्रेमी के विरहजन्य संताप के बाद उनका पुनर्मिलन ही रस का पोषण करता है। संसार की सभी प्रेम-कथाओं की लोकप्रियता का यही कारण है और इस तथ्य के साक्ष्य रूप में हम आजकल के छाया-चित्रों का उल्लेख कर सकते हैं।[१८०] पश्चिम में भी इस प्रकार की व्यवस्था यूनानी नव-सुखान्तों (New-comedy) में प्रत्यक्ष है और इसीका विशिष्ट तथा परिष्कृत रूप रोमन सुखान्तों में पाया जाता है, जहाँ नायक, नायिका की प्राप्ति के लिए धूर्त भृत्यों, सहायकों तथा वेश्याओं का आश्रय लेता है। शेक्सपियर की 'रोमान्टिक कमेडीज' भी इसी सिद्धान्त की अभिव्यक्ति प्रस्तुत करती हैं और उनके 'ट्वेल्फ्थ नाइट' (Twelfth Night) का कथानक 'रत्नावली' से काफी साम्य रखता है और उनके 'रोमासों' (Romances) में पति-परित्यक्ता पतिव्रता पत्नियों का तपस्या तथा विरह के पश्चात् ग्लानिपूर्ण पतियों से पुनर्मिलन का आत्मिक सुख मुख्य प्रेरणा के रूप में विराजमान है। 'सिम्बेलिन' (Cymbeline) की 'आइमोजिन' (Imogen) तथा 'विन्टर्सटेल' (Winter's Tale) की 'हरमिआँन' (Hermione) शकुन्तला के समान

---

१८० रस की अनुभूति के लिए दो वस्तुओं की विशेष आवश्यकता होती है। पहिली है पार्थक्य और दूसरी है संयोग प्रथमतः वियोग, तदनन्तर संयोग······विरह-मिलन की माधुरी का जनक है। बिना विरह हुए क्या मिलन कभी आनन्ददायक हो सकता है? विप्रलम्भ के ऊपर कवि-जनों के आग्रह का यही रहस्य है।···इसलिए कालिदास ने विरह में आनन्दानुभूति की महिमा गाते हुए कहा है :—

स्नेहानाहुः किमपि विरहे ध्वंसिनस्ते त्वभोगा-
दिष्टे वस्तून्युपचितरसाः प्रेमराशी भवन्ति ॥"

पं० बलदेव उपाध्याय : भारतीय साहित्य शास्त्र१—पृ० ४९५

ही पति के अकारण सन्देह का शिकार होती हैं और अन्त में सन्तापाग्नि से तप कर उच्चतर आध्यात्मिक स्तर पर पुनर्मिलन का सुख प्राप्त करती हैं, यद्यपि शेक्सपियर ने कालिदास की तरह पतियों की निर्ममता का आच्छादन करने का प्रयास नहीं किया है। इस प्रकार पश्चिम में प्रेमाभिप्रेरित सुखान्त का भी अत्यधिक महत्व है और उनकी रचना भी उसी मूल भावना पर आश्रित है जो हमारे नाट्य का मुख्य आधार रही है। इसकी व्याख्या के लिए भारतीय आशावाद बनाम यूरोपीय निराशावाद की दुहाई व्यर्थ है। समस्त संसार में नाट्य-प्रेक्षकों का मनोवैज्ञानिक रूप प्रायः समान ही रहता है अन्तर केवल यही है कि अशिक्षित वर्ग की रुचि संस्कृत रसिकों से भिन्न होती है। यूनानी तथा एलिजाबेथयुगीन 'त्रासदी' का पोषण ऐसे प्रेक्षकों के द्वारा हुआ था जो स्वभावतः अहिंसात्मक तथा बीभत्स दृश्यों के प्रेमी थे; परन्तु जैसे ही नाट्य का क्षेत्र संकुचित होकर दरबारी सीमा में सिमिट गया नाट्य का केन्द्र मुख्यतः प्रेम-व्यापार, तज्जन्य संघर्ष, संताप तथा अन्तिम फल-प्राप्ति पर आश्रित हुआ। इस संक्षिप्त विवेचन के बाद हम 'त्रासदी' के स्वरूप तथा उसके बदलते हुए आधारों का सिंहावलोकन कर सकते हैं। यूरोपीय नाट्य के इतिहास में अरस्तू का वही स्थान है जो हमारे यहाँ भरतमुनि का है, यद्यपि भरत के 'नाट्य-शास्त्र' तथा अरस्तू के 'काव्य-शास्त्र' के कलेवर में वही अन्तर है जो भगवान् के विराट् तथा वामन रूपों में है। 'त्रासदी' की परिभाषा तथा तत्संबंधी व्याख्या में अरस्तू ने कुछ विशेषताओं का विस्तृत उल्लेख किया है। जैसे :—

(अ) 'त्रासदी' का कथानक कोई गंभीर तथा प्रभावशाली पौराणिक अथवा ऐतिहासिक घटना पर आश्रित होना चाहिये और इसके विभिन्न भागों में सजीव एकत्व होना आवश्यक है। कथानक संघर्ष से उत्पन्न होता है जिसमें नायक के प्रियजन ही प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से उसके संकट या अहित के कारण होते हैं। यह संघर्ष विकसित होकर चरम-विन्दु (Climax) पर पहुँचता है जहाँ प्रतिपत्ति (Recognition) तथा परिस्थिति-विपर्यय (Reversal of Situation) के साथ ही कथानक का प्रवाह एक निश्चित दिशा (Denovement) की ओर उन्मुख होता हैं जिसका पर्यवसान दुर्घटना (Catastrophe) में हो सकता है। कथानक का मुख्य भाग कष्ट, अंगभंगी तथा मृत्यु पर आश्रित रहता है, यद्यपि मृत्यु अनिवार्य नहीं है।

(ब) 'त्रासदी' का मुख्य उद्देश्य है भय तथा करुण का उद्दीपन तथा उनका शोधन और इसीकी पूर्ति के लिए एक विशिष्ट प्रकार के नायक का विधान होना

चाहिये; क्योंकि करुण का उद्भव ऐसे व्यक्ति के संकटावलोकन से होता है जिसका कष्ट अपराध की तुलना में अत्यधिक है और 'भय' का उद्रेक इस अनुभव से होता है कि नायक हमारे बहुत कुछ समान है, इस लिए उसकी विपत्ति हमारे ऊपर भी आ सकती है।

(स) इसलिए 'त्रासदी' का उपयुक्त नायक कोई उच्च श्रेणी का विशिष्ट व्यक्ति होना चाहिये जो न तो नितान्त निर्दोष तथा नेक ही हो और न एकदम क्रूर तथा दुष्ट प्रकृति का। उसकी विपत्ति किसी अभाव (Hamartia) तथा भ्रान्त्यात्मक निर्णय (False step wrongly taken) से उत्पन्न होती है और उसका कलेवर दोष की अपेक्षा अत्यधिक विशाल होता है।

(द) 'त्रासदी' की शैली गद्य, पद्य तथा संगीत से अलंकृत होती है और उसमें औदात्य के साथ ही प्रसाद गुण का होना आवश्यक है जो साधारण तथा असाधारण शब्दों के सुखद समन्वय से संभव होता है। अरस्तू के व्याख्याकारों ने कालान्तर में यह विधान घोषित किया कि त्रासदी का नायक कोई राजा तथा राजकुमार ही हो सकता है और मध्यकालीन यूरोप में, जब कि अरस्तू का 'काव्य-शास्त्र' अप्राप्य था, त्रासदी का मुख्य उद्देश्य महाराजाओं तथा शीर्षस्थ लोगों का पतन दिखलाते हुए मानव-कीर्ति, ऐहिक सुख तथा सम्पत्ति की असारता को सिद्ध करने में निहित था। इस समय भाग्य-चक्र की धारणा लोक-प्रिय थी और कालिदास के अनुसार ही इस समय के लोग भी विश्वास करते थे कि—

कस्यैकान्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा
नीचैः गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण।

इसमें विपत्ति चाहे आकस्मिक हो अथवा नायक के पाप का फल; परन्तु उद्देश्य उपदेशात्मक था, जिसकी व्याख्या करते हुए सरफिलिप सिडनी ने कहा है कि त्रासदी मनुष्य के गुह्यतम विकारों तथा घावों का निराकरण करती है और राजाओं तथा निरंकुश शासकों को यह दिखलाकर त्रस्त तथा संयत करती है कि उनके स्वर्ण-प्रासाद अत्यन्त निर्बल आधार पर आश्रित हैं।[१८१] इसके बाद हम यूरोप के नवजागरण काल में आते हैं जब अरस्तू का 'काव्य-शास्त्र' उपलब्ध हुआ

---

[१८१] Tragedy openth the deepest wounds and showeth forth the ulcers that are covered with tissue; that maketh kings fear to be tyrants, and tyrants manifest their tyrannical humours......teacheth the uncertainty of this world, and upon how weak foundations gilded roofs are builded.

और उनके इटालियन टीकाकारों ने अन्वितित्रय, शोधन-क्रिया इत्यादि की व्याख्या करते हुए इस सिद्धान्त का समर्थन किया कि त्रासदी का नायक कोई राजपुरुष ही हो सकता है। परन्तु त्रासदी का उदय तथा विकास इन नियमों के वशीभूत न रहकर दो मुख्य बातों से अत्यधिक प्रभावित हुआ—(अ) इटालियन राजनीतिक विचारक मैकिआवेली (Machiavelli) का व्यक्तिवाद (Individualism) तथा (ब) रोमन दार्शनिक सेनेका (Seneca) के रंगमंच-विमुख दुःखान्तों की लोकप्रियता, जिसमें रक्त-पात, हत्या, लोम-हर्षक घटनाओं, प्रेतात्मा की प्रतिशोध-भावना तथा आत्मिक उदासीनता अथवा स्थितिप्रज्ञता और गम्भीर वक्तव्यों का बाहुल्य था। इन्हीं तत्वों को लेकर एलिजाबेथयुगीन 'रोमान्टिक' त्रासदी का निर्माण हुआ जिसके मारलो (Marlowe) तथा किड (Kyd) प्रथम प्रवर्तक थे और शेक्सपियर सर्वाधिक प्रतिभाशाली पोषक। शेक्सपियर की त्रासदी के कुछ विशिष्ट तत्त्वों का उल्लेख आवश्यक है :—

(क) कथानक में वर्बर तथा अहिंसात्मक तत्त्वों का व्यापक सन्निवेश, जिसमें उन्माद तथा मनोविकार भी सम्मिलित है।

(ख) नायक या तो राजा या राजवंशी व्यक्ति है अथवा उसका स्थान समाज में अत्यन्त ऊँचा है जिससे उसकी मृत्यु का प्रभाव व्यापक होता है।

(ग) नायक का संकट उसके चरित्र की त्रुटि से उत्पन्न होता है और वह अभाव 'हैमलेट' तथा 'ओथेलो' की क्षम्य त्रुटियों से लेकर 'मैकवेथ' की पापमय महत्वाकांक्षा तक विस्तृत है। इसका अर्थ है कि शेक्सपियर तथा उनके समकालीन लेखकों के अनुसार त्रासदी का नायक नितान्त निर्दोष या अनैतिकता अथवा अमानुषिकता की कालिमा से कलंकित भी हो सकता है।

(घ) शेक्सपियर ने कथानक की प्रेरक शक्तियों में नियति, संयोग (Chance) घटना-चक्र तथा अतिमानुषिक (Supernatural) तत्त्वों का समावेश किया है, परन्तु उससे नायक के उत्तरदायित्व में कोई परिवर्तन नहीं होता।

(ङ) संकट का उद्भव दुर्भावना (Evil) से होता है चाहे वह नायक के हृदय में अंकुरित हो, अथवा खलनायक में निहित हो अथवा अति प्राकृतिक तत्त्वों जैसे प्रेतात्मा या जादूगरनी इत्यादि में मूर्तिमान हो। इस संकट में निर्दोष व्यक्ति भी नष्ट होते हैं, परन्तु दुर्भावना का अन्त कभी भी विजय में नहीं होता है। यह एक ध्वंसात्मक तत्त्व है जो आत्म-घातक भी है। शेक्सपियर में 'काव्यीय न्याय'

(Poetic justice) नहीं है और न बुराई के रहस्य तथा भलाई के अकारण संताप की व्याख्या। यह त्रासदी का तथा मानव-जीवन का दुःखपूर्ण रहस्य है।

(च) त्रासदी का प्राण-तत्त्व संघर्ष है जो शेक्सपियर में बाह्य तथा आन्तरिक दोनों रूपों में द्रष्टव्य है, परन्तु मनोवैज्ञानिक दृष्टि से नायक का आन्तरिक द्वन्द्व ही महत्वपूर्ण है; क्योंकि इसे नाट्यकार के गहन मानव-स्वभाव के अनुपम ज्ञान तथा सजीव चित्र-चित्रण के कौशल का पूर्ण पता चलता है और त्रासदी स्वयं मानव-जीवन की गंभीर व्याख्या हो जाती है।

अठारहवीं शताब्दी तक पहुँचते ही हमें प्रतीत होता है कि 'त्रासदी' का आधार बदल रहा है। इस समय लोकतन्त्र की भावना का उद्भव हो चुका था तथा अनेक विचारक इस बात पर आग्रह कर रहे थे कि हमारा वास्तविक संबंध साधारण मनुष्यों से ही हो सकता है; क्योंकि वे हमारे समान हैं और उनके सुख-दुःख में हमारी आत्मीयता सुलभ हो सकती है। यह विचारधारा लोकतान्त्रिक भावना के विकास के साथ ही व्यापक हुई और आज की 'त्रासदी' साधारण कोटि के व्यक्तियों को केन्द्र में रखकर ही सन्तुष्ट हुई है। इस प्रसंग में स्मरणीय बात यह है कि साधारण व्यक्तियों में भी इतनी आत्मिक गरिमा निहित हो सकती है कि संकट की अग्नि-परीक्षा में उनका आध्यात्मिक रूप विकसित होकर 'त्रासदी' के उद्देश्य की पूर्ति कर सकता है—उदाहरण के लिए हम 'सिंज' (Synge) के 'राइडर्स् टू द सी' (Riders to the Sea) तथा 'मेसफील्ड' (Masefield) के 'द ट्रजेडी आव् नैन' (The Tragedy of Nan) को ले सकते हैं। 'टामस हार्डी' ने अपने प्रसिद्ध उपन्यासों में यह सिद्ध कर दिया है कि देहाती पात्रों को लेकर भी इस तरह की 'त्रासदी' लिखी जा सकती है जो यूनानी दुःखान्तों के समान ही व्यापक तथा गम्भीर प्रभाव से युक्त है। आशय यह है कि साधारण मानव में भी महामानव के तत्त्व निहित होते हैं और जिस नायक में ये तत्त्व प्रत्यक्ष होते हैं वह त्रासदी का उपयुक्त पात्र होता है; परन्तु साधारण मनुष्य की विपत्ति तो दया उत्पन्न कर सकती है, 'त्रासदी' का हृदय-स्पर्शी, किन्तु स्फूर्तिमय भाव कदापि नहीं।

१९ वीं शताब्दी के जर्मन दार्शनिकों ने त्रासदी पर अपने विशिष्ट सिद्धान्तो के अनुसार गहरा विवेचन किया, जिनमें 'हेगेल' (Hegel), नीत्शे (Nietzsche) तथा शॉपेन हावर (Schopenhaur) के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं, परन्तु इन विवेचनों का साहित्यिक दृष्टि से कोई विशेष महत्व नहीं है। इसलिए 'हेगेल' के ही मुख्य विचार पर दृष्टिपात मात्र करके हम आगे बढ़ जायँगे।

'हेगेल' का विवेचन उनकी दार्शनिक व्यवस्था अर्थात् पक्ष (Thesis), विपक्ष (Anti-thesis) तथा उच्चतर समन्वय (Synthesis) पर आधृत है। त्रासदी में अच्छाई-बुराई का नहीं, किन्तु दो आंशिक शुभ शक्तियों का संघर्ष होता है और उनके विलोप से एक नये समन्वय का उद्भव होता है; क्योंकि सर्वोत्तम आध्यात्मिक सत्ता का प्रभुत्व सिद्ध हो जाता है। उदाहरण के लिए उन्होंने यूनानी नाटक 'ऐन्टीगोने' (Antigone) को लिया है जिसमें नायिका दो शुभ कर्तव्यों अर्थात् राजभक्ति तथा भातृ-प्रेम में से पहली का आलम्बन लेकर संघर्ष उत्पन्न करती है जिसके फ़लस्वरूप उसका विनाश होता है, परन्तु इसके साथ ही उस सार्वभौम (Cosmic) शुभ शक्ति की सत्ता दृढ़ होती है जिसमें वे दोनों आंशिक शुभ कर्तव्य समाहित हैं। यही 'त्रासदी' का आनन्द तत्त्व है। कालान्तर में 'त्रासदी' का रूप-परिवर्तन तीन विशिष्ट विचारधाराओं के प्रभाव से संभव हुआ—विज्ञान, समाज-शास्त्र तथा मनोविज्ञान।

(१) विज्ञान ने भाग्यवाद को अमान्य बतलाया, परन्तु मनुष्य की स्वतंत्रता को भी पंगु सिद्ध कर दिया। मनुष्य स्वतंत्र नहीं है, अपितु अपने संस्कारगत उपलब्धियों का दास है जो उसके सुख दुःख के निर्णायक हैं। जैसे 'इबसेन' (Ibsen) के प्रसिद्ध नाटक 'गोस्ट्स' (Ghosts) में एक संभ्रान्त स्त्री एक ऐसे व्यक्ति से विवाह करती है जो चरित्रहीन है। यह ज्ञान होते ही वह उससे अलग रहती है, परन्तु इसके पहले वह गर्भवती हो चुकी है। पुत्रोत्पत्ति के बाद वह नवागंतुक को पिता के संपर्क से सुरक्षित रखने का पूर्ण प्रयत्न करती है, परन्तु उसका सब प्रयत्न विफल हो जाता है; क्योंकि पुत्र में पिता का विकृत वीर्य मानसिक रोग का कारण हो चुका है। पुत्र की असहायावस्था, तज्जनित पीड़ा तथा मृत्यु से उसको भयंकर यातना होती है, परन्तु वह पिंजड़े में बन्द पक्षी के समान केवल फड़फड़ा सकती है; कारागार से उसकी मुक्ति असंभव है। इस प्रकार आनुवंशिकता (Heredity) भाग्य अथवा नियति से भी भयंकर शक्ति सिद्ध हुई है; क्योंकि यह मनुष्य-शक्ति का मूल-स्रोत ही विषाक्त कर देती है।

(२) समाजशास्त्र के अनुसार विभिन्न वर्ग के लोग—धनी तथा दरिद्र—अपनी स्वार्थसाधना में तल्लीन रहते हैं। दरिद्र मनुष्य सामाजिक परिस्थिति के वशीभूत हो कर अपराध करने पर विवश होता है और धनिकों द्वारा विहित न्याय-व्यवस्था के लौह-चक्र के नीचे वह पीसा जाता है। निर्बल मनुष्य के लिए भाग्य से संघर्ष करना आसान था, परन्तु समाज की जटिल व्यवस्था का विरोध करने का अर्थ है पत्थर की दीवाल पर शिर से प्रहार करना। इंगलैण्ड में इस सामाजिक

'त्रासदी' के मुख्य प्रतिनिधि 'गाल्सवर्दी' हैं जिनके नाटकों में समाज ने ही भाग्य तथा खलनायक या अशुभ तत्वों का स्थान ले लिया है और यही संघर्ष का उद्‌गम-स्थान भी है। पात्र सामाजिक वर्गों के प्रतिनिधि हैं और उनमें मनुष्योचित गुण अवगुण विद्यमान हैं और उनकी भाषा में भी साधारण बोल-चाल के सभी अंग वर्तमान हैं तथा यथार्थ का पुट स्पष्ट है, परन्तु न्यायसंहिता की अमानुषिकता तथा धनिकों की स्वार्थपरता से गरीबों का जीवन नारकीय हो जाता है। इस प्रकार न्याय का भव्य भवन निर्बल प्राणियों की सूखी हड्डियों पर आरूढ़ है और आज के समाज में धनिकों तथा दरिद्रों के लिए भिन्न न्याय-विधान है और धनिकों के प्रभाव से चालित न्याय-चक्र गरीबों के लिए घातक सिद्ध हुआ है और इस न्याय की विजय में निर्बलों की असंख्य वेदनाएँ सिसकी ले रही हैं।

(३) मनोविज्ञान ने उपर्युक्त तत्वों के अतिरिक्त 'अवचेतन' के नये तत्व का विधान किया और भाग्यवाद को इसी मानव-चेतना के गर्भ में स्थापित कर दिया। मनुष्य के सभी संघर्षों की मूल प्रेरणा इसी अवचेतन से उद्‌भूत होती है और आदिम अचेतन प्रवृत्तियों तथा सभ्यता द्वारा प्राप्त उदात्त विचारों का संघर्ष बराबर चलता रहता है। मनुष्य का दुःखान्त नाटक उसके हृदय ही में अभिनीत होता है और यह संघर्ष उस गृह-युद्ध के समान है जो बाह्य संघर्ष से बढ़कर प्रचण्ड तथा क्षयकारक होता है। मनौवैज्ञानिक त्रासदी का उत्कृष्ट उदाहरण 'वो नील' (O' Nielle) के नाटकों में उपलब्ध है। परन्तु इन नये दुःखान्तों में त्रासदी की मूल आत्मा का अभाव है। इसमें नायक स्वतंत्र सैनिक नहीं रह जाता, जिससे उसका संघर्ष तथा अवसान प्रेक्षकों में मानसिक स्फूर्ति तथा उत्साह उत्पन्न करने के बजाय उनको निराशा के गर्त में झोंक देता है। परिणाम यह होता है कि इनसे उत्पन्न शोक तथा करुणा मानसिक आनन्द के पोषक नहीं होते। यही दुःख-जनित आनन्द ही त्रासदी का मौलिक विरोधाभास है, जिसकी संक्षिप्त व्याख्या अपेक्षित है। हमारे यहाँ रस संबंधी दो विरोधी परम्पराएँ रहो हैं; एक के अनुसार रस सर्वथा 'आनन्दमय' है परन्तु दूसरी परम्परा रस को सुख-दुखमय मानती रही है। परन्तु पहली विचारधारा ही पाश्चात्य मत से साम्य रखने के कारण यहाँ विचारणीय है।

भरत तथा अभिनवगुप्त की रस-परम्परा के प्रसिद्ध समर्थक 'साहित्य-दर्पण'-कार कविराज विश्वनाथ ने घोषित किया कि 'हर्षैकफलं नाट्यम् न शोकादिफलम्। इसकी व्याख्या करते हुए उन्होंने बतलाया कि लौकिक दुःख नाट्य में अलौकिक हो जाता है; क्योंकि नाट्य में हम व्यक्तिगत स्वार्थों, कार्य-कारणादि नियमों तथा दैनिक प्रपंचों के ऊपर उठकर तटस्थ की भाँति शोकसंकुल घटना का अवलोकन करते हैं।

नायक में तादात्म्य स्थापित होने पर भी हम ऐसी साधारणीकृत मानसिक अवस्था में होते हैं कि लौकिक शोक आनन्द का ही कारण होता है और हमारे आँसुओं में खारापन नहीं; किन्तु मिठास आ जाती है, जैसे रति-क्रीड़ा में दन्त तथा नख-प्रहार भी आनन्द के पोषक होते हैं।* अरस्तू का मत भी उपर्युक्त मत से भिन्न नहीं है; क्योंकि उनकी 'कथारसिस' (Catharsis) लौकिक भय तथा करुणा में निहित दुःखांश के शोधन की क्रिया है, जिसको रेचन-सिद्धान्त से संयुक्त करके उनके व्याख्या-कारों ने एक ऐसी भूल-भुलैया का निर्माण कर दिया है कि सदियों तक समीक्षकवृन्द उसीमें चक्कर काटते रहे हैं और आज भी इस सिद्धान्त के शव का दफन नहीं हुआ है। काव्य-शास्त्र के आरंभ ही में 'अनुकरण' की व्याख्या करते हुए उन्होंने स्पष्ट कहा है कि जो वस्तुएँ लौकिक जीवन में असुन्दर तथा घृणात्मक मानी जाती हैं वही अनुकरण के चमत्कार से सुन्दर तथा आनन्दप्रद हो जाती हैं। वह नाट्य की साधारणीकरण-क्रिया के भी समर्थक हैं; क्योंकि काव्य का मुख्य अंग होने के कारण उसका ध्यान सामान्य भावों तथा पात्रों के जातिगत गुणों पर ही केन्द्रित रहता है। इसके अतिरिक्त अरस्तू का नाट्य-रूप-विधान भी विचारणीय है। नायक हमारे समान मनुष्य होते हुए भी असाधारण व्यक्ति होता है और उसका संघर्ष भी आसाधारण शक्ति से होता है। इस शक्ति से जूझते हुए वह अन्त में काल-कवलित होता है, परन्तु उसका आत्म-बल उस शक्ति का लोहा नहीं मानता है। संघर्ष-जनित संताप से उसकी आत्मा का विकास होता है, उसमें एक नई अन्तर्दृष्टि पैदा होती है। यही अरस्तू की प्रतिपत्ति (Recognition) का आध्यात्मिक पक्ष है। शेक्सपियर में भी भ्रान्ति-वशीभूत अपराधी नायक, जैसे 'मेकबेथ', इसी आत्मज्ञान का अनुभव करता है जिससे जीवन का प्रपंच उसे निःसार मालूम होता है और वह कहता है कि जीवन तो पागल के प्रलाप के समान है जिसमें शोरगुल तथा रोष-आवेश का बाहुल्य है, परन्तु उसमें कोई सार्थकता नहीं है (A tale told by an idiot full of sound and fury signifying nothing) 'त्रासदी' का आनन्द इसी दोमुखी प्रभाव पर आश्रित है जिसमें मर्त्य की निर्बलता के साथही नायक में

---

* बोध्यनिष्ठा यथास्वं ते सुखदुःखादिहेतवः।
बोद्धृनिष्ठास्तु सर्वेऽपि सुखमात्रैकहेतवः॥
अतो न करुणादीनां रसत्वं प्रतिहन्यते।
भावानां बोद्धृनिष्ठानां दुःखाहेतुत्वनिश्चयात्॥

—मधुसूदन सरस्वती

आत्मिक शक्ति का ऐसा संचार होता है जिसको कोई आधिभौतिक अथवा आधिदैविक शक्ति परास्त नहीं कर सकती। 'त्रासदी' का 'दुःखान्त' नाम भ्रामक है।

'कमेडी', सुखान्त अथवा 'कामदी'

जिस प्रकार 'त्रासदी' के करुण तथा भय मिश्रित रूप में स्थायीभाव हैं उसी प्रकार कामदी का स्थायी हास्य है; यद्यपि केवल हास्य ही 'कामदी' का पर्याय नहीं हो सकता। हमारे काव्य-शास्त्रियों ने हास्य की संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित व्याख्या प्रस्तुत की है यद्यपि इस तत्त्व की विस्तृत मीमांसा पश्चिम ही में पायी जाती है और वहाँ के समृद्ध 'हास्य साहित्य' की तुलना में हमारी हास्याभिप्रेरित कृतियाँ नगण्य मालूम होती हैं। हास्य-रस की व्याख्या करते हुए 'दशरूपक'कार ने लिखा है—

विकृताकृतिवाग्वेषैरात्मनोऽथ परस्य वा।
हासः स्यात्परिपोषोऽस्य हास्यस्त्रिप्रकृतिः स्मृतः॥

अर्थात् अपने अथवा दूसरे में आकृति, वाणी तथा वेष के विकार को देखकर हास्य की उत्पत्ति होती है। इसकी तीन प्रकृतियाँ तथा तीन भेद होते हैं। यह उत्तम, मध्यम तथा अधम तीन प्रकृति के होते हैं और इसके छः प्रकार भी हो सकते हैं—स्मित, हसित, विहसित, उपहसित, अपहसित तथा अतिहसित, जिनकी व्याख्या इस प्रकार है :—

स्मितमिह विकासि नयनम्, किञ्चिल्लक्ष्यद्विजं तु हसितं स्यात्।
मधुर स्वरं विहसितम्, सशिरः कम्पमिदमुपहसितम्॥
अपहसितं सास्राक्षम्, विक्षिप्ताङ्गं भवत्यतिहसितम्।
द्वे द्वे हसिते चैषा ज्येष्ठे, मध्येऽधमे क्रमशः॥

पश्चिम में भी हास्य के ये सभी रूप मान्य हुए हैं, परन्तु मुख्य प्रश्न यह है कि इन सभी प्रकार के हास्यों का मूल कारण क्या है, हम इन विकारों के देखते ही क्यों हसते हैं? यूरोप में इस प्रश्न पर एक लम्बा विवेचन हुआ है, यद्यपि विभिन्न विचारकों ने विभिन्न रूपों पर ही विशेष आग्रह किया है। फ्रायड्वादी वैज्ञानिकों ने स्थूल रूप से हास्य का कारण नियन्त्रित भावों की अकस्मात् मुक्ति (Liberation) माना है, जैसे स्कूल के बच्चे छुट्टी होते ही हर्ष से चिल्ला उठते हैं। इसी तरह 'फालस्टाफ' (Falstaff) की लोकप्रियता का मुख्य कारण यही बतलाया गया है कि उसकी संगति में हम सामाजिक नियन्त्रणों से मुक्त हो जाते

हैं। यही बात 'चार्ल्स लैम्ब' ने 'रेसटोरेशन' काल की कामदियों के बारे में भी कही है। कामदी की मूल-भूत प्रेरणा मनुष्य के नैसर्गिक स्वातंत्र्य प्रवृत्ति में निहित है जो पदे पदे समाज के नियमों से नियन्त्रित होती है। प्रसिद्ध फ्रांसीसी दार्शनिक बर्गसां (Bergson) के मतानुसार हास्य का उद्भव तब होता है जब मानव, जिसको हम स्वतंत्र प्राणी मानते हैं, किसी आदत अथवा सनक का दास हो जाता है और उसके वशीभूत यन्त्रवत् व्यवहार करता है। 'बेकन' (Bacon) के शब्दों में यह ज्ञानपरस्तों तथा किताबी-कीड़ों की मुख्य विचित्रता है। यह कहानी प्रसिद्ध है कि एक रसायन-शास्त्री ने अपनी स्त्री के अश्रु-प्लावित कपोलों को देखकर उनकी आँसुओं का विश्लेषण करने का प्रस्ताव किया था। कुछ अन्य दार्शनिकों ने असंगति को हास्य का मुख्य कारण माना है। असंगति का अर्थ है किसी वस्तु के विषय में दो भावनाओं का विरोध—जैसे शेक्सपियर के प्रसिद्ध पात्र, फ़ालसटाफ (Falstaff) विरोधी तत्त्वों का समुच्चय माने गये हैं। पदवी है 'नाइट' की परन्तु व्यवहार में भीरु हैं; बाल सफेद हैं परन्तु सुरा तथा सुन्दरी के प्रेमी हैं; शरीर भारी-भरकम तथा सुस्त है, परन्तु मस्तिष्क तलवार की धार के समान तीव्र है, सदैव जागरूक तथा स्फूर्तिमय। इस असंगति को प्रायः प्रत्याशित का विपर्यय (Defeat of the expected) कहा जाता है, अर्थात् किसी व्यक्ति के संबंध में जो धारणा हमारे मन में है उसके नितान्त विपरीत उसका रूप देखने में आता है—जैसे एक लम्बे पुरुष का नाटी स्त्री के साथ प्रकट होना; अथवा 'शा' के मेजर (Petkoff) का गुड़गुड़ी पीने का शौक तथा पत्नी की सहायता से सैनिकों पर अनुशासन का आरोप करने का प्रयत्न।

हास्य उत्तम, मध्यम तथा निम्नकोटि का होता है। निम्नकोटि का हास्य प्रायः बाह्य तथा स्थूल होता है और उसमें हम बिना सोचे-विचारे हँसते रहते हैं। इस प्रकार का हास्य प्रायः निम्नकोटि के सुखान्त अथवा 'फार्स' (Farce) में पाया जाता है, परन्तु उच्च वर्ग के सुखान्त में भी 'फार्स' का पुट होता है—जैसे, शेक्सपियर के 'ट्वेल्फ्थ नाइट' में 'सर टोबी' दो भीरु व्यक्तियों को मल्लयुद्ध के लिए उकसाता है और उनके हृदय-कंपन से मनोरंजन प्राप्त करता है; अथवा उसी नाटक में 'मालवोलियो' को उसके शत्रुओं द्वारा अपमानित अथवा हास्यास्पद करने का सफल प्रयास।

परन्तु 'जार्ज मेरडिथ' (George Meredith) ने ठीक ही कहा है कि उच्चकोटि की 'कामदी' विचार-जन्य हास्य उत्पन्न करती है (Excites a thoughtful laughter)। इस प्रकार का हास्य स्मित अथवा हसित की कोटि

में आता है। उच्च तथा निम्न हास्य तीनों मुख्य परिस्थितियों में पाये जा सकते हैं और इस प्रकार ये चारित्रिक, वाचिक तथा घटना संबंधी हो सकते हैं। पहले में पात्रों का व्यवहार कभी-कभी मुक्त हास्य का उद्भव करता है, परन्तु कभी केवल स्मित के रूप तक ही सीमित रहता है। इसी प्रकार वाग्विकृति जैसे 'मिसेज मालाप्रॉप' (Mrs. Malaprop) की शब्द-योजना मुक्त हास्य पैदा करती है, परन्तु किसी पात्र की विचित्र संलापशैली, जैसे 'तकिया-कलाम' का प्रयोग, केवल मन्द हास ही उत्पन्न करता है। यही बात परिस्थिति-जन्य हास्य के संबंध में भी है। शेक्सपियर के 'ए मिड समर नाइट्स् ड्रीम' में 'बाटम' के ऊपर गदहे का सिर रखना और परियों की रानी 'टिटैनिया' का उस पर आसक्त होना स्थूल या निम्न हास्य की कोटि में आते हैं, परन्तु परिस्थिति-जन्य व्यंग जिसे 'ड्रमेटिक आयरॉनी' (Dramatic or Comic irony) कहते हैं, विचाराश्रित तथा बौद्धिक (Intellectual) होता है। इस तरह का हास्य शेक्सपियर की 'कामदी' में भरा पड़ा है; क्योंकि प्रायः नायिका पुरुष का छद्मवेष धारण कर लेती है जिसका ज्ञान प्रेक्षकों को होता है, परन्तु पात्रों में, जिससे कि वह बात कर रही है, इस रहस्य की नितान्त अनभिज्ञता रहती है। नायिका जानबूझ कर ऐसा वाक्य कहती है जिसका कि हमारे लिए दो अर्थ होता है। जैसे 'मरचेण्ट ऑव् वेनिस' में नायिका 'पोरशिया' (Portia) जज का भेष धारण करके अपने पति के परम मित्र की रक्षा में उपस्थित है। उसका पति कहता है 'मेरे एक स्त्री है जो मुझे प्राण से भी अधिक प्यारी है; मेरी हार्दिक इच्छा है कि मरकर वह स्वर्ग में भगवान् से मेरे मित्र की प्राणरक्षा के लिए सक्रिय हो।' जजभेषधारी पत्नी तुरत उत्तर देती है, 'यदि आपकी स्त्री यहाँ होती तो इस इच्छा के लिए किंचिन्मात्र भी आपका आभार नहीं प्रकट करती।' हम जानते हैं कि पत्नी ही बोल रही है परन्तु पात्र को इसका ज्ञान नहीं है। 'त्रासदी' में यही नियति के व्यंग के रूप में प्रकट होता है जब कि कोई पात्र आसन्न विपत्ति की आशंका से रहित होने के कारण, जिसका कि हमें पूर्णज्ञान है, ऐसा व्यवहार करता है जो कि अतिमानवता की कोटि में आता है जैसे, 'जूलियस सीज़र' में नायक सिनेट-गृह में घोषित करता है कि सीज़र को चाटुकारिता से प्रभावित करने का अर्थ है पर्वत को अपने स्थान से हटाना। यह सुनकर हमारे मन में एक कटु हास्य का संचार होता है; क्योंकि हम जानते हैं कि षड्यन्त्रकारियों के खड्ग उसे मर्त्य सिद्ध करने के लिए प्रस्तुत हैं और उस पर मृत्यु की छाया पड़ चुकी है।

अपनी 'काव्य-शास्त्र'गत संक्षिप्त परिभाषा में अरस्तू ने कहा है कि कामदी का हास्य किसी विकृति के दर्शन अथवा ज्ञान से उत्पन्न होता है, परन्तु इसमें

कष्ट का लवलेश नहीं रहता; क्योंकि विकृति असुन्दर का अंग है किसी दोष का नहीं [१८२]। अर्थ है कि 'कामदी' को हास्य-पात्र विशेष को दुखी करने की भावना से मुक्त होना चाहिये। परन्तु सत्रहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध अंग्रेज दार्शनिक, हाब्स (Hobbes) ने कहा है कि हमारा हास्य दूसरों की हीनता से जनित आत्म-श्लाघा की भावना से उत्पन्न होता है। ऐसे हास्य में दुर्भावना का पुट अपेक्षित है। इन दो विरोधी हास्यभेदों को अंग्रेजी में 'ह्यूमर' (humour) और 'विट' (wit) की संज्ञा दी गई है। ह्यूमर (Humour) प्रचलित किन्तु अनेकार्थक शब्द है। मध्य-युगीन शरीर-विज्ञानी मानते थे कि प्रत्येक मनुष्य बाह्य जगत् का लघु रूप है और उसमें सभी बाहरी तत्त्व बीज रूप में विद्यमान हैं (Microcosm); जैसे चार महाभूत—क्षिति, जल, पावक, समीर (वह आकाश को इनमें शामिल नहीं करते थे) मानव-शरीर में चार तत्त्वों के रूप में निहित हैं जिनको हम ब्लड (blood), बायल (bile), फ्लेम (phlegm), मेलांकली (melancholy) कह सकते हैं। इनका पारिभाषिक नाम ह्यूमर (humour) हुआ और यदि इन चारों तत्त्वों का मिश्रण बराबर मात्रा में होगा तो व्यक्ति का स्वभाव संतुलित होगा, परन्तु किसी तत्त्व का आधिक्य समस्त व्यवहार को उसीके वशीभूत करके स्वभाव को एकाङ्गी बना देगा। जैसे रक्त के आधिक्य से मनुष्य का स्वभाव अति आशावादी होगा तथा पित्त (bile) का प्रभुत्व उसे क्रोधी स्वभाव का प्राणी बनायेगा। स्वभाव का यह एकाङ्गीपन जिस वैषम्य को जन्म देता है उसे भी ह्यूमर (humour) ही कहा जाता था। 'बेन जॉन्सन' ने अपने 'एव्री मैन इन हिज ह्यूमर' और 'एव्री मैन आउट ऑव् हिज ह्यूमर' में ह्यूमर शब्द का इसी अर्थ में प्रयोग किया है। इसके बाद इस वैषम्य से जनित हास्य की संज्ञा भी व्यापक अर्थ में 'ह्यूमर' ही हुई। परन्तु विशिष्ट रूप में 'ह्यूमर' उस हास्य को कहते हैं जिसमें हास्योत्पादक पात्र के प्रति सद्भावना रहती है; यह मित्रों का हास्य है जिसमें हँसनेवाला अपने को ही हास्य का पात्र बना सकता है; क्योंकि इसमें समत्व भाव मूलतत्व है जिससे हम दूसरों के साथ हँसते हैं, किसी के ऊपर नहीं। यह हृदय का अथवा

---

१८२ Comedy is an imitation of characters of a lower type—not, however, in the full sense of the term 'bad', the ludicrous being merely a subdivision of the ugly. It consists in some defect or ugliness which is not painful or destructive ......the comic mask is ugly and distorted but does not imply pain.

भावात्मक हास्य है। इसके विपरीत 'विट्' बौद्धिक हास्य है जिसमें हम दूसरों की त्रुटियों अथवा विकृतियों को अनावृत करते हुए उन्हें हास्यास्पद बनाते हैं। यह 'विट्' व्यंगात्मक चुटीले कथनों के रूप में प्रकट होता है और प्रत्येक कथन एक नुकीले बाण के समान होता है जो 'देखतको छोटो लगै घाव करै गंभीर'।' 'विट्' तथा 'ह्यूमर' का अन्तर बतलाते हुए 'प्रो० निकल' ने कहा है कि 'विट्' परिमार्जित तथा संस्कृत होती है, परन्तु 'ह्यूमर' में 'मन की वहक' का आभास रहता है, 'विट्' आधुनिकता से युक्त तथा शिष्ट कोटि के प्राणियों की विकसित चेतना से अनुप्राणित होती है, परन्तु 'ह्यूमर' प्रायः अर्ध-लोलुप दृष्टि अतीत की ओर भी घुमाता है और उसके कथन विनम्र होते हैं। 'ह्यूमर' से 'कामदी' में एक सुनहली आभा आती है, परन्तु 'विट' में चमक के साथ ही कठोरता तथा भावहीनता का मिश्रण स्पष्ट है[१८३]।

ऐसा कहा गया है कि 'कामदी' का शुद्ध हास्य संवेदना से परे होता है; क्योंकि संवेदना का मिश्रण सुखान्त को दुःखान्त में परिणत कर सकता है। जैसे कोई मोटा व्यक्ति एकाएक लुढ़क पड़ता है तो हमारी हँसी फूट पड़ती है, परन्तु इसके साथ ही यदि हमारे मन में यह भाव पैदा हो जाय कि उस व्यक्ति को चोट लगी होगी और उसका कोई अंग अव्यवस्थित हो गया होगा, तो हास्य के स्थान पर चिन्ता का प्रादुर्भाव होगा। इसलिए शेक्सपियर के कुछ पात्र, जैसे 'फाल्सटाफ', 'शाईलाक' तथा 'मालवोलिओ' हमारी संवेदना के पात्र हो गये हैं। इसके विपरीत हमारी एकान्त तटस्थता तथा पात्र से वैज्ञानिक बिलगाव उसको यन्त्रवत् बना देती है और उसमें सजीवता का नितान्त अभाव हो जाता है। यह बात 'वेन जॉन्सन' के अनेक पात्रों में पायी जाती है। इसलिये मृदु संवेदना का प्रच्छन्न प्रवाह इन पात्रों की सजीवता के लिए अनिवार्य है।

यूनान में 'त्रासदी' तथा 'कामदी' का जन्म सुरा-देवता 'डायोनिसियस' (Dionysius) की विभिन्न पूजा-उत्सवों से हुआ। 'त्रासदी' का पूजा-समारोह

---

[१८३] Wit is clear, refined and cultured, humour is whimsical. Wit is modern in its expression and aristocratic in its tone, humour has always some half-wistful glance at the past and is generally humble in its utterance. Humour gives always to comedy a mellowed note that stands in strange contrast to the hardness and insensibility of the play of wit, —*The Theory of Drama*: pp. 210-11.

आतंक, बर्बरता तथा हिंसात्मक व्यापारों से संयुक्त था, परन्तु देहाती क्षेत्रो में इस समारोह में भाग लेने वाले हमारे यहाँ के होली मनानेवालों के समान स्वच्छन्द तथा आमोद-प्रेमी होते थे। एक जुलूस में देव-लिंग को आगे रखकर वे नितान्त अशिष्ट रूप से गाते तथा हँसते हुए चलते थे और राहगीरों के साथ भद्दा मजाक करते हुए उन्हें उत्सव में सम्मिलित होने के लिए ललकारते थे। इस उच्छृङ्खल समारोह में 'कामदी' के मूल-तत्त्व जैसे—(अ) 'कामदी' की जीवन के प्रति आसक्ति, जिसका प्रतीक 'लिंग' था, (ब) 'कामदी' की सामाजिकता; क्योंकि हास्य या मनोरंजन समाज ही में संभव है, (स) 'कामदी' का सामाजिक नियन्त्रणों के विरुद्ध विद्रोह तथा (द) 'कामदी' का मनोरंजन विमुख प्राणियों के प्रति विरोध तथा निर्ममता, निहित थे।

इस 'कामदी' को कलात्मक रूप देने का श्रेय यूनानी हास्य-सम्राट् 'ऐरिस्टो-फेनीज' (Aristophanes) को है जिनके नाट्यों में समाजके अस्वस्थ तत्त्वों पर निर्मम प्रहार, यथार्थ (real) तथा अति-काल्पनिक घटनाओं का संमिश्रण तथा गद्य, गीतात्मक पद्य, निम्न कोटि का अश्लील कथन और तीव्र बौद्धिक हास्य मिल-कर एक विचित्र ढाँचा तैयार करते हैं, जिसका अस्पष्ट नमूना हमको 'जार्ज बर्नर्ड शा' के प्रसिद्ध नाटकों में मिल सकता है। कालान्तर में इस रूप का परिमार्जन हुआ, इसकी कटुता मिटी और प्रेम, स्वस्थ तथा विकृत, इसके केन्द्रमें आया और उसके साथ विभिन्न वर्ग के लोगों का विशिष्ट वैषम्य हास्य का केन्द्र हुआ। 'प्लॉटस्' तथा 'टिरेन्स्' (Plautus & Terence) की रोमन कामदियों में यही रूप प्रत्यक्ष है। इसके पश्चात् मध्यकालीन अन्तराल आया जिसमें पुरानी संस्कृति लुप्त हुई और नयी धार्मिक भावना का उद्भव तथा विकास हुआ। इस काल में कोई भी कहानी, जो दुःख या कठिनाई से आरम्भ करके सुख तथा कल्याण में पर्यवसित होती थी, 'कामदी' की कोटि में आती थी। इसके साथ ही लेटिन वैयाकरणों ने, जो इस काल में प्रसिद्ध थे, दो विशिष्ट प्रकार के सुखान्तों का उल्लेख किया है—एक में मुख्य कथा आदर्श-प्रेम में केन्द्रित होनी चाहिये और फल-प्राप्ति विघ्न-बाधाओं को आक्रान्त करने के बाद ही संभव हो सकती है। दूसरी में पात्र प्रायः मध्य-वर्गीय नागरिक होते थे और उनकी त्रुटियों तथा विकृतियों के माध्यम से हास्य का संचार होता था। इन्हीं दो रूपों का विकास ऐलिजाबेथ के स्वर्णयुग में संभव हुआ। आदर्श प्रेमोन्मुख सुखान्त के प्रसिद्ध प्रतीक शेक्सपियर में तथा व्यंगात्मक यथार्थवादी सुखान्त के नमूने 'बेन जॉन्सन' में पाये जाते हैं। शेक्सपियर का सुखान्त-संसार काल्पनिक तथा स्वर्णिम होते हुए भी यथार्थ के आधार से रहित

नहीं है। इसमें आदर्शवादी प्रेम के साथ ही उसका कटु आलोचक, हास्य, भी है। इसमें विरोधी तत्वों का सामंजस्य है—राजा तथा विदूषक, दरबारी तथा ग्रामीण, जीवन का उत्कट प्रेम तथा मृत्यु की स्पष्ट छाया, गीतात्मक काव्य, मधुर संगीत के साथ ही शुष्क, चमत्कारिक तथा बहुमुखी गद्य, हास्य तथा हास्यात्मक पात्रों का आश्चर्यजनक बाहुल्य जिसमें 'बॉटम' और 'डागबेरी' (Bottom & Dogberry) के अनैच्छिक और बेढंगे हास्य से लेकर 'टचस्टोन', 'फेस्टी', लियर के 'विदूषक' तथा हास्य-रसावतार 'फाल्सटाफ़' का विवेकजन्य तथा सूक्ष्मदर्शी और प्रभुत्वपूर्ण हास्य समाहित हैं। शेक्सपियर के सुखान्त इतने काव्यात्मक तथा संवेदन-सिक्त हैं कि 'हैजलिट' के कथनानुसार इन्हें शुद्ध 'कामदी' की संज्ञा नहीं दी जा सकती।

'बेन जॉन्सन' के सुखान्त इसके विपरीत हैं और उनके पीछे इस प्राचीन विश्वास की प्रेरणा है कि 'कामदी' यथार्थ जीवन से संबंधित होनी चाहिये, उसके पात्र साधारण हों और यथासंभव विभिन्न मानव-विकारों के प्रतीक। यहाँ प्रत्येक पात्र किसी 'ह्यूमर' का सजीव रूप है और उसके सभी व्यवहार उसीसे अनुशासित हैं; वातावरण मानव-विकृतियों से परिपूर्ण है और भाव तथा संवेदना का नितान्त अभाव है। बाद को चलकर 'बेन जॉन्सन' ने अपना क्षेत्र विस्तृत करके समाज के दोषों तथा गम्भीर कुरीतियों पर प्रहार करने का ध्येय निश्चित किया जिसके परिणामस्वरूप 'कामदी' में विद्रूपात्मक हास्य का प्रवेश हुआ, और उसका वास्तविक रूप ही बदल गया। इस प्रकार के 'आलकेमिस्ट' तथा 'वालपोने' (Volpone) ऐसे सुखान्त हैं जो 'त्रासदी' के निकटतम पड़ोसी हो गये हैं और इनमें लेखक के सहज गांभीर्य की स्पष्ट अभिव्यक्ति है। इस प्रौढ़ता के फलस्वरूप 'सर इपिक्योर मैमन' तथा 'वालपोने' ऐसे अमरपात्रों का निर्माण हुआ है जो मानवता की विशिष्ट प्रवृत्तियों की सजीव प्रतिमाएँ हैं।

इसके पश्चात् हम 'कॉमेडी ऑव् मैनर्स' (Comedy of Manners) पर आते हैं जो दरबारी, परिष्कृत तथा नैतिकता-निरपेक्ष दृष्टिकोण का अभिव्यंजक है और फ्राँस तथा इंगलैण्ड दोनों के हास्य-भावोत्कर्ष का सर्वोत्तम नमूना। इंगलैण्ड में चार्ल्स द्वितीय का शासनकाल बौद्धिक स्वातंत्र्य के साथ ही परम्परागत स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध के प्रति विद्रोह-भावना का स्वर्णयुग था और इसमें उस उत्तम सुखान्त के सभी उपकरण उपलब्ध थे जिनको 'जार्ज मेरिडिथ' ने अपने प्रसिद्ध विवेचन में 'कामदी' के लिए अनिवार्य माना है। उनके मतानुसार उच्चकोटि की 'कामदी' शिक्षित तथा संस्कृत समाज की उपज है जिसमें स्त्री तथा पुरुष पूर्णतया

स्वतंत्र तथा समकक्ष हैं और सामाजिक शिष्टाचार के नियम दृढ़ तथा सर्व-मान्य हैं, जिसके परिणामस्वरूप प्रकृति कला से नियंत्रित हो चुकी है और हृदय मस्तिष्क का प्रभुत्व स्वीकार कर चुका है। इस 'कामदी' का केन्द्र भी प्रेम ही है, परन्तु इस प्रेम की कुछ अपनी विशेषताएँ हैं—प्रथम तो यह प्रेम वैवाहिक नियमों की अवहेलना पर आश्रित है और विवाह स्त्री तथा पुरुष दोनों के लिए कारागार के समान हैं। दूसरे, यह प्रेम भावुकता से बिल्कुल निर्लिप्त है और इसकी अभिव्यक्ति 'आह' तथा 'रोमांच' द्वारा नहीं, अपितु व्यंग, तर्कपूर्ण विवाद तथा वाक्-चातुर्य के माध्यम से होती है जिसमें वक्रोक्ति, अनोखी तुलनाएँ एकदम मौलिक कथन तथा सटीक उपमाएँ टेनिस की चमकती गेंद के समान एक ओर से दूसरी ओर प्रक्षिप्त होती रहती हैं। यह स्त्री-पुरुषों का बौद्धिक मल्ल युद्ध (Duel) है जो उनके सांस्कृतिक समत्व का परिचायक है। चार्ल्स द्वितीय के दरबार से संरक्षित यह 'कामदी' उस समय के शिष्ट समाज का दर्पण भी है और उसका कलात्मक अनुकरण भी, अर्थात् सामाजिक वास्तविकता कला के माध्यम से शोधित तथा परिवर्द्धित हो चुकी है।

इस प्रकार 'कामदी' के अनेक रूप तथा प्रकार उपलब्ध हैं, परन्तु उनके पीछे एक मौलिक एकता है जो इसको 'त्रासदी' से अलग करती है। 'त्रासदी' में पुरुष की दूरदर्शिता तथा कठोरता है, पर 'कामदी' में स्त्री-सुलभ सहज ज्ञान है जो अपनी सुख की सामग्री अपने घर के आसपास ही पाने के लिए कृतसंकल्प है। 'त्रासदी' में मनुष्य अतिमानवीय शक्ति की चुनौती स्वीकार करके समराङ्गण में उतरता है, परन्तु 'कामदी' देवी-देवताओं को भी हास्य से रंजित करके मानव-स्तर पर उतार देती है। 'त्रासदी' का अवसान 'मृत्यु' में होता है और 'कामदी' का प्रेम-मिलन तथा प्रणय-संस्कार में। 'त्रासदी' का दृष्टिकोण आध्यात्मिक होता है और 'कामदी' का सामाजिक; इसीलिये पहली का महत्व सार्वभौमिक है, परन्तु दूसरी समाज तथा जाति की सीमा में बद्ध रहती है। 'हास्य' स्त्री-सौन्दर्य के समान ही परिवर्तनशील तथा विभिन्न जाति की विचित्र रुचियों पर आश्रित होता है।

श्रव्य-काव्य

श्रव्य-काव्य के दो स्थूल भेद किये जा सकते हैं—(अ) कथनात्मक (narrative), (ब) गीत्यात्मक (Lyrical)। यह विभाजन 'सर्गबद्ध' तथा 'मुक्तक' से अधिक वैज्ञानिक ज्ञात होता है। कथनात्मक काव्य में कवि किसी प्रसिद्ध कथा का वर्णन स्वयं अथवा पात्रों के माध्यम से सम्पन्न करता है। इसका

सर्वोच्च रूप महाकाव्य (epic) है जो समस्त जातियों में प्राचीनतम, बृहत्तम तथा उच्चतम काव्य-भेद माना गया है यद्यपि अरस्तू ने अपने काव्य-शास्त्र में कला की दृष्टि से 'त्रासदी' को 'एपिक' से उच्चतर सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। महाकाव्य का उदय समाज के शैशव-काल में होता है जब देवतुल्य राष्ट्रीय वीर समाज के अंग रहते हैं और उनके आदर्श पर ही मानव-व्यवहार आश्रित रहता है। प्रायः ऐसे वीरों के जीवनकाल ही में उनकी गाथा कथा-वाचकों तथा चारणों के माध्यम से देश के एक कोने से दूसरे कोने तक प्रसिद्ध हो जाती है। वाल्मीकि रामायण के लव और कुश राम-गाथा के प्रथम गायक माने गये हैं और यूनान में तो 'होमर' की वीर-गाथाओं को अभिनयात्मक प्रवचन तथा गान द्वारा जनता में हृदयस्थ करने की परम्परा बहुत दिनों तक प्रचलित थी। ऐसा माना जाता है कि अति काल तक ये कथाएँ विभिन्न कथा-वाचकों की परम्परा द्वारा मौखिक रूप में पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलती हुई जन-मन का मनोरंजन करती रहती हैं और अन्त में कोई प्रतिभाशाली लेखक इनको व्यवस्थित करके लिपि-बद्ध करता है। यूरोप में ऐसे महाकाव्यों को 'विकसित' महाकाव्य या 'एपिक ऑव् ग्रोथ' कहते हैं। इससे भिन्न कलात्मक महाकाव्य होते हैं जो किसी एक कलाकार की प्रतिभा तथा कौशल की उपज होते हैं। यूरोप में 'होमर' (Homer) तथा रोम के राष्ट्र-कवि 'वर्जिल', क्रमशः इन दोनों के मुख्य प्रवर्तक माने गये हैं। पहले में प्राकृतिक सरलता, सौन्दर्य तथा सहज भाव-विलास एवं भावाभिव्यक्ति होती है, परन्तु दूसरे प्रकार के महाकाव्य में कला का सबल सहयोग होने के कारण साधारण से साधारण अंग भी कवि-कौशल से अछूते नहीं रह सकते।

महाकाव्य की विशेषताएँ प्रायः सभी देशों में एक समान हैं और उनका अन्तर नगण्य तथा अविचारणीय है। इसकी कथा पौराणिक तथा परम्परागत होती है जो किसी प्राचीन प्रेम तथा युद्ध से सम्बन्धित होती है, परन्तु वह प्रेम और युद्ध राष्ट्र की धार्मिक तथा सांस्कृतिक मान्यताओं से सम्बन्धित होता है। इसलिए प्राचीन महाकाव्य ऐतिहासिक, नैतिक, धार्मिक तत्त्वों के आगार होते हैं और भविष्य की अनेक पीढ़ियों का जीवन उनसे उपलब्ध आदर्शों से प्रेरणा प्राप्त करता रहता है। अरस्तू के कथनानुसार 'एपिक' में भी एक ही मुख्य कथा होती है, परन्तु उसका कलेवर प्रासंगिक कथाओं द्वारा सहयोग पाता हुआ उत्तरोत्तर बढ़ता है।

इसका कथानक एक मन्दगामी सरिता के समान है जिसमें विभिन्न स्थलों पर सहायक नदियाँ मिलकर इसकी जल-राशि तथा विस्तार में वृद्धि करती

रहती है। यह विशाल कथानक कई सर्गों में विभक्त होता है यद्यपि अरस्तू के अनुसार इसमें एक ही छन्द का प्रयोग होना चाहिये। अरस्तू ने यह भी कहा है कि 'त्रासदी' का संबंध सूर्य के एक आवर्तन से होता है, परन्तु महाकाव्य में समय की सीमा नहीं है। इसके अतिरिक्त 'त्रासदी' अभिनयाश्रित होने के कारण केवल वर्तमान ही पर आधृत होती है; क्योंकि भूतकाल के व्यक्ति तथा घटनाएँ भी हमारे प्रत्यक्ष ही अवतरित होते हैं। परन्तु महाकाव्य की कथनात्मक विधि (Technique) वर्तमान से अतीत और फिर भविष्य की ओर सहज ही दृष्टिपात करने के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई है। इसी कारण महाकाव्यकार को भिन्न-भिन्न एककालिक घटनाओं का उल्लेख करने का भी अवसर होता है। इसी विधि को आजकल के छायाचित्रों में प्रधानता मिली है; जिससे निकट तथा दूर की घटनाओं का प्रायः एकसाथ ही दिग्दर्शन संभव है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि महाकाव्य का नायक महामानव होता है जिसमें जाति के सर्वोच्च गुणों तथा आदर्शों का समावेश होता है। 'होमर' ने अपने वीरों के लिए 'देव-तुल्य' (Divine) विशेषण का प्रयोग किया है, जिसकी उपयुक्तता तीन बातों पर आश्रित है—(अ) उनमें अधिकांश देव-अंशों से पैदा हुए हैं और (ब) उनमें तथा देवताओं में बहुत कुछ साम्य है, (स) वे देवताओं की सहायता कर सकते हैं और उनके विरुद्ध लड़ भी सकते हैं। पुराने महाकाव्यों में मानवीय तथा अतिमानवीय तत्त्वों का मिश्रण है और इसीकारण यूरोप में बहुत दिनों तक इस अतिप्राकृतिक तत्त्व का प्रवेश महाकाव्य की सर्वमान्य परम्परा रहा है जो 'डिवाइन मैशिनरी' (Divine machinery) के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वैसे तो महाकाव्य वीर-रस प्रधान होता है, परन्तु इसमें शृंङ्गार आदि अन्य रसों का समावेश भी प्रत्यक्ष है और इसी प्रकार काव्य के अन्य अंग जैसे नाटकीय कथोपकथन, ऋतु या प्रकृति-वर्णन, गीतात्मक भावाभिव्यक्ति इत्यादि भी समाविष्ट होते हैं। इसी तरह इसकी शैली भी बहुमुखी होती है और नीति, धर्म, दर्शन, विज्ञान संबंधी अनेक प्रकार के विचार भी इसके अन्तर्गत स्वतंत्ररूप से प्रतिपादित होते हैं। औदात्य के स्वरूप का वर्णन करते हुए 'लॉजिनस' ने स्पष्ट कहा है कि इसका पोषण ऐसे भावों से होता है जो सक्रिय (Active) होते हैं। करुण की प्रधानता इसके सहजरूप को प्राण-शक्तिहीन कर सकती है। भवभूति का 'उत्तर-रामचरित' इस कथन के तथ्य का सबल उदाहरण है।

व्यंगात्मक महाकाव्य—यूरोप में एक विशिष्ट काव्यांग का दर्शन होता है जो 'मॉक हिरोयिक' (Mock-heroic) के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें

महाकाव्य की परम्परागत शैली तथा अन्य तत्त्वों का प्रयोग साधारण व्यक्तियों के साधारण क्रिया-कलापों के वर्णन में किया जाता है जिससे व्यंगात्मक हास्य का प्रादुर्भाव होता है। जैसे किसी बौने को भीमकाय वीर का कवच पहना दिया गया हो और वह योद्धाओं के समान अकड़ता चल रहा हो। इसका प्रयोग प्रायः वर्गविशेष के लोगों की त्रुटियों तथा बुराइयों पर प्रहार करने के लिए होता है यद्यपि इस प्रहार की कटुता बहुत-कुछ मुक्त-हास्य की रस-धार में बह जाती है। अंग्रेजी साहित्य में इसका उत्कृष्ट नमूना पोप का 'रेप आव् द लॉक (अलकों पर बलात्कार) है जिसमें कथानक का बीज एक उच्चवर्गीय युवक प्रेमी की धृष्टता में निहित है, जिसने एक 'फैशन-परस्त' सुन्दरी की नागिन के समान लटकती हुई दो चोटियों मे से एक को प्रेम-स्मारक के रूप में काट लिया था। 'होमर' का 'इलियड' रानी हेलेन के 'रेप' से उत्प्रेरित है, परन्तु इस व्यंगकाव्य का विषय इस चोटी पर किया गया बलात्कार है। 'होमर' में युद्ध के पहले वीर अपने शिविर में सुसज्जित होता है और यहाँ नायिका अपने शृङ्गार-कक्ष में समस्त सौन्दर्य-साधनों तथा प्रसाधनों द्वारा अपने सहज रूपास्त्र पर सान चढ़ाती है। महाकाव्य का वीर देवताओं की कृपा-प्राप्ति के लिए हवन, अर्चना इत्यादि करता है और यहाँ नायक भी फ्रांसीसी प्रेम-प्रधान उपन्यासों की वेदी बनाकर उस-पर प्रेमपत्रों की समिधा में अग्नि प्रज्वलित करता है और उसको अपनी आहों से जागृत रखता है। यहाँ युद्ध में लड़नेवालों में संभ्रान्त युवक-युवतियाँ हैं और नायिका के अंगरंक्षक ऐसी दैवी आत्माएँ हैं जो किसी समय आमोद-प्रिय तथा शृङ्गार-उपासक स्त्रीशरीरों में क्रियमाण रह चुकी हैं और शरीर-त्याग के पश्चात् भी परि-चित आडंबरों तथा शिष्टाचारों का स्मरण उनमें अक्षुण्ण है। इनमें से पचास तो 'पेटीकोट' के रक्षक हैं; क्योंकि वही स्त्रीप्रतिष्ठा का महत्वपूर्ण किन्तु अदृढ़ दुर्ग है। युद्ध में प्रयुक्त अस्त्र हैं नयनबाण, बालों की पिन, सुंघनी तथा उस काल का महिला-प्रिय 'फैन'। एक महिला नेत्र का अमोघ अस्त्र अपने प्रतिद्वन्द्वी पर प्रयोग करती हैं और वह घायल होकर धराशायी हो जाता है। उसकी दुर्दशा पर वह मुस्करा देती हैं जिससे वह तुरत जीवित तथा स्वस्थ हो जाता है। अन्त में देवाधि-देव इस युद्ध का निर्णय करने के लिए अपनी स्वर्णतुला तैयार करते हैं; जिसमें एक ओर स्त्री की चोटी और दूसरी ओर पुरुष की बुद्धि है। चोटी का पलड़ा भारी पड़ता है और उसी की विजय निश्चित होती है। इसके फलस्वरूप वह तिरस्कृत चोटी आकाश में उल्का के समान उड़ती हुई अदृश्य हो जाती है और इस प्रकार कवि के कथनानुसार एक नये नक्षत्र का जन्म होता है। इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार की पद्य-कथाएँ भी इसी भेद के अन्तर्गत आती हैं, जिनका विवेचन आवश्यक नहीं है।

गीति-काव्य

गीति-काव्य (Lyric) के दो मुख्य भेद किये जा सकते हैं—आत्मनिष्ठ तथा अनात्म-निष्ठ या 'सब्जेक्टिव' तथा 'ऑब्जेक्टिव'। पहले में कवि प्रत्यक्षरूप से अपने भावों की अभिव्यंजना करता है और दूसरे में किसी कल्पित पात्र की भावाभिव्यक्ति होती है। जैसे 'मेघदूत' में कालिदास की नहीं, अपितु उनके द्वारा कल्पित विरही यक्ष की प्रेम-जनित उत्कण्ठा प्रस्फुटित हुई है।

यूरोप में 'लिरिक' नाम ही इस बात का साक्षी है कि इस प्रकार की कविता प्रायः वीणा अथवा अन्य संगीत-यंत्रों की सहायता से गायी जाती थी। कालान्तर में काव्य तथा संगीत-साधन का संबंध समाप्त हो गया, परन्तु आज तक इसकी रागमयता अक्षुण्ण बनी है। आज भी 'लिरिक' की परिभाषा गीतात्मक भावाभिव्यक्ति है। इसके लिए यह आवश्यक है कि इसकी भाषा तथा शैली में सहज उद्‌गार का आभास स्पष्ट हो, चाहे उसके एक-एक शब्द के पीछे कवि के वर्षों का प्रयास क्यों न निहित हो। गीति-काव्यकार स्रष्टा नहीं, गायक है जिसका गान पक्षियों के कलरव के समान-भावों का सहज उच्छलन होता है। कला अथवा कृत्रिमता का लवलेश ही इसका 'सर्वनाश' करने के लिए पर्याप्त है। भावात्मक एकत्व भी अपेक्षित है; क्योंकि समस्त काव्य किसी एक केन्द्रीय भाव से अनुप्राणित होता है और अनेक संचारी भाव इसके पोषक होते हैं तथा काव्य का प्रत्येक शब्द अथवा बिम्ब इसी प्रभाव-एकत्व (unity of impression) से ही सार्थक माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त यह सर्वमान्य तथ्य है कि भावावेश अस्थायी होता है और शुद्ध गीति-काव्य का लघुरूप ही इसका उपयुक्त माध्यम है। यूरोप में १९वीं शताब्दी के स्वच्छन्दतावादी कवियों तथा समीक्षकों में बहुतों की यह धारणा थी कि गीति-काव्य ही वास्तविक काव्य है जिसका कलेवर लघु ही होना स्वाभाविक है, विशालकाय काव्य तो काव्य का व्याघाती अभिधेय है (A long poem is a contradiction in terms)। 'कोलरिज' तथा 'इलियट', दो महान् समीक्षकों की यही धारणा है कि लम्बे काव्य में सभी अंशों का काव्यात्मक होना आवश्यक नहीं है। तात्पर्य यह कि भावोद्‌गार समुद्र के ज्वार के समान आता जाता रहता है। एक भाव-लहरी तथा दूसरी के बीच में अन्तराल का होना स्वाभाविक है। इस अन्तराल में भाव-तीव्रता अपेक्षित नहीं हो सकती। तीव्र भावावेग को देर तक उच्च स्तर पर रखना कवि तथा पाठक दोनों के लिए असाध्य कार्य है। इसीलिए एक आधुनिक समीक्षक

ने ठीक ही कहा है कि गीति-काव्य का लेखक 'लघु-श्वांस' (short breath) का व्यक्ति होता है यद्यपि वह 'गागर में सागर' भरने की पूर्ण शक्ति रखता है।

आत्म-निष्ठ गीति-काव्य का विभाजन कई पक्षों से किया गया है—विषय-पक्ष से उनका मुख्य भेद आध्यात्मिक या धार्मिक तथा सांसारिक हो सकता है। रूप-पक्ष से वह मुक्तक तथा क्रम-बद्ध कहा जाता है। इसके अतिरिक्त पाश्चात्य साहित्य में कुछ विशिष्ट प्रकार के गीति-काव्य हैं जिनका छन्द-विन्यास निश्चित है और इस पूर्व-निर्मित ढाँचे में कवि के विभिन्न भावों की प्राण-प्रतिष्ठा होती है। उदाहरण के लिए 'सानेट' (Sonnet) को ले लीजिये जिसमें चौदह पंक्तियाँ होनी चाहिये, न एक कम और न एक अधिक। प्रत्येक पंक्ति में पाँच पद होने चाहिये और प्रत्येक पद में प्रथम शब्दांश (Syllable) ह्रस्व (unaccented) तथा दूसरा दीर्घ (accented) होना चाहिए। इन चौदह पंक्तियों का विभाजन दो भिन्न पद्धतियों से हुआ है—एक है 'इटालियन' जिसके विशिष्ट प्रवर्तक हैं 'पेट्रार्क' (Petrarch) और दूसरी की संज्ञा है 'इंगलिश' जो महाकवि शेक्सपियर के नाम से सम्बन्धित होने के कारण 'शेक्सपियरियन' भी कहलाती है। पहली व्यवस्था के अनुसार 'सानेट' की पहली आठ पंक्तियाँ 'आॅकटेव' (Octave) कहलाती हैं और अन्य छः का पारिभाषिक नाम 'सेस्टेट' (Sestet) है। केन्द्रीय भाव का एक पक्ष ज्वार के समान पहली पंक्ति में उद्भूत होकर आठवीं तक विस्तार प्राप्त करता है और इसकी समाप्ति किसी चिन्हांकन (punctuation mark) द्वारा स्पष्ट रहती है। इसके बाद दूसरा पक्ष भाव-परिवर्तन भाटे (ebb) के समान शेष छः पंक्तियों में प्रसारित होकर अन्त में शान्त होता है। 'आॅकटेव' में तुक-व्यवस्था (rhyme scheme) निश्चित है—(अ ब ब अ, अ ब ब अ) अर्थात् पहली, चौथी, पांचवीं तथा आठवीं का एक तुक होता है और दूसरी, तीसरी, छठी तथा सातवीं में कोई दूसरा तुक होता है। 'सेस्टेट' में तुक-व्यवस्था अनिश्चित है जैसे (स द, स द, स द) अथवा (स द य, स द य), परन्तु किसी भी दशा में सम्पूर्ण 'सानेट' में पाँच तुक से अधिक नहीं होने चाहिए। 'इग्लिश सानेट' में तीन चतुष्पद (Quatrain) तथा अन्तिम पंक्ति-युग्म (Couplet) होते हैं और प्रमुख भाव तीन चतुष्पदों के बीच विकसित होता हुआ अन्तिम 'पंक्ति-युग्म' में समाप्त होता है जिसमें या तो पूरे भाव का आशय सूत्र रूप में परिलक्षित होता है अथवा उसको कोई अनपेक्षित मोड़ दिया जाता है। तुक की दृष्टि से प्रत्येक अवयव स्वतंत्र होता है—(अ ब अ ब, स द स द, य फ यफ, ग ग) सोलहवीं शताब्दी के वरिष्ठ कवि 'स्पेन्सर' (Spenser) ने अपनी प्रसिद्ध 'सानेट माला' (Sequence) में तीनों चतुष्पदों को तुक

द्वारा सम्बद्ध कर दिया है। इस प्रकार पहले चतुष्पद की अन्तिम पंक्ति तथा दूसरे की प्रथम पंक्ति में एक ही तुक है।

आरंभ में 'सानेट' का मुख्य विषय प्रेम था, परन्तु कालान्तर में इसमें अन्य विषयों का भी समावेश हुआ। यह 'मुक्तक' तथा 'शृङ्खलाबद्ध' दोनों रूपों में पाश्चात्य काव्य का मुख्य अंग रही है।

इसके विपरीत 'ओड' (Ode) है जिसका स्वरूप निश्चित नहीं है और जो नियमित (Regular) तथा अनियमित दोनों रूपों में पाया जाता है। 'नियमित' ओड में रूपविन्यास एक सुनिश्चित व्यवस्था के अन्तर्गत विकसित होता है, परन्तु अनियमित 'ओड' में पंक्तियों की संख्या, उनका सम्बद्धीकरण तथा आकार-प्रकार सुनियोजित नहीं होता। नियमित 'ओड' का विकास प्राचीन यूनान में हुआ और पिंडार (Pindar) की प्रतिभा ने इसे चरमोत्कर्ष पर पहुँचाया। 'पिंडार के 'ओड' की निम्नांकित विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं :—

(अ) किसी व्यक्ति या वस्तु का सम्बोधन (Address), (ब) राष्ट्रीय पर्व के अवसर पर किसी विशेष घटना अथवा व्यक्ति का वर्णन अथवा यश-गान, (स) विषय के गुरुत्व के साथ ही शैली का औदात्य तथा कल्पना का उच्च विलास, (द) जटिल छन्द-व्यवस्था। ये 'ओड' प्रशिक्षित गायक-मण्डली द्वारा देव-प्रतिमा के समक्ष गाये जाते थे। पद्य का एक खंड (Stanza) गाते हुए वे पूर्व से पश्चिम की ओर घूमते थे; फिर उसकी विपरीत दिशा में घूमते हुए दूसरा खंड गाते थे। और इसके बाद प्रतिमा के सामने खड़े होकर तीसरा खंड समाप्त करते थे। यह क्रम कई बार दुहराया जा सकता था। इन तीनों खंडों का पारिभाषिक नाम था—'स्ट्रोफी' (Strophe or turn) । 'ऐन्टी-स्ट्रोफी' (antistrophe) या 'काउन्टर टर्न' और इपोड (Epode or stand) इस छन्द-व्यवस्था का मूल नियम यही था कि एक काव्य में 'स्ट्रोफी' तथा 'ऐन्टी-स्ट्रोफी' एक दूसरे के पूर्णतया अनुरूप होते थे। 'इपोड' की व्यवस्था इनसे भिन्न होती थी, परन्तु एक 'ओड' के सभी 'इपोड' एक समान होते थे।

रोम के प्रसिद्ध कवि तथा समीक्षक 'होरेस' ने एक नये प्रकार के 'ओड' की रचना करके इसे जटिलता से मुक्त किया और इसकी शैली में प्रसाद गुण का समावेश किया। इन दोनों प्रकार के 'ओड' का कालान्तर में व्यापक अनुकरण हुआ, जिनमें से बहुतों की लोक-प्रियता स्थायी सिद्ध हुई। आधुनिक नियमित 'ओड' स्वच्छन्दतावादी युग के प्रसिद्ध कवियों, विशेषकर 'कीट्स' तथा 'शेली' की सशक्त लेखनी की उपज हैं जिसके सर्वविदित उदाहरण हैं 'ओड टु ए नाइटिंगेल'

तथा 'ओड टु द वेस्ट विंड'। यहाँ विषय तो साधारण है, परन्तु सम्बोधन, भाव की गुरुता तथा व्यापकत्व एवं छन्दों की जटिलता आदि प्राचीन 'ओड' के गुण सुरक्षित हैं। अनियमित 'ओड' में इन सब विशेषताओं का समावेश होता है, परन्तु छन्दव्यवस्था निश्चित नहीं होती। जैसे वर्ड्सवर्थ का प्रसिद्ध 'ओड टु इम्मारटैलिटी (Immortality)।

इसके बाद ही एक दूसरे प्रकार के गीति-काव्य का भी उल्लेख उपयुक्त होगा; क्योंकि यह भी व्यक्तिगत होते हुए भी सामाजिक तथा सार्वभौमिक उद्देश्यों से अभिप्रेरित होता है। इसका पारिभाषिक नाम है 'सटायर' (Satire) अथवा व्यंग्य-काव्य या प्रबंध जो पद्य तथा गद्य दोनों रूपों में प्रसिद्ध है। इसका मुख्य उद्देश्य है व्यक्ति-विशेष अथवा समाज या मानव-जाति की त्रुटियों तथा कुरीतियों और दोषों पर प्रहार करना। यह दोष-विगोपन मीठे व्यंग से लेकर निर्मम तथा विषाक्त उपहास के बीच कई रूपों में पाया जा सकता है। व्यक्तिगत शत्रुओं तथा सामाजिक एवं समस्त मानवता के विरोधी तत्त्वों को व्यंग द्वारा दमन करने की प्रथा प्राचीन तथा सर्वदेशीय है और संस्कृत-साहित्य में भी इसके उदाहरण उपलब्ध हैं, जैसे क्षेमेन्द्र का 'देशोपदेश' 'नर्ममाला'; दामोदर गुप्त का 'कुट्टनीमत' इत्यादि। क्षेमेन्द्र ने भी 'सटायर' का समर्थन ऐसे शब्दों में किया है जो 'होरेस' आदि पाश्चात्य आचार्यों के दावे के नितान्त अनुरूप हैं:—

हासेन लज्जितोऽत्यन्तं न दोषेषु प्रवर्तते।
जनस्तदुपकाराय ममायं स्वयमुद्यमः॥

यूनान के 'ऐरिस्टोफेनीज' से लेकर इंगलैण्ड के 'जार्ज बर्नर्ड शा' तक अनेक हास्याचार्यों ने अपने को समाज का हितैषी घोषित किया है; क्योंकि उनका व्यंगात्मक छिद्रान्वेषण स्वस्थ जीवन का परिपोषक होता है और उनकी प्रत्यक्ष निर्ममता उस कल्याणकारी चिकित्सक की शल्य-क्रिया के समान है जो अंग के सड़े-गले भागों को निकालकर स्वस्थ भागों की रक्षा करता है।

ऐसा माना गया है कि 'सटायर' सभ्य तथा विकसित समाज की देन है और यूरोप में इसका उद्भव तथा विकास रोमन इतिहास के स्वर्णयुग में हुआ था। इसके आदर्श रूप की चर्चा करते हुए ड्राइडेन (Dryden) इत्यादि प्रसिद्ध समीक्षकों ने कहा है कि 'सटायर' साहित्यिक तभी हो सकता है जब इसमें परिष्कृत भाषा, व्यंगात्मक, सारपूर्ण किन्तु चुभनेवाले वाक्य तथा सभ्य तथा निष्पक्ष दृष्टिकोण हो। 'सटायर' चमकती हुई तलवार की धार के समान होना चाहिये जिससे बुराई का सिर अलग हो जाय, किन्तु घाव का चिन्ह भी प्रत्यक्ष न

हो; अनाड़ी लेखकों के हाथ में तो यह कसाई के चाकू के समान सिद्ध होता है जिसमें शिकार का अंग क्षत-विक्षत हो जाता है, परन्तु कटकर अलग नहीं होता। क्रोध-विदग्ध होते हुए भी सिद्धहस्त व्यंग-लेखक शान्त तथा संतुलित प्रतीत होते हैं और उच्चस्तर पर स्थित होकर ही प्रतिद्वन्द्वी पर प्रहार करते हैं, परन्तु इस आदर्श का पालन दुर्लभ है और 'पोप' आदि चिड़चिड़े स्वभाववाले कलाकारों ने तो अपने प्रतिद्वन्द्वियों तथा आलोचकों को नीचा दिखाने के लिए न्याय तथा मानवता का बहिष्कार ही कर दिया है और उनको पीड़ित करने के लिए अच्छे, बुरे, शुद्ध तथा अशुद्ध, उपयुक्त अथवा अनपयुक्त सभी साधनों का प्रयोग किया है।

यह विदग्ध व्यंग प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष शैली में लिखा जा सकता है। प्रत्यक्ष शैली में कवि पाठकों के समक्ष किसी व्यक्ति का दोषोद्घाटन करता है, चाहे वह व्यक्ति उसका अपना शत्रु या विपक्षी हो अथवा किसी वर्ग, जाति या समस्त मानवता के विशिष्ट दोषों का प्रतीक। इस पद्धति की विशेषता है व्यंग्य-चरित्र-चित्रण (Satirical portrait) जिसका प्रत्येक अंग लेखक के कौशल तथा बुद्धि-लाघवता का पूर्ण परिचायक होता है। शिष्ट किन्तु मर्म-स्पर्शी व्यंग का प्रसिद्ध उदाहरण पोप का 'ऐटिकस' (Atticus) है जिसमें उस काल के प्रसिद्ध लेखक, 'ऐडीसन' की विशिष्ट त्रुटियों का सजीव तथा मार्मिक चित्रण प्रस्तुत है।

अप्रत्यक्ष पद्धति में कवि का दृष्टिकोण प्रायः साधारणीकृत होता है अथवा वह अपने व्यक्तित्व को पृष्ठभूमि में रखकर दोष-शोधन का कार्य सम्पन्न करता है। इस पद्धति के तीन मुख्य अंग उल्लेखनीय हैं :—

(अ) 'मॉक-हिरोयिक' (Mock heroic), जिसमें महाकाव्य की परम्परा समाज के साधारण व्यक्तियों तथा व्यापारों पर आरोपित करके व्यंग-चित्रण प्रस्तुत किया जाता है। इसका प्रमुख उदाहरण 'पोप' का 'रेप ऑव् द लॉक' है जिसकी व्याख्या हो चुकी है। गद्य में इसका प्रसिद्ध उदाहरण स्पेन के लब्ध-प्रतिष्ठ लेखक 'सरवेन्टीज' (Cervantes) की अमरकृति 'डॉन क्विक्जोट' (Don Quixote) है जिसमें मध्ययुगीन धर्म-वीरों की युद्ध तथा साहस-प्रियता की परम्परा का सफल व्यंगानुकरण प्रस्तुत किया गया है। इसके विपरीत शैली की संज्ञा 'बरलेस्क' (Burlesque) है जिसमें महाकाव्य की वीर-परम्परा को साधारण एवं हास्यास्पद शब्द-परिधान द्वारा उपहासित किया जाता है। इसका प्रसिद्ध उदाहरण 'बटलर' (Butler) का 'हुडिब्रास' (Hudibras) है।

(ब) 'ऐलेगॉरिकल' (Allegorical), जिसमें किसी आधुनिक घटना अथवा सार्वभौमिक तथ्य की किसी पौराणिक अथवा काल्पनिक कथा अथवा

वर्णन द्वारा आलोचनात्मक व्याख्या की जाती है। जैसे 'जॉन ड्राइडेन' ने अपने 'ऐब्सालम ऐन्ड ऐकीटोफेल' (Absalom and Achitophel) में सम-सामयिक राजगृह-युद्ध के प्रसिद्ध पात्रों की निन्दा तथा भर्त्सना बाइबिल की एक प्रसिद्ध अर्ध-ऐतिहासिक घटना के माध्यम से करके अपने व्यक्तित्व की निगूढ़ता की रक्षा करने का प्रयास किया है। इसी के अन्तर्गत गद्य तथा पद्य के अनेक प्रबन्ध आते हैं जिनमें लेखक किसी काल्पनिक समाज के आचार-विचारों का वर्णन करके तत्कालीन समाज की कुरीतियों पर प्रकाश डालता है अथवा उस काल्पनिक देश के किसी पात्र के मुख से उनकी स्पष्ट व्याख्या तथा भर्त्सना कराता है। इसका प्रसिद्ध उदाहरण 'स्विफ्ट' (Swift) का लोक-प्रिय ग्रन्थ 'गुलिवर्स ट्रैवल्स' (Gulliver's Travels) है।

(स) 'मिथिकल मेथड' (mythical method) इस शताब्दी की प्रसिद्ध उपलब्धि है जिसमें किसी पौराणिक घटना के माध्यस से अतीत तथा वर्तमान का मौलिक एकत्व तथा आधुनिक समाज में मानव-जीवन के आधारभूत नैतिक तथा धार्मिक भावनाओं का ह्रास तथा विघटन स्पष्ट किया जाता है। जैसे 'टी० एस० इलियट' ने अपने प्रसिद्ध काव्य—'द वेस्ट लैण्ड' में प्रथम युद्धोत्तर यूरोप के जर्जर आत्मिकरूप का अनावरण, एक मध्ययुगीन पुरावृत्त कथा (myth) के माध्यम से किया है। कथा है एक नपुंसक राजा की जिसके राज्य की पृथ्वी भी निर्वीर्य हो चुकी है और देवालय जीर्ण-शीर्ण हैं, परन्तु राजा इस आशा से जीवित है कि किसी दिन एक पवित्र हृदय का ब्रह्मचारी वीर उसके देश में आवेगा और देवालय में प्रवेश करके एक रहस्यमय अर्चना द्वारा दैवी-कोप का शमन करेगा और तब पवित्र जल द्वारा उसके पुरुषत्व-हीन शरीर का प्रक्षालन करके उसे सशक्त बनावेगा, जिसके पश्चात् जलवृष्टि होगी और वन्ध्या धरा भी अपनी खोई हुई उर्वरता को प्राप्त करके फलवती होगी। यह कथा आज की अनैतिक, अधार्मिक एवं पशु-तुल्य आत्म-शक्तिहीन मुमूर्षु मानवता की आध्यात्मिक दशा का उपयुक्त प्रतीक है और काव्य में अतीत तथा वर्तमान का साम्य दिखाते हुए प्रतिभाशाली कलाकार ने आज की संस्कृतिशून्य मानवता के सारहीन जीवन का एक दुःस्वप्न के रूप में वर्णन किया है जिसमें समस्त प्राणी विषयाग्नि में जल रहे हैं और समाज का सुव्यवस्थित ढाँचा काले खंड़हरों में परिवर्तित हो गया है, जिसकी दीवालों पर चमगादड़ रेंग रहे हैं और जर्जर देवालय में उपस्थित गायकवृन्द जलविहीन अंधकूप में स्थित प्रतीत होते हैं। इस आध्यात्मिक राज-रोग की एक ही चिकित्सा है जो भारतीय उपनिषद में प्रजापति के महा-

वाक्य के रूप में लिपि-बद्ध है—'दत्त, दयाध्वम् , दमयत' जिसमें 'दत्त' का अर्थ कवि ने आत्मोत्सर्ग किया है; क्योंकि इसी त्याग के आधार पर मानवता सदैव गर्व से उन्नतमस्तक होकर आरूढ़ रही है।

निम्नकोटि का 'सटायर' जो व्यक्ति-विशेष के विरुद्ध द्वेष तथा स्पर्धा की भावना से प्रेरित होता है तथा शिष्टता के स्तर से नीचे उतरकर शुद्ध गाली-गलौज का रूप धारण करता है 'लैम्पून' (lampoon) कहलाता है जिसको 'प्लेटो' तथा 'अरस्तू' दोनों ने निन्दनीय घोषित किया है, यद्यपि व्यंगात्मक साहित्य में इसकी कमी नहीं है। गीतकाव्य का एक मुख्य भेद 'एलजी' (Elegy) कहलाता है जो साधारणतः किसी मित्र या प्रियजन की मृत्यु-जनित शोक का उद्‌गार होता है; परन्तु जब वह व्यक्ति राष्ट्र या समाज का कोई माननीय पात्र होता है, तब शैली गम्भीर तथा जटिल होती है तथा मृत्यु के अतिरिक्त उस व्यक्ति से संबंधित सामाजिक, नैतिक अथवा साहित्यिक विषयों का समावेश तथा उनकी व्याख्या होती है—जैसे 'रगबी चैपुल' (Rugby Chapel) में 'आरनल्ड' ने अपने ख्यातनामा पिता, डॉ० आरनल्ड के नैतिक अनुशासन की सराहना करते हुए उनके अभाव में उनके अनुयायियों की आश्रय-हीनता का मार्मिक वर्णन किया है; तथा 'मेमोरियल वर्सेज' (Memorial verses) में वर्ड्सवर्थ, गेटे (Goethe) तथा बायरन, इन तीन यूरोपीय ख्याति के कवियों की मृत्यु पर शोक प्रकट करने के साथ ही उनके महान् गुणों का उल्लेख किया है जिनकी उपलब्धि भविष्य के काव्य-क्षेत्र में दुर्लभ प्रतीत होती है। कभी-कभी एक व्यक्ति की मृत्यु से उद्विग्न होकर कवि जीवन, मरण, पुनर्जन्म तथा आत्मा के स्वरूप इत्यादि व्यापक विषयों पर मनन करते हुए एक गम्भीर एवं गवेषणापूर्ण काव्य का निर्माण करता है जिसका महत्व देश, काल, जाति की सीमा का अतिक्रमण कर जाता है। उदाहरण के लिए टेनिसन का ''इन मेमोरियम'' (In Memoriam) ले लीजिये जो उसके प्रिय मित्र का मर्मस्पर्शी स्मारक होने के साथ ही उस काल के विज्ञान तथा धर्म के संघर्ष से उद्‌भूत मानसिक उलझनों तथा दुविधाओं का पारदर्शी दर्पण है और आज भी ऐसे क्षुब्धहृदयों की मूक वेदना की अभिव्यक्ति इसी काव्य की शब्दावली में पूर्णता प्राप्त करती प्रतीत होती है।

'एलजी' का एक विशिष्ट भेद 'पैस्टोरल एलजी' (Pastoral) कहलाता है जिसमें कवि गड़ेरिये के छद्मवेष में किसी काल-कवलित व्यक्ति के प्रति अपना शोक तथा क्षोभ अभिव्यक्त करता है और काव्य का समस्त वातावरण चरवाहों के जीवन तथा उनके दैनिक व्यापारों से संबंधित रहता है—जैसे 'मिल्टन' के

'लिसिडस' (Lycidas) में कवि कहता है कि वह और उसका मित्र सूर्योदय के पहले ही अपनी भेड़ों को लेकर प्रकृति के विस्तृत प्रांगण में प्रवेश करते थे और पशुओं को चरागाह में छोड़कर अपनी बाँसुरियों पर तान छेड़ते थे जिसकी सुमधुर ध्वनि सुनते ही बच्चे तथा वन-देवता लोग हर्ष से नाचने लगते थे। आशय है कि दोनों कवि थे और साथ ही सरस्वती की उपासना करते थे और उनकी रचनाएँ कालेज के नव-युवकों में अतिप्रिय हुईं।

'पैस्टोरल एलजी' की प्रथा बहुत प्राचीन है और इसका आरंभ सिसली में रहनेवाले यूनानी लेखकों ने किया जिसमें 'थियोक्रिटस' (Theocritus), मोसकस (Moschus) तथा 'बिआन' (Bion) के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इनका अनुकरण रोमन काल में हुआ, परन्तु उस प्राकृतिक ग्रामीण जीवन की आत्मा तब तक लुप्त हो गई थी, इसलिए इसका वाह्य रूप तो वही रह गया, परन्तु उसमें सभ्य समाज की जटिलताओं तथा कुरीतियों का समावेश होने लगा और यह समसामयिक समाज की कटु आलोचना का एक सहज माध्यम हो गया। सोलहवीं शताब्दी के नव-जागरण काल में इसका पुनर्जन्म इटली में हुआ और धीरे-धीरे इसका प्रसार इंगलैण्ड तथा अन्य देशों में हुआ। अंग्रेजी साहित्य में सर्वोत्तम शोक काव्य (Elegy) इसी रूप में प्राप्य हैं और इसके सर्वोत्कृष्ट उदाहरण 'मिल्टन' का 'लिसिडस', 'शेली' का 'एडोने' (Adonais) और 'आरनल्ड' के 'थिरसिस' (Thyrsis) तथा 'स्कालर जिप्सी' (Scholar Gipsy) हैं। पहले तो ग्रामीण वातावरण परम्परागत था। समस्त प्रकृति दिवंगत आत्मा के लिए शोकाकुल दिखलाई जाती थी और मानव-शोचकों (Mourners) की एक लम्बी सूची समाविष्ट करने की प्रथा सर्वमान्य हुई। परन्तु 'आरनल्ड' ने परिचित प्रकृति-चित्रों का आश्रय लेकर इसमें वास्तविकता का पुट देने का सफल प्रयत्न किया।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है व्यक्ति-विशेष की मृत्यु पर शोक प्रकट करने के साथ ही लेखक मानव-जीवन के गंभीर रहस्यों पर प्रकाश डालते हुए अपने दार्शनिक दृष्टिकोण का प्रतिपादन करता है अथवा सामाजिक कुरीतियों की भर्त्सना या साहित्य इत्यादि की समालोचना प्रस्तुत करता है। 'आरनल्ड' का 'स्कालर जिप्सी' शोक-काव्य के इस नये पहलू का भी द्योतक है। कालान्तर में इस काव्य का अर्थ-विस्तार हुआ और उसमें ऐसे काव्यों का समावेश हुआ जो किसी व्यक्ति की मृत्यु से संबंधित होकर गंभीर तथा दार्शनिक रूप से मानव-जाति तथा समाज के वर्गविशेष के अभिशापों पर मनन-चिन्तन करते हुए कवि के संवेदनात्मक हृदय की अभिव्यक्ति करते हैं। इसका सर्वप्रसिद्ध उदाहरण टामस ग्रे (Thomas Gray) की 'एलजी रिटे्न इन ए कन्ट्री चर्चयार्ड' है

जिसमें कवि एक ग्रामीण समाधि-क्षेत्र में खड़ा होकर ग्रामीणों के संकुचित जीवन तथा तत्संबंधी कठिनाइयों एवं सहज विभूतियों का संवेदात्मक चित्र प्रस्तुत करता है।

हमारे संस्कृत-साहित्य में स्तोत्र-परम्परा अत्यन्त प्राचीन एवं समृद्ध है और शैव, वैष्णव, बौद्ध, जैन इत्यादि विविध संप्रदाय के अनेक कवियों ने इसका पोषण किया है। परन्तु इस प्रकार की धार्मिक रचनाएँ गीति-काव्य की श्रेणी में तभी आती हैं जब उनमें कवि तथा उसके इष्टदेव का पारस्परिक संबंध भावपूर्ण होकर अभिव्यक्त होता है। अर्थात् भक्ति-काव्य ही वास्तविक धार्मिक गीति-काव्य (Religious lyric) के नाम से अभिहित किया जा सकता है। हिन्दी में भक्ति-काव्य की अक्षुण्ण परम्परा है और अंग्रेजी साहित्य में सत्रहवीं शताब्दी इस काव्य-धारा का स्वर्ण युग मानी जाती है और इसके उदाहरण विक्टोरियन युग के कतिपय कवियों, जैसे 'हाप्किन्स' (Hopkins) तथा 'थाम्सन' (Thompson) की ममस्पर्शी कृतियों में उपलब्ध हैं। बीसवीं शताब्दी में इस परम्परा के सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि 'टी॰ एस॰ इलियट' हैं जिनका 'फोर क्वार्टेट्स' (Four Quartets) इस वैज्ञानिक युग में विरचित धार्मिक, रहस्यवादी तथा गंभीर दार्शनिक काव्य का अनुपम उदाहरण है।

दार्शनिक काव्य-प्रथा भी प्राचीन तथा सर्वदेशीय है जो विभिन्न कालों में विशिष्ट दार्शनिक व्यवस्थाओं से अनुप्राणित हुई है और दार्शनिकता तथा कवित्व का संगम ही इसकी प्रसिद्धि का मुख्य आधार हुआ है। प्रसिद्ध रोमन कवि 'ल्यूक्रेशियस' (Lucretius) ने अपनी महान् कृति 'डी रीरम नेचुरा' (De Rerum Natura) में इसका प्रथम उत्कृष्ट नमूना प्रस्तुत किया; इसी प्रकार मध्य-युग में इटली के राष्ट्र-कवि 'दान्ते' (Dante) ने अपनी 'डिवाइना कमेडिया' (Divina Commedia) में रोमन कैथालिक चर्च के प्रसिद्ध स्तम्भ सेन्ट टामस (St. Thomas) की दार्शनिक व्यवस्था का काव्यात्मक निरूपण किया। कालान्तर में 'पोप' के 'एसे ऑन मैन' इत्यादि कई दार्शनिक काव्य लिखे गये, परन्तु उनमें विचारगरिमा तथा व्यक्तिगत विश्वास दोनों का अभाव है। इसप्रकार पाश्चात्य काव्य-साहित्य विभिन्न दार्शनिक विचारों से सदैव प्रभावित रहा है।

यहीं प्रकृति सम्बन्धी गीति-काव्यों का भी संक्षिप्त विचार वांछनीय है। मानव तथा प्रकृति का सम्बन्ध अत्यन्त प्राचीन है और साहित्य में प्रकृति का समावेश कई रूपों में हुआ है। कहीं मानव-जीवन की पृष्ठभूमि के रूप में,

कहीं मानव-भावों के स्वच्छ दर्पण अथवा संवेदनात्मक बिंब के रूप में और कभी-कभी कवि के सौन्दर्य-प्रेम तथा रहस्य-जिज्ञासा की अभिव्यक्ति के सबल माध्यम के रूप में। हमारे यहाँ ऋतु-वर्णन की परम्परा अत्यन्त पुरानी है, परन्तु प्रकृति वर्णन के साथ ही मानवभावोच्छलन के उत्कृष्ट उदाहरण कालिदास के 'मेघदूत' तथा भवभूति के 'उत्तररामचरित में' प्रस्तुत हैं। इसके अतिरिक्त प्रकृति काव्यालंकारों तथा बिंबों एवं प्रतीकों का अक्षय भांडार रही है और इसके नित-नूतन सौन्दर्य तथा भयंकर शक्ति-प्रदर्शन में मानव-चिन्तकों ने स्रष्टा के अकथनीय सौन्दर्य तथा अतुल शक्ति का आभास प्राप्त किया है। वैदिक ऋषियों के लिए ईश्वर रस-रूप और समस्त सृष्टि मधुप्लावित रही; इसी प्रकार यूरोप में भी बहुत दिनों तक यह दृढ़ धारणा थी कि भगवान् ने अपने रहस्योद्घाटन के दो मुख्य माध्यम मानव-विचारकों को प्रदान किये हैं—एक है दिव्य-ग्रन्थ, 'वाइबिल' और दूसरा है उन्हीं के द्वारा विरचित ग्रन्थ जिसे विश्व कहते हैं, इसलिए प्रकृति चिन्तन द्वारा उनकी सत्ता का प्रत्यभिज्ञान संभव है।

पाश्चात्य प्रकृति-उपासकों में मूर्धन्य स्थान प्रसिद्ध अंग्रेज कवि 'वर्ड्सवर्थ, को दिया गया है जिनकी प्रतिभा प्रकृति-संसर्ग से विकसित तथा मुखरित हुई। उनके लिए प्रकृति का स्वतंत्र अस्तित्व है जिसमें प्रेम, आनन्द तथा शान्ति के स्रोत सदैव प्रवाहित हैं और मानव चिन्तक उसके साहचर्य से आत्मिक पोषण तथा उन्नयन के लिए उपयुक्त शक्ति तथा सामग्री प्राप्त कर सकता है। प्रकृति-सौन्दर्य-जनित आनन्द मानव-आत्मा को समाधि की उस चरमावस्था तक पहुँचा सकता है जिसमें शरीर तथा स्थूल इन्द्रियाँ निष्क्रिय हो जाती हैं और आत्मा अन्तर्दृष्टि की जागृत शक्ति द्वारा प्रकृति के गर्भ में निहित परम-आत्मा का स्पष्ट दर्शन करने में सफल हो सकती है। यह प्रकृति-प्रभाव की चरम सीमा थी। इसके बाद वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास हुआ और विक्टोरियन युग के कवियों ने प्रकृति का सूक्ष्म अध्ययन तो किया, परन्तु उसकी आत्मा में उनका विश्वास नहीं था और आज के युग में तो प्रकृति तथा काव्य का सम्बन्ध नगण्यप्राय हो गया है।

नाटकीय गीति-काव्य (Dramatic Lyric)

अब हम गीति-काव्य के उस समृद्ध पक्ष का निरीक्षण करेंगे जहाँ कवि का आत्मगोपन वांछनीय होता है और किसी कल्पित पात्र के हृदयगत भाव तथा अनुभव काव्य के केन्द्र-बिन्दु होते हैं। हमारे अध्ययन का आरम्भ ऐसे काव्य-भेद से होगा जो कथनात्मक तथा नाटकीय गीति-काव्यों का संयोजक सेतु माना

जा सकता है। इस भेद का पारिभाषिक नाम है 'बैलेड' (Ballad) जो एक प्रकार से काव्य का प्राचीनतम रूप भी कहा जाता है। विद्वानों का विचार है कि इस प्रकार की कविताएँ ग्राम-समाज की संयुक्त प्रतिभा की उपज थीं और विशिष्ट अवसरों पर नृत्य तथा संगीत के साथ इनका पाठ होता था, इसीलिये पुराने 'बैलेड' अनामिक हैं, उनके लेखकों का नाम अज्ञात है। इन प्राचीन काव्यों में एक लघु कहानी नाटकीय माध्यम अर्थात् कथोपकथन और भावभंगी इत्यादि से प्रस्तुत की जाती थी। कहानी की प्रेरणा मनुष्य के सामान्य अनुभवों जैसे प्रेम, वियोग, मृत्यु, संघर्ष, नियति-प्रवंचना इत्यादि से प्राप्त होती है, भाषा सरल तथा सटीक है, अति प्राकृतिक तत्वों तथा जादू, मन्त्र, टोटका आदि का पुट भी प्रत्यक्ष है। शैली की अन्य विशेषताओं में चार पंक्तियों का छन्द (४, ३, ४, ३) तथा 'रिफ्रेन', अर्थात् एक कथन या पंक्ति का प्रत्येक पद्य-खंड (Stanza) के अन्त में पुनरावृत्ति है। १९वीं शताब्दी के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने इस प्रथा का पुनरुद्धार किया और जर्मनी तथा इंगलैण्ड में अनेक काव्य अनुकरण रूप में रचे गये, जिसमें कुछ ही ऐसे हैं जिनमें पुरानी सरलता, सटीकता तथा स्वाभाविकता की सफल अभिव्यक्ति हुई है। इसका परिवर्तित तथा संशोधित रूप 'वर्ड्सवर्थ', 'किपलिंग' (Kipling) तथा मेसफील्ड (Masefield) की 'बैलेडों में द्रष्टव्य है। इसके इस शताब्दी के विशिष्ट प्रवर्तक प्रसिद्ध कवि 'ईट्स' (Yeats) हैं। नाटकीय गीत-काव्य भी अनेक रूप में विकसित हुआ है। ये साधारण से लेकर अत्यन्त गम्भीर तथा जटिल हैं। इस प्रकार के साधारण गीति-काव्यों में कोई कल्पित पात्र किसी अनुभव की अभिव्यक्ति भावपूर्ण भाषा में करता है जिससे उसके स्वभाव तथा अन्तरात्मा का पूरा परिचय सम्भव होता है। इस प्रकार के गीति-काव्यों का सुन्दर उदाहरण टामस-हार्डी (Thomas Hardy) के लघु काव्यों में उपलब्ध है जहाँ प्रेमजनित संयोग-वियोग के माध्यम से निर्भम एवं न्याय-नियमशून्य नियति की मानव के साथ निर्दय 'आंख मिचौनी' खेलने की प्रवृत्ति का मर्मस्पर्शी वर्णन उपलब्ध है।

परन्तु नाटकीय गीति-काव्य का विकसित रूप विक्टोरिया-युग के प्रसिद्ध कवि, 'ब्राउनिंग' (Browning) की अधिकांश कृतियों में उपलब्ध है, जो 'ड्रमेटिक मानोलोग' (Dramatic Monologue) के नाम से प्रसिद्ध तथा लोक-प्रिय हुई हैं। 'ड्रमेटिक मानोलोग' का शाब्दिक अर्थ है किसी नाटकीय पात्र का एक भाषण, परन्तु वास्तव में यह कलात्मक आतम-विश्लेषण नाटक का लघु संस्करण माना जा सकता है; क्योंकि इसमें उसकी सभी विशेषताएँ बीजरूपेण

विद्यमान रहती हैं जैसे एक पात्र जो कल्पित, ऐतिहासिक अथवा पौराणिक हो सकता है और उसका वक्तव्य, जिसमें उसके स्वभाव तथा दृष्टिकोण और चरित्र का पूर्ण आभास उपलब्ध होता है; क्योंकि यह कथन उसके जीवन के महत्वपूर्ण अवसर से प्रेरित होता है और इसमें किसी अदृष्ट व्यक्ति या व्यक्तियों का सान्निध्य भी परिलक्षित होता है, जो कि इस लघु-नाटक के प्रेक्षक या श्रोता (Audience) माने जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त इस नाटकीय स्थिति के उपयुक्त दृश्य अथवा पृष्ठ-भूमि भी प्राय: प्रत्यक्ष या परोक्षरूप में प्रस्तुत रहती है। इस प्रकार के काव्यों का मुख्य ध्येय होता है मानव-आत्मा के विविध रूपों की अनेक पात्रों के आत्म-निवेदन द्वारा पूर्ण अभिव्यक्ति करना और इसकी सफलता इस बात पर आधृत रहती है कि लेखक भिन्न स्वभाव, व्यवसाय, प्रवृत्ति तथा चरित्रवाले पात्रों से पूर्ण तादात्म्य स्थापित करके परिस्थितिविशेष को उसी की आँखों से देखने में समर्थ तथा सफल हो। 'ब्राउनिंग' की प्रसिद्धि इसी शक्ति पर आश्रित है और इस गुण के लिए उनका स्थान 'चासर' (Chaucer) तथा शेक्सपियर प्रभृति महान् मानव-स्वभाव के चतुर चित्रकारों की श्रेणी में निश्चित किया गया है।

कभी-कभी मनोवैज्ञानिक आत्म-विश्लेषण द्वारा ऐसे काव्य का पात्र जाति या वर्गविशेष के सभी गुणों तथा अवगुणों का प्रतीक हो जाता है। उदाहरण के लिए हम 'ब्राउनिंग' का प्रसिद्ध 'मानोलोग' 'द बिशप आर्डर्स् हिज टूम' (The Bishop Orders his Tomb) ले सकते हैं जिसमें नायक इटली का नव-जागरण युगीन उच्चपदाधिकारी पादरी है, जो मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए अपने अवैध पुत्रों तथा उत्तराधिकारियों से अपने प्रस्तावित स्मारक-निर्माण के लिए आग्रह करने के साथ-साथ अपने उठते हुए विरोधी भावों का पूर्ण परिचय देता है। ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि समझने के लिए यह स्मरणीय है कि यूरोप में नव-जागरण युग का आरंभ (Renaissance) एक संक्रमण काल था जबकि मध्यकालीन विषय-निरपेक्ष धार्मिक भावना का प्राचीन यूनानी सौन्दर्यवाद से सीधा संघर्ष हुआ जिसमें चर्च के महान्-स्तम्भों का जीवन तथा चरित्र एक मिश्रित ढाँचे में ढल गया, जिससे धार्मिक विरक्ति के साथ ख्याति की लोलुपता, संयम के साथ ही स्त्री-रूपपिपासा, जिसका अर्थ हुआ आपसी संघर्ष तथा स्पर्धा और तज्जनित दुराचार, भ्रष्टाचार तथा सद्असद् उपायों द्वारा आत्म-परितोष तथा प्रतिद्वन्द्वी को नीचा दिखाने का प्रयास; धार्मिक ग्रन्थ बाइबिल के परम्परा-गत प्रेम के साथ ही यूनानी साहित्य, कला तथा अश्लील पौराणिक कथाओं की ओर स्पष्ट झुकाव इत्यादि का अस्वाभाविक संयोग हुआ।

इस कविता के नायक, धार्मिक-वक्ता की चेतना-शक्ति निर्बल हो रही है और हृदय के नियन्त्रित भाव एक-दूसरे से टकराते हुए उसकी मनःस्थिति तथा कुत्सित जीवन का नग्न चित्र प्रस्तुत करते हैं जिसका महत्व वैयक्तिक तथा ऐतिहासिक दोनों है।

इसी प्रकार 'टेनिसन' (Tennyson) की बहुचर्चित कविता 'यूलीसीज (Ulysses) में नायक पौराणिक पात्र है और वृद्धावस्था में घर पर रहते हुए जीवन से ऊबकर अपने पुराने सहकारियों के साथ एक नयी सामुद्रिक यात्रा का आयोजन करने में संलग्न प्रतीत होता है और उसके कथन से उसके ऐतिहासिक जीवन, स्वभाव तथा आचरण का पूर्ण परिचय संभव है, परन्तु इसके साथ ही नायक समसामयिक विज्ञानोत्कर्ष का उत्तम प्रतीक भी है; क्योंकि विक्टोरिया-युग का विज्ञान प्रकृति के रहस्य-तल में प्रवेश करने के लिए कटिबद्ध था और उसका नारा था 'आराम हराम है'। यही इस कविता का भी सारतत्त्व है और नायक की अन्तिम ललकार—'हमें ज्ञान के डूबते हुए तारे का पीछा करते हुए मानव-विचार तथा कल्पना की चरम सीमा का भी अतिक्रमण करना है—वैज्ञानिक महत्वाकांक्षा की अन्तरात्मा की स्पष्ट पुकार प्रतीत होती है।

परन्तु कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता है कि यह नाटकीय वक्ता पूर्ण स्वतंत्र नहीं है; क्योंकि उसका आत्म-विश्लेषण कवि की उद्बुद्ध शक्ति से अभिप्रेरित है और उसके महत्वपूर्ण विचार तथा जीवन-दर्शन कवि के अपने भावों से इतना साम्य रखते हैं कि वह कवि के दृष्टिकोण का माध्यम-मात्र प्रतीत होता है और उसका वक्तव्य उस दृष्टिकोण के प्रसार का उत्तम साधन। बीसवीं शताब्दी का साहित्य प्रायः वैज्ञानिक आत्म-निरपेक्षता की भावना से अभिप्रेरित रहा है और इसकी शैली तथा विचाराभिव्यक्ति की पद्धति पर मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों तथा मान्यताओं का प्रभाव भी स्पष्ट है। इन्हीं प्रभावों के फलस्वरूप 'ड्रमेटिक मानो-लोग' का एक नया मनोवैज्ञानिक संस्करण आज की कविता का मुख्य अंग हो गया है जिसकी विशेषताएँ 'अचेतन' तथा 'अवचेतन' की विशिष्ट क्रियाओं तथा प्रक्रियाओं पर अवलम्बित हैं। इसलिए इसका 'इन्टीरियर मानोलोग' (Interior Monologue) 'आभ्यंतरिक आत्म-निवेदन' नाम सार्थक है। इसमें चेतन-मन का नियन्त्रण न्यूनातिन्यून होना चाहिए और बाह्य तत्त्वों का नितान्त अभाव भी अपेक्षित है। इसमें श्रोता की उपस्थिति अनावश्यक है; क्योंकि यह ऐच्छिक कथन नहीं है, बल्कि अन्तर्मन का सहजोद्गार है। इसमें नायक अपने नग्न हृदय का साक्षात्कार करता है और अपने मूक अन्ततंम भावों की अभिव्यक्ति द्वारा हमको

भी उसका परिचय कराता है। इसलिए इसके विचारों तथा भावों में कोई स्पष्ट तारतम्य नहीं होता और उनका आपसी संबंध अदृष्ट तथा अतर्क-संगत मालूम पड़ता है। ऐसा प्रतीत होता है कि मन ऐसी छलांग लगा रहा है और एक विचार क्रम से दूसरे पर इस विद्युत गति से पहुँच रहा है कि हमारा तर्क-कौशल इसकी छाया के निकट भी पहुँचने में नितान्त असमर्थ है। 'इलियट' इत्यादि सभी लेखकों ने इस पद्धति के विकास में योगदान किया है और इसका जटिल रूप 'वेस्ट लैंड' तथा 'ज्वायस्' (Joyce) के विख्यात उपन्यास 'युलीसीज' (Ulysses) में उपलब्ध है। परन्तु इस पद्धति का पर्यवसान 'सुरियलिज्म' (Surrealism) में हुआ है जहाँ चेतना का पूर्ण लोप आवश्यक है जिससे 'अवचेतन' का निर्बाध क्रिया-कलाप संभव हो और लेखनी इन स्वतंत्र उद्‌गारों के स्वप्नवत् बहुरंगी रूप-विलासों को मन्त्र-मुग्ध माध्यम के समान शब्द-बद्ध करने का यथासंभव प्रयास करे।

प्राचीन काव्य-शास्त्रियों ने काव्य के विविध भेदों को अलग रखने का यथा-शक्ति प्रयत्न किया था और प्रत्येक के निश्चित रूप तथा उपयुक्त भाषा-शैली को स्पष्ट रूपेण विहित कर दिया था। परन्तु स्वच्छंदतावादी समीक्षक तथा कवि इस विचार से सहमत थे कि काव्य के भेद, प्रभेद चित्र के विभिन्न रंगों के समान एक दूसरे से मिलकर ही सार्थक होते हैं। इस धारणा का विकास आज की कविता में स्पष्ट है; क्योंकि आज की काव्य-साधना इस मूल सिद्धान्त पर आश्रित है कि काव्य का महत्व उसके व्यापकत्व पर आधृत होता है। जिस काव्य में अधिक से अधिक विरोधी भावों का संयोग या समन्वय होगा वह उसी अंश में उच्च तथा परिपक्व माना जायगा। विरोधी भावों के साथ ही शैली का बहुमुखी रूप भी अपेक्षित तथा अनिवार्य है।

INDEX

M

N

O